प्राचीन समाज

Ancient Societies

एम.ए. इतिहास (पूर्वार्द्ध)

M.A. History (Previous)

प्रश्न पत्र- प्रथम

Paper-I

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय

रोहतक–124 001

Copyright © 2003, Maharshi Dayanand University, ROHTAK
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

Developed & Produced by EXCEL BOOKS PVT. LTD., A-45 Naraina, Phase 1, New Delhi-110028

विषय-सूची

भाग-I

A. Origins Tools, Tool making, Hunting & Gathering

अध्याय 1. पुरापाषाण काल 5

अध्याय 2. नवपाषाण काल 11

अध्याय 3. शिल्प विशेषीकरण एवम् श्रम का विभाजन 18

B. Bronze Age Civilization

अध्याय 1. सुमेरियन सभ्यता 23

अध्याय 2. मिश्र की सभ्यता 33

अध्याय 3. हड़प्पा सभ्यता 40

भाग-II

C. Iron Age Cultures

अध्याय 1. यूनानी सभ्यता 52

अध्याय 2. रोमन सभ्यता 68

भाग-III

अध्याय 1. वैदिक सभ्यता 86

अध्याय 2. **Age of Reason & Revolt** 103

a. जैन धर्म
b. बौद्ध धर्म

अध्याय 3. **Agrarian Empires** 114

a. मौर्य साम्राज्य
b. गुप्त साम्राज्य

अध्याय 4. 137

a. गुप्तोत्तरकाल में व्यापार का ह्रास
b. सामंतवादः उदय, स्वरूप एवम् विकास

M.A. (Previous)
ANCIENT SOCIETIES

Paper-I **Max. Marks : 100**

Time : 3 Hours

Note: 10 questions shall be set in the Paper spread over to the entire syllabus more or less proportionately, out of which the candidates shall be required to attempt five questions, selecting at least one question from each Unit. All questions shall carry equal marks.

Unit-I

Origins

Tool Making; Hunting and Gathering; Food Production and Village Settlements; Division of Labour and Craft Specialisation.

Bronze Age Civilizations

1. Mesopotamia (upto the Aquadian Empire): State Structure; Economy (Industry and Trade); Social Startification and Religion.

2. Egypt (Old kingdom; State Structure; Economy (Industry and Trade); Social Startification and Religion.

3. Harappan Civilization: Origin; Authors; Extent; Town Planning; Economy; Society; Religion; Decline.

Unit-II

Iron Age Cultures

Greece: Agriculture; Currency; Scripts; Religion; Crafts and Warfar slave societies in Ancient Greece and Rome: Agrarian Economy; Urbanisation and Trade; Cultures; Athenian.

Democracy: Roman Republic; Roman Empire and Its Decline.

Unit-III

Vedic Society

State Structure; Economy; Society; Religion; State Structure.

Age of Reason Revolt

Jainism; Buddhism

Agrarian Empires

The Mauryas and the Guptas with special reference to Society and Economy.

Decline of Trade and Commerce in Post Gupta Period.

Indian Feudalism: Origin, Developent and Nature.

भाग-I

अध्याय-1

A.

Origins Tools, Tool making, Hunting & Gathering

पुरापाषाण काल (Palaeolithic)

प्रागैतिहासिक काल की संस्क तियों के बारे में जानकारी सर्वप्रथम पाषाण युग में देखने को मिलती है। लुॅब्बाक ने सर्वप्रथम पाषाण युग के भिन्न-भिन्न कालों को विभाजित किया, इनके अनुसार प्रथम पुरापाषाण काल (Palaeolithic Age) तथा द्वितीय नवपाषाण काल (Nealithic Age) था। इन्होंने यह विभाजन पाषाण उपकरणों के प्रकार तथा तकनीकी विशेषताओं आधार पर किया। 1970 में लारटेट ने पुरापाषाण काल को तीन भागों में विभाजित किया। (i) पूर्व पुरापाषाण काल (ii) मध्यपाषाण काल (iii) उत्तर पाषाण काल। इन्होंने यह विभाजन उपकरणों की विधि में परिवर्तन तथा उस काल की जलवायु में आए परिवर्तनों के आधार पर किया। 1961 में कॉमसन तथा ब्रैडवुड ने नवपाषाण काल तक के काल को तीन भागों में बाँटा। प्रथम काल भोजन संग्रहण तथा द्वितीय मध्य पाषाण काल को उन्होनें भोजन इक्ट्ठा करने वाला तथा तीसरे नवपाषाण काल को उन्होंने भोजन उत्पादन का काल कहा है। दूसरे शब्दों में पुरापाषाण काल शिकारी अवस्था, मध्य पाषाण काल को शिकारी एवम् भोजन संग्रहित करने वाला तथा नवपाषाण काल का भोजन उत्पादित का काल कहा गया है। परन्तु प्रागैतिहासिक संस्क तियों के कालनिर्धारण एवम् नामकरण में लारटेट का वर्गीकरण सर्वाधिक मान्य है।

प्रागैतिहासिक मानव का इतिहास जानने का स्त्रोत मात्र उस काल के मानव द्वारा बनाए पाषाण के औजार है, जो मानव ने स्वयं अपनी आवश्यकतानुसार बनाए थे। लिखित साक्ष्यों के अभाव में मात्र यहीं स्त्रोत है जो इस काल के मानव के तकनीकी विकास को दर्शाता है। आज से करीब पाँच लाख वर्ष पूर्व मध्य प्लीस्टोसीन काल से हमे यह मिलने शुरू होते है। जिन्हें पुरापाषाण कहा जाता है। परन्तु कुछ विद्वान इनसे पूर्व भी मानव को किसी प्रकार के , स्वयं बनाए या प्राक तिक रूप से निर्मित, हथियारों का प्रयोग करते बताया है, जिन्हें इयोलिथ कहते है। 1867 में दक्षिणी ओरलियन से उपकरण प्राप्त हुए। 1877 में इस प्रकार के औजार फ्रांस से भी प्राप्त हुए, लेकिन आजकल के विद्वान इन एक तरफ फलक उतरे (One sided flaking) हथियारों को प्राक तिक तौर से उतरे फलक मानते है, जिन्हें इस काल के मानव ने उपयोग किया होगा इसके अतिरिक्त इन उपकरणों से मानव को स्वयं औजार बनाने का संकेत भी मिला होगा।

मानव ने अपनी आवश्यकता के अनुरूप औजार बनाने की प्रक्रिया संभवतः लकड़ी तथा अन्य कार्बनयुक्त पदार्थ के औजार बनाने से शुरू की जो आज उपलब्ध नहीं है। परन्तु जब उसने पाषाण उपकरण बनाने शुरू किए तब से हमें पुरातात्विक प्रमाण उपलब्ध होने लगे। ये उपकरण मानव ने अपनी जरूरतों के अनुसार तथा उनके कार्य के अनुरूप निर्मित किए थे। जैसे मांस काटने तथा छीलने के लिए चॉपर (Chapper) तथा खुरचंनी (Scrapers) का निर्माण किया पुरापाषाण काल को तीन अवस्थाओं में विभाजित किया गया है:-

निम्न पुरा पाषाण काल
(Lower Paleolithic Period)

मानव द्वारा निर्मित प्राचीनतम उपकरण हमें इस काल में प्राप्त होते हैं, जब मानव ने सर्वप्रथम पत्थर का स्वयं फलकीकरण कर अपनी आवश्यकतानुसार औजार बनाए। प्राचीनतम औजार वे हैं जिनमें पैबुॅल (Pebble) के एकतरफ फलक उतार कर चापर औजार बनाए गए। ये प्राचीन उपकरण हमें सर्वप्रथम मोरोक्को तथा मध्य अफ्रीका में ओल्डुवई गर्ज के सबसे प्रथम तह

से प्राप्त होते है। प्रथम स्थान पर इनके साथ विल्लफ्रैन्चिय (Villafranchian) प्रकार के पशुओं की हड्डियाँ भी मिलती है, जो नूतनकाल (Plestocene) से पहले काल के जानवर थे जो अभी भी बचे रह गए थे। इनमें बड़े-बड़े दांतो वाले हाथी (Tusks), बड़े -बड़े नुकीले दांतो वाले चीते, लकड़बग्घा इत्यादि शामिल थे। इस काल में मानव भोजन के लिए शिकार करता था। मानव ने मध्य और अभिनूतन काल में चापर और चापिंग औजारों का निर्माण किया, इसमें चॉपर में एक तरफ से फलकीकरण करके औजार बनाए गए। इन्हीं औजारों से बाद में प्राग् हस्त कुठारों का निर्माण किया गया और कालान्तर में इन्हीं से सुन्दर हस्त कुल्हाडियां निर्मित हुई।

औजार बनाने की तकनीक :-

(i) (Block -on-Anvil Technique):

इस विधि द्वारा जिस पत्थर द्वारा औजार का निर्माण करना होता था उसे किसी चट्टान पर प्रहार करके उसका फलक उतारकर औजार बनाये जाते थे। इस विधि द्वारा बड़े आकार के तथा अनघड़ औजारों का ही निर्माण संभव था।

(ii) Stone Hammer Technique or Block-on-Block Technique:

पूर्वपाषाण काल में मानव द्वारा औजार बनाने की सर्वाधिक प्रयोग में लाई जाने वाली विधि थी। इसमें जिस पत्थर का औजार बनाना होता था उसे एक स्थान पर रखकर दूसरे हाथ से एक अन्य पत्थर द्वारा चोट करके फलक उतार कर औजार बनाया जाता था। इस विधि द्वारा मानव bi-ficial (द्विधारी) औजार भी बना सकता था।

(iii) Step Flacking Techinique:

इस तकनीक द्वारा जिस पत्थर का औजार बनाना होता था उस पर दूसरा पत्थर मारते समय जिस प्रकार का औजार बनाना था, उसे ध्यान में रखकर सर्वप्रथम मध्य भाग मे चोट कर उस पत्थर पर एक निशान बना लिया जाता था। बाद में उसी की मदद से Steps (पट्टियों) में फलक उतार कर औजार बनाए जाते थे। इस विधि द्वारा हस्त कुल्हाडियों का निर्माण किया जा सकता था।

(iv) Cylinderical Hammer Technique:

इस विधि द्वारा पत्थर का औजार बनाने के लिए एक सिलैंडरनुमा हथौडे का प्रयोग किया जाता था जिससे कि छोटे-छोटे फलक भी उतारे जा सकते थे। इनसे सुन्दर एशुलियन प्रकार की हस्त कुल्हाड़ियां बनाई जाती थी।

औजार
Tools

इस काल का मानव कोर (Core) निर्मित औजारों का प्रयोग करता था यानि जिस पत्थर का औजार बनता था उसके फलक (Flake) उतार कर फैंक दिए जाते थे तथा बीच के हिस्से का ही औजार बनता था। इस काल के बने उपकरणों में chapper/ chapping tools (चॉपर/चौंपिग औजार), Hand-axes (हस्त कुल्हाड़ियो), Cleavers (विदारणी), Scrappers (खुरचमियां) इत्यादि प्रमुख थे। इनसे मानव काटने, खाल साफ करने इत्यादि कार्यो के लिए तथा मिट्टी से जड़ें और कन्दमूल आदि निकालने के काम में लाता था।

विस्तार क्षेत्र

इस काल के मानव के प्राचीनतम उपकरण हमें सर्वप्रथम अफ्रीका से प्राप्त हुए। यहां मध्य-पूर्वी अफ्रीका के ओल्डुवई गर्ज की प्रथम तह से ये औजार मिले हैं। इसके अलावा मोरोक्को से भी इनकी प्राप्ति हुई है। यूरोप के लगभग समस्त देशों से ये उपकरण मिले हैं, इनमें फ्रांस के सोम घाटी में स्थित अब्बेविल (Abbeville) जहां से हस्तकुल्हाड़ियों की प्राप्ति हुई। इंग्लैड में थेमस नदी पर स्थित स्वान्सकोम्ब (Swanscombe) फ्रांस का अमीन्स (Amiens), जर्मनी का स्टेनहीम (Steinheim), हंगरी के वर्टिजोलुस गुफा प्रमुख है। एशिया में साइबेरिया को छोड़कर सभी प्रदेशों से इन उपकरणों की प्राप्ति हुई है। चीन में बीजिंग के समीप झाऊ-तेन गुफा में तो उस काल के मानव के उपकरण तथा आग के प्रमाण मिले हैं। भारत उपमहाद्वीप में पाकिस्तान के सोहनघाटी, दक्षिण भारत में तमिलनाडू के साथ-साथ समस्त भारत से इस प्रकार के उपकरण प्राप्त हुए है। दक्षिण-पूर्वी ऐशिया में महत्वपूर्ण है जावा, जहाँ से इस काल के मानव के अवशेष प्राप्त हुए हैं।

मानव :

विभिन्न स्थलों से हमें इस काल के मानव के भी अवशेष प्राप्त हुए हैं, जो इस संस्क ति के जन्मदाता भी थे। ओलॅडुवई गर्ज की प्रथम तह से Anstralopithicus मानव के, चीन की आऊ-काऊ तेन गुफा से Sinauthropithicus तथा इसी प्रकार जावा से भी Pithicanthropas प्रजाति के मानव के अवशेष, दक्षिण अफ्रीका से स्टेर्कफॉनटीन (Sterkfontein) नामक स्थान से भी Australopithicus मानव के प्रमाण मिले है। इस काल के मानव की कपाल क्षमता 750 घन से०मी० थी तथा कहीं-कहीं इससे भी अधिक।

जीवन :

इस काल के मानव का निवास स्थल नदी घाटियाँ शिलाश्रय तथा गुफा इत्यादि थे। स्टुअर्ट पिंगट के अनुसार इस युग के मानव के जीवन का आधार शिकार करना तथा भोजन एकत्रित करना था, इनका जीवन अस्थायी और खतरों से भरा एवम् अलग-अलग था। इस काल का मानव उपकरणों की सहायता से जंगली जानवरों का शिकार करता था। भोजन के तौर पर उनका मांस कच्चा था कई स्थानों पर पकाने के भी प्रमाण हैं। इसके अतिरिक्त कन्दमूल, जंगली फल तथा खाने वाली जड़े भी उसके भोजन में शामिल था। इस काल का मानव विलेचैम्यियन प्रकार के पशुओं के अलावा हाथी, गैंडा, घोडा, पानी की भैस, बारहसिंगे, कछुए, मछली, पक्षी, मेंढक, कई प्रकार के मगरमच्छ इत्यादि का शिकार करता था।

उद्‌भव एंव तिथिक्रम :

तिथिक्रम के हिसाब से मानव के अवशेषों को मध्यअभिनूतन काल में रखा जा सकता है। ये अवशेष द्वितीय इन्टर ग्लेशियल काल या इससे भी प्राचीन काल के हैं। जिन्हें हम कम से कम पाँच लाख वर्ष से 1,25000 लाख वर्ष के बीच निर्धारित कर सकते हैं।

पूर्वपाषाकालीन संस्क ति का प्रांरभ अफ्रीका में ओल्डुवई गर्ज तथा मोरोक्को से देखने को मिलता है यहीं से इस काल के मानव में विभिन्न क्षेत्रों मे जाकर इस संस्क ति का विकास किया। कुछ विद्वानों का मत है कि इस काल में अफ्रीका भारत से जुड़ा हुआ था, इसलिए इस काल का मानव स्थल मार्ग से भारत पहुँचा। परन्तु महाद्वीप तो इस काल से बहुत पहले ही अलग हो चुके थे। इस प्रकार वह उत्तरी अफ्रीका से होता हुआ मांऊट कार्मल के रास्ते एक शाखा यूरोप मे उत्तर की ओर चली गई तथा दूसरी पूर्व होती हुई भारत तथा दक्षिणी पूर्व एशिया की ओर गई तथा वहां इस संस्क ति का विकास किया।

मध्य पुरापाषाण काल
(Medium Paleolithic Period)

इस काल में मियडरस्थल मानव के अवशेष मिलने शुरू हुए और इन्होंने अपनी संस्क ति का विकास किया। पूर्व पुरापाषाणकाल के औजार कोर निर्मित थे, जिसमें फलकों का प्रयोग औजारों में नही किया गया था। लेकिन इस काल के मियंडर स्थल मानव ने अपने उपकरणों को फलक पर बनाना प्रांरभ किया, जो अपेक्षाक त आकार में छोटे थे जो अच्छे बने हुए थे। निर्मित औजारों में बोरर (Borers) स्क्रेपर (Scrapper) औजार प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त हुए थे। इनके अलावा फलक निर्मित औजारों में हस्तकुठार, बेधक, कुल्हाड़ियाँ और विदारणी प्रमुख थे।

औजार बनाने की तकनीक :

इस काल के फलक उपकरण दो तकनीकों द्वारा बनाए जाते थे। प्रथम विधि के उपकरण सर्वप्रथम इंग्लैड के कलैक्टोन-आन-सी Clacton-on-sea) नामक स्थान से सर्वप्रथम प्राप्त हुए थे। इस विधि में सर्वप्रथम पत्थर से फलक उतारी जाती थी, फिर उस फलक को दोबारा तीखा कर (retouching) आवश्यकतानुसार आकार का उपकरण बना लिया जाता था। दूसरी विधि को लवलॅवा विधि (Lowallosi-on-technique) का नाम दिया गया। इस विधि द्वारा निर्मि औजार सर्वप्रथम फ्रांस के तावलवा नामक स्थान से प्राप्त हुए इसलिए इसे लवलॅवा तकनीक का नाम दिया गया। इस विधी द्वारा पत्थर से जो फलक अलग किया जाता उसे ऐसे ही प्रयोग किया जा सकता था। इस विधि में जिस पत्थर का फलकीकरण किया जाता था उस पर किसी तीखे उपकरण से जिस प्रकार का औजार बनाना होता था उसकी रूपरेखा दी जाती थी। दूसरे चरण में उसके भीतरी हिस्से को ऊपर से छील दिया जाता था इसे Tortoise Ore कहा जाता था। त तीय चरण में एक छोटा प्लेट फार्म तैयार किया जाता था। जहाँ तीखी चीज रखकर उस पर हथौडे से आघात किया जाता था। इस प्रकार मनचाहे आकार का उपकरण बनाया जा सकता था।

विस्तार क्षेत्र :-

सर्वप्रथम इस संस्क ति के प्रमाण 1869 में फ्रांस के एक स्थल ली मौरित्यर (le Moustier) से प्राप्त होते हैं इसलिए इसे Moustarian (मौस्तिरयन) संस्क ति का नाम दिया गया। यहाँ सर्वप्रथम अॅशूलियन प्रकार के मौस्तिरयन उपकरण प्राप्त हुए जिनमें हस्तकुल्हाडियाँ, खुरचनियाँ और छिद्रयुक्त चाकू प्रमुख हैं। कालांतर में हस्त-कुल्हाडियों की संख्या में कमी आई और खुरचनियों तथा लवलवा प्रकार के उपकरणों की मात्रा में व द्धि हुई। जिनमें End Scrapers, Side Scrapers, burins, borers इत्यादि प्रमुख हैं।

इस संस्क ति का प्रसार उन सभी क्षेत्रों तक मिलता है जहँ पूर्वपुरापाषाण काल के उपकरण प्राप्त हुए है। इसके अलावा सर्वप्रथम साइबेरिया प्रवेश दे पर मानव ने इसी काल में निवास शुरू किया।

काल :-

मध्यपुरापाषाण काल ऊपरी अभिनूतन काल (Upper-Pleistocene period) के निचले भाग की संस्क ति है, यानि Wurm glacial (बूम हिमयुग) के निचले हिस्से की जिस समय बहुत ठण्ड़ का काल था। इसलिए इस काल के मानव के अधिकतर अवशेष हमें गुफाओं से प्राप्त हुए हैं।

निवास स्थल :-

इस काल के मानव के निवास स्थल नदी घाटियों की अपेक्षा शिलाश्रयों और गुफाओं से अधिक प्राप्त हुए है। पूर्व काल में पाए जाने वाले विलेफ्रैन्चियन प्रकार के पशु इस काल में लुप्त हो गए तथा अन्य सभी प्रकार के पशु-पक्षी इस काल के मानव के शिकार का आधार थे। इस काल का मानव तीर तथा मछली पकडने के कांटों से शिकार करने लगा था। इस काल के मानव के निवास स्थल से शख, लकड़ी का कोयला तथा जली हुई हडडियां प्राप्त हुई हैं। इस काल के मानव के अवशेष यूरोप के विभिन्न देशों और एशिया के विभिन्न देशों के अलावा भारत में पुष्कर झील और डीडवाना प्रदेश से प्राप्त हुए है।

धर्म का प्रारंभ :-

इस काल में मानव के धार्मिक विश्वासों की जानकारी मिलनी शुरू होती है। इस काल में पुर्नजन्म में विश्वास हुआ इसलिए मानव ने म तकों को अपनी गुफाओं के नीचे ही दबाया। डोरडोगन के La ferrassie (ला फ्रेसी) नामक स्थान से 2 व्यस्कों तथा एक बच्चे को दफनाने के प्रमाण मिले है। शवों के सिर का बचाव करने के लिए पत्थर रखा जाता था शव को लम्बवत् लिटाकर दबाने के प्रमाण क्रिमिया में की-कोबा नामक स्थल तथा फिलिस्तीन में मांऊट करमल से भी प्राप्त हुए है। पूर्वी उजबेकिस्तान की एक गुफा तेशिक ताश से एक बच्चे के शव के साथ उसके सिर के पास 6 जोड़े बकरी के सींग रखे मिलते है। इन साक्ष्यों से पता चलता है कि मानव सामाजिक रूप से संयुक्त निवास करते थे और आपस में प्रेमभावना विकसित हो चुकी थी।

उद्‌भव :-

इस संस्क ति का उद्‌भव भी सर्वप्रथम अफ्रीका के ओल्डवई गर्ज में हुआ। यहीं से मियंडस्थल मानव ने माऊंट कार्मल के रास्ते यूरोप तथा एशिया के विभिन्न क्षेत्रों में जाकर इस संस्क ति का विकास किया।

तिथिक्रम :-

यह संस्क ति ऊपरी अभिनूतन काल की है तथा बूँम हिमयुग के निचले काल में इसका तिथिक्रम निर्धारित किया जा सकता है, यानि इस काल को 1,25,000 ई०पू० से 40,000 ई०पू० के बीच माना जा सकता है।

मध्यपाषाण काल

Hunting & Food Gathering Stage (Mesolithic Period)

लगभग 10000 वर्ष पूर्व अभिनूतन काल का अंत हो गया और जलवायु भी आजकल के समान हो गई। हिमयुग के दौरान जमी बर्फ की पर्त पिघलने लगी तथा अधिकतर निचले इलाकों में पानी भर गया। पानी के जमाव के साथ जमी मिट्‌टी की तहों की गिनती से स्कन्डेनेनिया में इस काल की शुरूआत 7900 ई०पू० रखी जा सकती है जबकि रेडियों कार्बन तिथि से हिम युग

काल का अंत 8300 ई० पू० निर्धारित किया जा सकता है। बर्फ पिघलने से समुद्र के जलस्तर में बढोतरी हुई जिस कार उतरी समुद्र में अधिक पानी फैल गया। जलवायु में हुए परिवर्तन का असर वनस्पति तथा पशु-पक्षियों पर भी हुआ। यूरोप में चौड़ी पत्ती वाले पेड़-पौधे होने लगे और साथ ही रेडियर, घोड़े, बिसन आदि के स्थान पर हिरण, जंगली सूअर, बारहसींगा इत्यादि पशु अधिक पाए जाने लगे। पश्चिमी एशिया के क्षेत्रों में इस प्रकार की वनस्पति के पौधे पाए गए जो आजकल के गेंहू और जौ के जंगली प्रकार थे। इस प्रकार की वनस्पति को प्रयोग में लाने तथा शिकार में जानवरों को मारने के लिए उस काल के मानव को अपने औजारों में भी परिवर्तन करना पड़ा।

इस काल में अत्यंत सूक्ष्म पाषाण औजारों का निर्माण किया गया। ये औजार इतने सूक्ष्म थे कि इन्हें अकेले प्रयोग में नहीं लाया जा सकता था बल्कि किसी अन्य चीज के साथ जोड़कर ही वन औजारों को प्रयोग किया जा सकता था। इन उपकरणों में प्वांइट, तीर का अग्र भाग, सूक्ष्म ब्यूरिन, खुरचनियां, हस्त कुल्हाडियां, त्रिकोण, ट्रॉपे, चन्द्राकार और अर्द्धचन्द्रकार इत्यादि प्रमुख है। ये उपकरण दो भागों में बांटे जा सकते है। दोनों प्रकार के औजारों को प्रकार के आधार पर बांटा गया है।

तकनीक :

अत्याधिक सूक्ष्म औजारों के छोटे-छोटे फलक पत्थर से निकालने के लिए Pressure Technique का प्रयोग किया जाता था। इस तकनीक में एक विशेष आकार का फलक किसी नुकीले उपकरण को पत्थर पर रख उस पर ऊपर से दबाव डालकर फलक अलग किया जाता था। इस उपकरणों को किसी लकड़ी के आगे लगाकर Point का तीर बनाते थे। कुछ Points अथवा Blades को किसी जानवर की हड्डी या लकड़ी में फिट करके दंराती (Sickle) बनायी जा सकती थी। इनके उपकरणों के उपयोग से ही पता चलता है कि इस काल में मानव ने जंगली रूप से उगे पौधों को काट कर उनके दाने अलग करना सीख लिया था। कई स्थानों से तो सिल-बट्टे भी प्राप्त हुए है जैसे El-wad गुफा से, जो इसी प्रमाण की घोतक है।

प्रसार तथा जीवन :

इस संस्क ति का प्रसार अधिकतर पश्चिमी एशिया, यूरोप, भारतीय प्रायद्वीप, एशिया तथा अफ्रीका में था। पश्चिमी एशिया के फिलिस्तीन की Mount carmel cowes से हमें इस काल के अवशेष प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त सीरिया, लेबनान इत्यादि से भी इसके प्रमाण मिले हैं। यहां यह संस्क ति Natuafian (नस्तूफियन) कहलाती थी। क्योंकि यह फिलिस्तीन के एक स्थल Wadyen-Natuf से सर्वप्रथम प्राप्त हुई थी। गुफाओं की दिवारों पर ये अपनी दैनिक दिनचर्या को चित्रकारी के जरिए दिखाते थे। जो इनके कला प्रेम को दर्शाती है। साधारणतः ये प्राक तिक चित्रकारी करते थे।

इस संस्क ति के उपकरणों में सूक्ष्म पाषाण उपकरण तथा फिलंट (Flint) के Blade तथा Burin भी थे इनके अतिरिक्त अपने म तकों के अंतिम संस्कार में वे उन्हें Shell, पशुओं के दांत, तथा गहनों के साथ ही दफनाते थे। El-wad नामक स्थल से एक Pendent भी प्राप्त हुआ है। ये Arrow head और Fish-took का प्रयोग मछली पकड़ने के लिए करते थे। इन्होंने कुते को पालना भी शुरू कर दिया था।

इस काल के मानव ने जंगली पौधों से दाने निकालकर उन्हें खाने में प्रयोग करना शुरू कर दिया था। इसकी पुष्टि कई क्षेत्रों से प्राप्त सिल-बट्टे करते हैं। इनमें el-wad स्थल प्रमुख है। सीरिया के मुरेयबिट क्षेत्र में जंगली गेंहू और जौ खाते थे।

यूरोप में यह संस्क ति एजिलियन संस्क ति के नाम से जानी जाती है। जो कि फ्रांस, बेल्जियम, स्विटजर लैंड से प्राप्त हुई है। इसके अतिरिक्त कहीं-कहीं इससे विकसित मध्यपाषाण संस्क ति को Asturian तथा Maglamosean संस्क ति भी कहा जाता है। जो लोग लाल हिरण, से हिरण, जंगली सूअर इत्यादि का शिकार करते थे। मछलियां पकड़ते थे, कुता रखते थे तथा फल-फूल इत्यादि इक्कठा करके खाते थे। इनके अन्य उपकरणों में हड्डी की सूइयां, मछली के कांटे और चमड़े का कार्य करने वाले अन्य उपकरण थे। और पश्चिमी यूरोप में इस प्रकार की संस्क ति का प्रस्तार काल बाल्टिक तथा उतरी समुद्र के आसपास इस संस्क ति को Kitchen-Midden कहा जाता था। जिसमें सामान्यतः कुल्हाडियों की प्राप्ती होती है। कभी-कभी इनके उपकरणों में तीराग्र, बसौले तथ ट्रॉपेज इत्यादि अधिक थे। इस काल में बेल्जियम में इस काल का मानव (Pit dwelling) गड्डे खोदकर निवास करता था। इनकी संस्क ति को Campignian का नाम दिया जाता है।

भारत में इस संस्क ति के प्रमाण लगभग समस्त क्षेत्रों से प्राप्त होते है। लेकिन मुख्यतः तमिलनाडु में टेरी स्थल, गुजरात में लेघनाज, पूर्वी भारत में बीस्मानपुर, मध्य भारत में आजादगढ़ तथा भीममेका की गुफांए, राजस्थान में बागोर, उतरप्रदेश में लेखाडियां, सराय नाहर इत्यादि प्रमुख थे।

निवास स्थल :-

जलवायु परिवर्तन के कारण इस काल में मानव के निवास स्थल में भी काफी परिवर्तन आया। इस काल में उसे गहरी गुफाओं में रहने की आवश्यकता नही थी अब वह गुफाओं के मुख पर तथा बाहर के क्षेत्रों में निवास करने लगा। कई क्षेत्रों पर उसने अपने फर्शो का गेरू रंग से लेप भी किया। जैसा Eynam तथा el-wad की गुफाओं में देखने को मिलता हैं। दक्षिण भारत में वह समुद्र के किनारे, यूरोप में झीलों के किनारें, पर्वत तथा मैदानों में भी रहने लगा था। बेल्जियम के कई स्थलों पर वह गडढ़े खोद कर भी निवास करना शुरू कर दिया था।

तिथि :-

मध्यपाषाण काल की तिथि विभिन्न स्थलों पर अलग-2 निर्धारित की गई है। कई स्थानों पर तो यह 8000 ई०पू० तो कहीं कहीं यह 2000 ई०पू० तक भी निर्धारित की गई हैं। नास्तेफियन संस्क ति 8000 ई०पू० के आसपास की है तथा यूरोप और भारत में यह 7500 ई०पू० से 2000 ई०पू० तक कायम रहा। दक्षिण भारत की मध्यपाषाण इण्डस्ट्री 4000 ई०पू० आंकी गई है। जबकि आदमगढ़ (मध्य प्रदेश) का तिथि क्रम 5500 ई०पू०, उत्तर प्रदेश स्थित सराय नाहर राय 7300 ई०पू० के आसपास इसे काल का प्रारंभ हुआ। इसके अतिरिक्त पूर्वी भारत की मध्य पाषाणीय संस्क ति 2000 ई०पू० के आसपास आंकी गई है।

अध्याय-2

नवपाषाण काल

[Food Production & Village Settlements (Neolithic Age)]

नवपाषाण शब्द उस काल को सूचित करता है जब मनुष्य को धातु के बारे में जानकारी नही थी। परन्तु उसने स्थायी निवास, पशु-पालन, क षि कर्म, चाक पर निर्मित म दभांड बनाने शुरू कर दिए थे। इस काल की जलवायु लगभग आज कल के समान थी इसलिए ऐसे पौधे पैदा हुए जो लगभग आज के गेंहू तथा जौ के समान थे। मानव ने उनमें से दाने निकालकर भोजन के रूप में प्रयुक्त करना शुरू कर दिया और उनके पकने के विषय में भी जानकारी एकत्रित की। इस प्रकार स्थाई निवास की शुरूआत हुई। जिस कारण पशुपालन और क षि कर्म को प्रोत्साहन मिला। क षि और पशुपालन दोनों एक-दूसरे के पूरक है।

तकनीकी विकास और औजार :-

नवपाषाण संस्क ति समाज में हुए निम्न परिवर्तनों को दर्शाता है। तकनीकी तौर पर मुख्य परिवर्तन यह हुआ कि इस काल के मानव ने औजारों को घर्षित कर उन्हें पालिश करके चमकदार बना दिया। आर्थिक तौर पर परिवर्तन यह हुआ कि इस काल का मानव खाद्य संग्रहकर्ता से खाद्य उत्पादनकर्ता बन गया। नवपाषाण स्तर पर धातुक्रम के व्यापक संकेत नही मिलते, वास्तविक नवपाषाण काल धातुरहित माना जाता है। जहां कहीं नवपाषाण स्तर पर धातु की सीमित मात्रा दिखाई दी उस काल को पुरातत्वेताओं ने ताम्रपाषाण काल की संज्ञा दी है।

इस काल के मानव ने नई तकनीक से औजारों का विकास किया जिन्हें घिसकर तथा पालिश करके चमकदार बना दिया गया। औजार बनाने के लिए सर्वप्रथम पत्थर के फलक उतारे जाते थे, दूसरी अवस्था में उसके ऊबड़-खाबड़ उभारों को साफ किया जाता था इसे पैकिंग कहा जाता था। त तीय अवस्था में उस औजार को किसी बड़े पत्थर या चट्टान से घिसकर साफ किया जाता था तथा उसके किनारों को घर्षित कर तीखा किया जाता था। अंतिम अवस्था में उन पर पशुओं की चर्बी या वनस्पति के तेल से पालिश करके चिकना किया जाता था। इस प्रकार नवपाषाणकाल के मानव में चिकने-चमकदार तथा सुडौल औजार बनाए। जिनमें कुल्हाडियाँ, छैनियां, हथौड़े, बसौले, इत्यादि प्रमुख है। इसके अतिरिक्त हल, दाने अलग करने का औजार (गिरड़ी) तथा ब्लेड़ इत्यादि थे। ये औजार क षि कर्म में उपयुक्त होने के अतिरिक्त ग हकार्यों में भी प्रयोग किए जाते थे। इस काल में आए मानव के जीवन ने इन महत्वपूर्ण परिवर्तनों को कई विद्वानों जैसे कि गार्डन चाइल्ड ने नवपाषाण क्रांति की संज्ञा दी है। क्योंकि पाषाण काल के मानव की अपेक्षा इस काल के मानव में मूलभूत परिवर्तन हुए। पहले के काल में वह घुमक्कड़ था। इस काल में उसके जीवन में स्थायित्व आ गया। पहले वह खाद्य सामग्री के लिए प्रक ति पर निर्भर था इस काल में स्वयं अन्न उत्पादन करने लगा। मानव के जीवन में ये परिवर्तन अचानक से नही हुए बल्कि इन परिवर्तनों के प्रारंभिक स्वरूपों के शुरूआत हम पुरापाषाण काल एवम् नवपाषाण काल के बीच देखने को मिलती है।

इस काल से पूर्व पुरापाषाण से लेकर मध्यपाषाण काल तक की संस्क तियों का स्वरूप जिस प्रकार अफ्रीका, यूरोप और एशिया के विभिन्न स्थलों पर एक समान दिखाई देता है, वैसा हमें नवपाषाण काल में देखने को नही मिलता। नवपाषाण संस्क ति के विकास की प्रक्रिया विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग समयों पर हुई। इस काल की पहली अवस्था को म दभांड रहित नवपाषाण कहा गया क्योंकि इस काल में मद भांड कला की शुरूआत नही हुई थी। म दभांड रहित नवपाषाण के प्रमाण हमें जार्डन घाटी स्थित जैरिको, ऐन-गजल, हसिलियार मेरेयबिर, बीघा, मेहरगढ़ (पाकिस्तान) तथा गुफ्कराल (कश्मीर, भारत) इत्यादि से मिलते है। इस संस्क ति का प्रारंभ 8000 ई०पू० के आसपास हुआ। इनमें सबसे महत्वपूर्ण स्थल जेरिको था, जहाँ सर्वप्रथम इस संस्क ति

का विकास हुआ। इसके अतिरिक्त म दभांड सहित नवपाषाण काल के प्रमाण भी इन्हीं क्षेत्रों से मिलते है; जो अपेक्षाक त पहले के हैं।

त तीय अवस्था के प्रमाण हमें स्यिालक, फायूम तथा मेरिम्दे (जो कैरो के समीप मिस्र में स्थित है), जारमों मेसोपोटामिया) इत्यादि ये मिलते है।

यूरोप में अल्पस पर्वत श्र ंखला के उत्तर में नवपाषाण संस्क ति के प्रमाण बाद के काल के है और यह संस्क ति भी निम्न स्तर की है। मध्य यूरोप में ड्रेवे से बाल्टिक तथा डेन्यूब और विस्तुला के मध्य क्षेत्र में इस संस्क ति के प्रमाण प्राप्त हुए है। यहाँ से गेंहू और जौ की क षि एवम् पत्थर के औजार तथा पशुपालन के अवशेष प्राप्त हुए हैं। जर्मनी के राइनलैड में शंख के बने आभूषण प्राप्त हुए है। कोल्न लिन्डस्थल के समीप एक विशाल घर के प्रमाण मिले हैं संभवतः यह पूरे समुदाय के लिए था। डेन्यूब से प्राप्त म दभांडों पर चित्रकारी के प्रमाण मिलते है। इसी प्रकार स्विटजरलैंड, बेल्जियम, तथा ब्रिटेन में रेशेदार पौधे और अन्न पैदा किए जाने के भी प्रमाण मिलते हैं। स्विजरलैंड स्थित नवपाषाण कालीन मानव झील में लकड़ी के खंबे गाड़कर उन पर अपना निवास स्थान बनाता था।

महत्वपूर्ण स्थल :-

पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर मांऊट कार्मल की गुफाओं तथा अन्य स्थलों से नवपाषाण कालीन अर्थव्यवस्था के प्रमाण मिलते है। इन गुफा के निवासियों को नाटूफियन कहा जाता है, शिकार करने के लिए ये मध्यपाषाण कालीन यूरोपीयों से मिलते-जुलते चकमक के औजारों का प्रयोग करते थे। क षि कर्म में प्रयुक्त होने वाली अनेक दरातियाँ यहाँ से प्राप्त हुई हैं।

जैरिको :-

यह स्थल जार्डन घाटी में स्थित है। यहाँ से पहली अवस्था वाले म दभांड रहित नवपाषाण काल के अवशेष प्राप्त हुए है, जो 8000 ई०पू० के आसपास काल के हैं। इस स्थल की बस्ती के चारों ओर 27 फिट चौड़ी तथा 5 फिट गहरी खाई खोदी गई थी तथा एक पत्थर का चबूतरा भी बना हुआ था। यहाँ गेहूं की क षि तथा पशुपालन जैसे गाय, बैल, भेड़, बकरी, तथा सूअर पालने के प्रमाण मिलते हैं। इस काल में म त संस्कार प्रक्रिया शुरू हो गई थी। यहां से प्राप्त औजारों में कुल्हाडियां, तीर का अग्रभाग, हसिंया, ब्लेड तथा खुरचमियाँ प्राप्त हुई हैं। इसके बाद इसी स्थल से हमें म दभांड सहित नवपाषाण काल के भी प्रमाण मिलते है।

बीद्या :-

यह क्षेत्र जैरिको से 100 कि०मी० दक्षिण में स्थित है। इस स्थल पर 7200 ई०पू० के आसपास म दभांड रहित नवपाषाण के प्रमाण मिलते है। यहां मकान चबूतरों पर निर्मित थे, लेकिन सुरक्षा द ष्टि से जैरिको जैसी व्यवस्था नही थी। क षि में यहां पिस्ता, जैतून, फल और दालों का प्रमाण मिले है। पशुपालन की यहाँ शुरूआत हो चुकी थी, इसके अतिरिक्त जंगली जानवरों (गजेला, भालू, गीदड़, खरगोश) का शिकार करते थे। अंतिम स्तर से यहाँ म दभांड के अवशेष मिलने शुरू होते हैं।

अबु हुरेथरा :-

यह क्षेत्र उत्तरी सीरिया में स्थित है। इस क्षेत्र में नवपाषाण काल की प्रांरभिक अवस्था के प्रमाण 7500 ई०पू० के आसपास के हैं। यहाँ मानव के ग त आवास में निवास के प्रमाण मिलते है। यहाँ हड्डियों के औजार भी बहुतायत संख्या मे मिले है जिनमें बेघक, सूइयाँ, दोहरे किनारे के बेघक इत्यादि प्रमुख हैं। प्रांरभिक अवस्था से हमें जौं, गेहूँ तथा मसूर की दाल की खेती के प्रमाण मिलते हैं। मछलियों का भी शिकार किया जाता था। बाद के काल में म दभांड सहित नवपाषाण कालीन मानव घर बनाकर निवास करने लगा था।

एन-गजल :-

जार्डन की राजधानी अम्मान के उत्तर-पूर्व में स्थित इस स्थल पर 7250 ई०पू० के समीप प्रारम्भिक अवस्था वाले नव पाषाण काल का आंरभ हुआ। क षि में पिस्ता, बादाम, अंजीर के प्रमाण यहाँ से मिलते है क षि के साथ-साथ पशुओं का शिकार भी किया जाता था। यहाँ नवपाषाण काल की द्वितीय अवस्था में पशुपालन तथा म दभांड बनाने की कला की शुरूआत हुई।

मेरियबिट :-

नवपाषाण काल की प्रांरभिक अवस्था के प्रमाण यहाँ 8000 ई० पू० के आस पास मिलने शुरू हुए। बाद में मानव ने क षि के साथ-साथ पशुपालन की भी शुरूआत की तथा द्वितीय अवस्था का नवपाषाणकालीन मानव यहां बस्तियाँ बनाकर निवास करने लगा। घरों की दीवारों पर लाल रंग किया मिलता है, जिनकी छतें लकड़ी की होती थी। यहाँ पर क षि और पशुपालन के भी प्रमाण मिलते हैं।

मेहरगढ :-

पाकिस्तान में बोलन दर्रे के पास कांची के मैदानों में स्थित इस स्थल पर सर्वप्रथम म दभांड रहित नवपाषाण के प्रमाण मिलते है जो 7000 ई० पू० के आसपास के हैं। नवपाषाण काल की द्वितीय अवस्था में क षि की पैदावार के साथ-साथ पशुपालन के भी प्रमाण मिलते हैं। यहाँ से पत्थर के औजारों में हल, कुल्हाडियाँ तथा बसौले भी प्राप्त हुए है।

गुफ्कराल :-

यह स्थल कश्मीर स्थित पुलवामा के समीप स्थित इस स्थल से म दभांड रहित नवपाषाण काल के प्रमाण मिले हैं। यहाँ मानव के ग त-आवास थे। मनुष्य क षि के अलावा पशुओं का भी शिकार करता था। द्वितीय नवपाषाण कालीन अवस्था में यहाँ से प्राप्त म दभांड पीले, गुलाबी, गहरे रंग लिए हुए है जिन पर चित्रकारी की गई है। खेती में गेहूं, जौ और मटर के प्रमाण मिलते हैं। इस काल का मानव घरों में निवास करने लगा गुफ्कराल तथा इसके समीप स्थल बुर्जहोम में म तकों के साथ-साथ इस काल में कुतों को भी दफनाएं जाने के प्रमाण मिलते हैं।

स्यिालक :-

इस स्थल से नवपाषाण काल की द्वितीय अवस्था के प्रमाण मिलते हैं। जैरिको के समान इस क्षेत्र में भी एक झरना था जहाँ इस काल के जंगली जानवर और पक्षी आकर्षित होते थे जिनका इस काल का मानव भोजन के लिए शिकार करता था। क षि कर्म में यहाँ क त्रिम सिंचाई की व्यवस्था का प्रारम्भ भी यहाँ हो गया था। क षि कर्म के लिए पाषाण औजारों तथा हड्डियों के औजारों का प्रचलन था जिनमें हसिया, हल, दाने निकालने के पत्थर तथा हड्डियों के बेधक प्राप्त हुए हैं। ये रेशेदार पदार्थो से प्राप्त रेशे को कातने और बुनने का भी कार्य करते थे। इस काल मे मिट्टी निर्मित म दभांडों का प्रचलन शुरू हो गया था।

जैरिमों :-

दक्षिण-पश्चिमी एशिया में स्थित यह प्राचीनतम स्थल है। यहाँ क षि कर्म के अतिरिक्त पशुपालन के भी प्रमाण मिलते है। शिकार में ये लोग सूअर, बारहसिंगा तथा भेड़ का शिकार करते थे। गेहूँ, जौ के अतिरिक्त जैतून और पिस्ते की खेती के प्रमाण 5000 ई०पू० के आसपास के मिलते हैं। इनके औजार मुख्यतः फलक निर्मित थें जिनमें खुरचमियाँ और ब्लेड उपकरणों की प्रधानता थी। इससे हमें उनके सामाजिक जीवन की जानकारी मिलती है।

नवपाषाण काल की विशेषताएँ
(Characteristics of Neolithic Age)

क षि :-

नवपाषाण काल में सर्वाधिक क्रांतिकारी परिवर्तन क षि की शुरूआत था। इस काल में मानव ने मिट्टी में बीज डालकर फसल उगानी शुरू कर दी। मानव ने इस काल में गेहूँ और जौ की खेती के अतिरिक्त चावल, बाजरे और मक्की के प्रमाण मिलते है। इसके अतिरिक्त पिस्ता, जैतून, अंजीर, ताड़ और सेब इत्यादि फलों का प्रमाण भी इसी काल में प्रारम्भ हो गया। कपास की खेती के भी प्रमाण इस काल में मिलने शुरू हो गए। इस काल में सिंचाई व्यवस्था की शुरूआत भी हो गई थी। इस काल में क षि के लिए उपर्युक्त फसलें और उनके अनुरूप क षि के तरीके ही नहीं बल्कि भूमि की खुदाई के लिए और फसलों की कटाई, संग्रह तथा अनाज पीसने के लिए सिलबट्टें तथा भोजन बनाने के लिए विशेष औजार, बर्तन तथा तकनीक प्रयोग में लाई गई। हड्डी के बने उपकरणों का भी प्रयोग इस काल में हो चुका था जैसे :- मछली पकड़ने का काँटा इत्यादि। अनाज की अगली फसल पकने तक भण्डारन किए जाने के भी प्रमाण यहाँ से मिलते हैं। अन्न भण्डारण बर्तनों में किया जाता था।

मिश्र और मेसोपोटामिया के कुछ स्थलों से प्राप्त बर्तनों में लगी हुई चीजों के रसायनिक परीक्षण से पता चलता है कि यहाँ पर बीयर के रूप में जौ को पेय बनाना भी इस काल के मानव के रूप में जौ की कर पेय बनाना भी इस काल के मानव ने सीख लिया था।

औजार बनाने की विशेष तकनीक :-

नवपाषाणकाल के मानव का बौद्धिक स्तर पूर्वपाषाणकाल स्तर से काफी विकसित हो गया था। इस समय जो औजार बने उनके बनाने में एक विशेष तकनीक अपनाई गई, उन्हें घिसकर और पॉलिश करके बनाया जाता था। सबसे पहले पत्थर की फलक उतारी जाती थी। फिर उबड़-खाबड़ हिस्सों को ठीक किया जाता था। तत्पश्चात् उसकी घिसाई की जाती थी फिर उस पर Animal-fat आदि लगाकर पॉलिश की जाती थी।

औजार :-

इस प्रकार मानव ने चिकने चमकदार तथा सुडौल हथियार बनाने की विधि का अविष्कार किया इसमें कठोर पत्थर की पालिशदार कुल्हाडी प्रमुख है। इस काल में हथौड़े, छैनी, खुर्पा, कुदाल, हल, हसिया तथा सिलकर का प्रयोग किया जाने लगा। ये औजार क षि और शिकार में प्रयोग किए जाने लगे। कम और ज्यादा मात्रा में प्रत्येक site से प्रमाण मिले हैं। भूमि खोदने के लिए सामान्यतः नुकीली छड़ी जिसके सिरे पर सुराख करके पत्थर लगा होता था, का प्रयोग होता था। परन्तु अधिकतर अफ्रीकी कबीले जमीन को खोदने में हल का प्रयोग करते थे। यूरोपीय तथा एशियाई जातियाँ भी ऐसा करती थी।

अन्य-उपकरण :-

नव पाषाणकालीन मानव ने अपनी सुख-सुविधानुसार और भी उपकरणों का अविष्कार किया। उसने ऊपर चढ़ने के लिए सीढ़ी बनाई झीलों और नदियों को पार करने के लिए नाव का अविष्कार किया। फसल काटने के लिए दंराती, सूत कातने के लिए तकली तथा चरखा, कपड़ा बुनने के लिए करघों का निमार्ण किया। इस काल के मानव को नरकूल की शाखाओं से सीढ़ियाँ बनाने की कला के बारे में भी जानकारी थी।

कातने या बुनने की कला :-

इस काल में कपड़ा बुनने की कला का भी अविष्कार हो गया था। अब वे लोग खाल व पत्तियों के वस्त्र पहनने लगे थे। करघे का अविष्कार एशिया में नव-पाषाण काल में हुआ था। यह अविष्कार अवशेष मिस्त्र तथा पश्चिमी एशिया में मिलते हैं। इस युग के मानव ने चरखे, तकले तथा करघे की सहायता से कपड़ा बनाना शुरू कर दिया था। स्विटजरलैंड से कुछ कपड़े के अवशेष, मछली पकड़ने के जाल का एक टुकड़ा तथा टोकरी प्राप्त हुई है। नव-पाषाण गाँवों में कपास के प्रमाण मिले हैं। यहाँ कपास की खेती और भेड़-पालन होता था। अतः कपड़ों का व्यापक प्रयोग इस काल में शुरू हो गया था। सुईयों से वस्त्र सीले जाते थे।

बर्तन निर्माण :-

इस काल में मानव अपनी आवश्यकतानुसार बर्तन बनाने लगा था। बर्तन चॉक पर भी बनाए जाते थे। अवशेषों में इस काल के पॉलिशदार म दभांड भी मिली है जो पकाने पर Pale या Pink रंग की हो जाती थी। पाकिस्तान के मेहरगढ़ से भी इसके प्रमाण मिले हैं। जेरिमो में लोग पत्थर और लकड़ी के बर्तन प्रयोग में लाते थे। ऐसे प्रमाण मिले है। स्यिालक के लोग बर्तन की प ष्ठभूमि पर गहरे रंग से चित्रकारी करते थे।

पशुपालन :-

इस काल मे क षि के साथ-साथ मानव ने पशु पालन की आवश्यकताओं का अनुभव किया। पशु क षि में तो सहायक होते ही थे, साथ ही इनसे उन्हें दूध तथा मांस की प्राप्ति भी होती थी। इस काल में कुत्ता, गाय, भैंस, भेड़, बकरी, सूअर तथा बैल आदि पाले जाने लगे। ये पशु उस समय के मानव की लगभग सभी आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक, अर्थात् मास और दूध का स्त्रोत भी ये पशु ही बने, सिलाई-बुनाई के लिए भेड़ो से प्राप्त होने वाले रेशों का इस्तेमाल किया जाता था। पहिए के अविष्कार के परिणामस्वरूप पहले-पहले बोझे को ढोने या आवागमन के लिए पशु का ही प्रयोग किया गया। सम्भवतः इस

काल का पहला पालतू जानवर कुता था। इस काल में मनुष्य पशुओं से काफी परिचित हो चुका था। वह यह समझने लगा था कि अगर पशु उनके समीप रहेंगे तो वह जब चाहेगा इनका शिकार कर सकेगा। इसलिए वह अपने खेतों से उत्पन्न चारा उन्हें देने लगा था। धीरे-धीरे आवश्यकता एवम् उपयोगिता के अनुसार पशुओं की संख्या बढ़ती चली गई।

म दभांड बनाने की कला :-

क षि कार्य या पशुपालन आरम्भ होने से मनुष्य के पास खाद्य सामग्री प्रचुर मात्रा में एकत्र होने लगी। परन्तु इनका संग्रह करने के लिए पात्रों (बर्तनों) का अभाव था। इस कठिनाई को दूर करने के लिए मनुष्य ने मिट्टी के बर्तनों का निर्माण करना आरम्भ कर दिया। इसका प्रारम्भ कब और कैसे हुआ कहना कठिन है। इस काल के आरम्भ के परिणामस्वरूप मनुष्य ने खाद्य सामग्री के संग्रह के लिए बड़े-बड़े म दभांडो का निर्माण किया। वह धरती में गड्ढ़ा खोदकर उसकी चारों और से लिपाई करके उसमें भी खाद्य सामग्री संग्रहित करता था। ये बर्तन वह पले हाथ से जानवरों की खाद से बनाता था। बाद में चॉक पर विभिन्न आकार के बर्तनों का निर्माण करने लगा।

जार्डन में स्थित दक्षिणी जेरिको, बीघा और आस पास के अन्य स्थानों पर म दभांडों के प्रमाण मिलें है। लगभग 7000 ई० पू० के आस पास दक्षिणी-पूर्वी यूरोप में भी इस कला के प्रमाण प्राप्त हुए है। 4300 ई० पू० के करीब के प्रमाण मेहरगढ़ से प्राप्त हुए हैं।

उद्योग धंधें :-

इस युग में क षि का अविष्कार हो जाने से मानव भोजन की तलाश में इधर-उधर नहीं भटकता था। उसके जीवन में स्थिरता और वह अपनार भरण पोषण एक ही स्थान पर रहकर करने लगा। समय की उपलब्धता न उसे उद्योगों एवं व्यवसायों को विकसित करने के लिए प्रोत्साहित किया। इस युग मे चाक का अविष्कार हुआ जिससे मिट्टी के बर्तन बनाए जाने लगे। पहिए के अविष्कार से यातायात के साधनों का विकास हुआ। मानव ने घोड़ों तथा बैलों की सहायता से खींची जाने वाली गाड़ियां बनाई। क षि के विकास से कपास उगाई जाने लगी जिससे वस्त्र निर्माण उद्योग भी विकसित हुआ। इस काल में मछली पकड़ने के लिए जाल प्रयोग में लाया जाता था। इसके प्रमाण मिले हैं, इससे स्पष्ट होता है कि मछली उत्पादन करने लगे थे। जलमार्ग से यातायात के लिए नाव का निर्माण किया।

व्यापार :-

देखा जाए तो ऐसा लगता है नवपाषाणकालीन गांव आत्मनिर्भर थे। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति वे स्थानीय क्षेत्रों से ही पूरी कर लेते थे। किंतु शायद कोई भी नवपाषाण समुदाय पूर्णतया आत्मनिर्भर नहीं था। आरम्भिक नवपाषाण गाँव और कब्रों में ऐसा सामान मिला है जो दूरस्थ स्थानों से आया जैसा कि सीप, जो कि भूमध्यसागर या लाल सागर से लाई गई थी। जिन्हें फायम अपने गले के हारों में लगाते थे। अच्छी किस्म का काटने वाला पत्थर हारों में लगाते थे। अच्छी किस्म का काटने वाला पत्थर, बढ़िया किस्म का चकमक पत्थर आदि दूर-दूर से लाएं जाते थे। यातायात के साधनों के विकास ने व्यापार मे प्रोत्साहित किया। व्यापार वस्तु विनियम पद्धति पर आधारित था। इस प्रकार हम देखते हैं कि नव-पाषाण कालीन समुदाय की आत्मनिर्भारता वास्तविक नहीं थी।

आर्थिक व्यवस्था:-

नवपाषाणकाल में नए-नए अविष्कारों के परिणामस्वरूप मनुष्य का आर्थिक जीवन काफी सुद ढ़ हो गया था। स्थाई क षि व्यवस्था से उत्पादन मे व द्धि हुई। अब मनुष्य का सम्पति के प्रति लगाव बढने लगा था। अपने परिवार के लिए उपयोग के लिए उपयोग की वस्तुओं कें संग्रह में व्यक्तिगत सम्पति की भावना को जाग त किया। नव पाषाण काल में विनियम व्यापारिक अर्थव्यवस्था प्रचलित थी। इस काल में मनुष्य ने रेशेदार फलों का उत्पादन आरम्भ कर दिया था। इसके प्रमाण Mesopotamia, Egypt आदि में 3000 ई०पू० के करीब मिलते है। इस काल में मनुष्य flinting तथा mining भी करने लगा था। इसके प्रमाण Poland, France, Britain आदि स्थानों पर मिले है। इस काल के लोग spinning, weaving आदि के विषय में भी जानकारी रखते थे।

नवपाषाण अर्थव्यवस्था में विशेषीकरण के चिन्ह प्रारम्भ हो गए। मिश्र, सिसली, पुर्तगाल, फ्रांस, इंग्लैंड, बैलज्यिम, स्वीडन और पोलैंड में नवपाषाण कालीन समुदाय चकमक को खदानो से निकालने लगे थे। ये खान खोदने वाले वास्तव में खान खोदने के विशेषज्ञ थे।

श्रम विभाजन :-

इन नवपाषाण कालीन समाजों मे किसी प्रकार का औधोगिक श्रम विभाजन नहीं था। श्रम विभाजन था तो केवल श्रम स्त्री-पुरूषों के बीच था। स्त्रियां खेत जोतती थी। अनाज पीसती थी और पकाती थीं कातकर और बुनकर कपड़ा तैयार करती थी। बर्तन बनाती और उन्हें पकाती थी। दूसरी तरफ पुरूष शायद खेत साफ करते झोपड़ी बनाते, जानवर पालते, शिकार करते और औजार व हथियार बताते थे। समाज में स्त्री की महत्वपूर्ण भूमिका थी और प्राप्त प्रमाणों के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि समाज मात प्रधान था।

स्थाई जीवन को प्रोत्साहन :-

पूर्व पाषाण काल में मनुष्य अपनी उदरपूर्ती के लिए इधर-उधर घूमता रहता था। परन्तु नवपाषाण काल मे क षि कार्य, पशुपालन तथा नए-नए अविष्कारों के कारण स्थायी रूप से रहना आरम्भ कर दिया। स्थायी रूप से रहने के लिए उसे घर की आवश्यकता महसूस होने लगी। प्रारम्भ मे वह झाड़ियों, घास-फूस व पत्तों का घर बनाकर रहता था। pit-houses और Mud-houses के प्रमाण लगभग सभी नवपाषाण कालीन स्थानों पर मिले हैं। नवपाषाणकालीन यूरोप और एशिया की जनसंख्या छोटे-छोटे समुदायों के रूप में गाँवों में रहती थी। नवपाषाण काल में सुरक्षा के लिए बस्तियाँ ऊँचे स्थानों पर बसाई जाती थी।

नीदरलैंड से पक्के मकानों के व्यापक प्रभाव मिले है Merinde में घरों का नियमित रूप से पंक्तिबद्ध पाया जाना सामुदायिकत जीवन का द्योतक है। नव-पाषाण कालीन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ये लकड़ी के खम्बों को पानी में गाडकर बनाए जाते थे। इनमे आने-जाने के लिए सीढ़ियों का प्रबन्ध था।

सामाजिक व्यवस्था :-

नवीन अविष्कारों से मानव जीवन की सामाजिक व्यवस्था मे भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। एक स्थान पर इकट्ठा रहने से उनमें सामाजिक संगठन आया जिसमें सब सदस्य मिल जूलकर कार्य करते थे। अनुमान है कि सामाजिक संगठन की इकाई कबीला था। हर कबीले के अपने-अपने चिन्ह होते थे। जिन्हें कबीले के सदस्य अपना आदि-पूर्वज मानते थे। कुछ विद्वानों के अनुसार इस काल में राजा का अस्तित्व आरम्भ हो गया था। परन्तु इसके बारे में निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

सामाजिक व्यवस्था में विवाह की नियमित व्यवस्था चल पड़ी। व्यक्तिगत सम्पति की प्रथा से आपसी संघर्ष को बढ़ावा मिला। आपसी संघर्ष तथा युद्ध में जो शत्रु पकड़े जाते थे। उनसे दबाव देकर काम कराया जाता था। इस प्रकार गुलाम की प्रथा भी चल पड़ी। कालान्तर में नगरों की भी स्थापन होने लगी।

इस प्रकार नव-पाषाण कालीन सामाजिक व्यवस्था पूर्ण-पाषाण काल की व्यवस्था से काफी विकसित थी।

धर्म :-

इतिहासकारों के अनुसार क षि के प्रसार के साथ-साथ देवियों की पूजा प्रमुख हुई। मिश्र में मात देवी की पूजा की जाती थी। अधिकांश समाजों में मात देवी की पूजा होती थी। यहां मात देवी की मिट्टी की मूर्तियां और कहीं-कहीं हड्डी और पत्थर की मूर्ति से स्पष्ट होता है कि ऐसी मूर्तियाँ मिश्र, सीरिया, ईरान, भूमध्य सागर के इर्द-गिर्द दक्षिणी-पूर्वी यूरोप और कहीं-कहीं इंग्लैण्ड में भी मिलती है। ऐसा माना जाता है कि वास्वत में ये मूर्तिया मैसोपोटामिया, ग्रीस और सीरिया में मिलने वाली मूर्तियां मैसोपोटामिया, ग्रीस और सीरिया में मिलने वाली मूर्तियों के पूर्वज थी।

इंग्लैंड, बाल्कन और Anatolia में पुरूषों को पत्थर या मिट्टी के लिंग बनाकर दर्शाया गया।

नव-पाषाण समाज में म तकों को पुरापाषाणकालीन शिकारियों की अपेक्षा अधिक आडम्बरों के साथ निश्चित कब्रिस्तान, घरों के नीचे या घरों के साथ दफनाया जाता था। कुछ नवपाषाण कालीन समुदाय विश्वास करते थे कि म तकों को रीति-रिवाजों के साथ दफनाने से भूमि की उपज पर प्रभाव पड़ता है। धरती से सारे समुदाय को भोजन मिलता था। उस काल के लोगों की धारणा थी कि जिन म तकों के शव जमीन के नीचे गड़े है। किन्तु म तकों को रीति-रिवाज या रस्मों के साथ दफनाने की

प्रथा सभी नव पाषाण समुदायों में प्रचलित न थी। इस प्रकार की रस्में यूरोप के नव-पाषाण कालीन समुदाय मे नहीं मिलती।

म त-व्यक्तियों को हथियार, मिट्टी के बर्तन तथा खाने पीने की वस्तुओं की आवश्यकता होती थी। सम्भवतः नवपाषाणकाल में कब्रों का महत्व पुरा पाषाण काल की अपेक्षा अधिक हो गया था।

नवपाषाण काल में प्रक ति पर कुछ अधिक नियन्त्रण के लिए जादू का प्रयोग होता था। इसका प्रमाण है ताबीज जो भूमध्य सागर के इर्द-गिर्द और Merinde में छोटे-छोटे पत्थर के कुल्हाड़े बनाकर गले में पहने थे।

कला तथा व हद्पाषाण :-

नवपाषाण काल की क त्तियां बहुत कम हैं। मिश्र सीरिया, ईरान, पूर्वी यूरोप में कुछ नारी -आक त्तियां प्राप्त हुई है। जो मात शक्ति सम्प्रदाय से सम्बन्धित हो सकती इस समय की कलाक तियों ने सबसे महत्वपूर्ण स्थान व हद पाषाणों को प्राप्त है जो म तकों को आदर प्रकट करने के लिए स्मारकों के रूप में खड़े कर दिए जाते थे। इस काल में प्राप्त म तकों के साथ कब्रिस्तानों में कब्रों में म दभाण्ड, हथियार खाद्य सामग्री प्राप्त हुई है जो म तकों को आदर प्रकट करने के लिए स्मारको के रूप में खड़े कर दिए जाते थे। इस काल में प्राप्त म तकों के साथ कब्रिस्तानों में कब्रों में म दभांड, हथियार खाद्य सामग्री प्राप्त हुई जो Grave goods कहलाती है। इसके प्रमाण उत्तरी चीन तभा भारत मे मिलते है।

बौद्धिक विकास :-

नव पाषाण कालीन मानव की चिन्तन शक्ति में पूर्व पाषणकालीन मानव की अपेक्षा काफी व द्धि हुई। वस्तुतः इस काल में जो भी विभिन्न अविष्कार हुए वे इस काल के बौद्धिक विकास का ही परिणाम थे। किन्तु भावों को व्यक्त करने के लिए इस काल में भाषा तथा लिपि का विकास नहीं हुआ था।

ये सच है कि नव पाषाण काल में मानव का बौद्धिक स्तर काफी विकसित हो चुका था लेकिन उनके व्यवहारिक तकनीकी तरीके निरर्थक जादू-टोनों के आकर्षण में फंसे हुए थे। जैसे कि बहुत ही बुद्धिमान और सभ्य ग्रीक अभी तक उस दानव से डरते थे जो कि उनके मिट्टी के बर्तनों को पकाते समय तोड़ देता था और इससे बचाव के लिए वे जादू टोनों का सहारा लेते थे।

ज्ञान विज्ञान :-

इस काल के मानव का ज्ञान-विज्ञान पूर्व-पाषाण कालीन मानव के ज्ञान-विज्ञान से बहुत ही उन्नत था। उन्होंने शताब्दियों के प्रयोगों और अनुभवों द्वारा बहुत सी नई जानकारियां प्राप्त कर दी थी। नवपाषाण कालीन समुदायों के पास नए विज्ञान जैसे बर्तन बनाने का रसायन विज्ञान, पेय पदार्थ बनाने का विज्ञान या क षि से सम्बन्धित वनस्पति विज्ञान और अनेकों ऐसे विज्ञान थे जो पुरापाषाण काल में अनजाने थे। उन्हें इस बात की भी जानकारी थी कि क षि का जलवायु से घनिष्ठ संबंध होता है।

नवपाषाण काल वास्तव में एक क्रांतिकारी और युग प्रवर्तक काल था। इसे प्रगति का महान युग कहा जाता इस युग में बड़े ही क्रांति अविष्कार हुए। ऐसा माना जाता कि 18 वीं शताब्दी की औद्योगिक क्रांति के पहले तक मानव सभ्यता इन्हीं अविष्कारों पर आधारित रही। प्रक ति पर विजय प्राप्त करने के लिए मानव ने इस युग में प्रयास किए मनुष्य ने प्राक ति साधनों का प्रयोग करना इसी काल में सीखा, जिससे उसमें नई आशा उत्साह, तथा उपलब्धि का संचार हुआ। इस काल में मानव सभ्यता का आधार वास्तव में स्थापित हो चुका था।

इसी कारण इतिकासकारों ने इस युग को मानव सभ्यता का प्रथम क्रांतिकारी चरण माना है। इस काल के मानव में मनुष्यता तथा विवेक की जाग ति हो चुकी थी। किन्तु अभी तक उसे पूर्ण रूप से सभ्य नहीं माना जा सकता था। इस काल में सभ्यताा के मुख्य तत्व का विकास नहीं हुआ था। इस काल में सभ्यताा के मुख्य तत्व का विकास नहीं हुआ था। नव पाषाण काल में पूर्ण रूप से न तो राज्यों का विकास हुआ था और न ही राजा की शक्ति का उदय हुआ था। इस काल में धातुओं का केवल प्रदुभार्व ही हुआ था। उन्हें प्रयोग में नहीं लाया जाने लगा था। इस युग को मानव सभ्यता के विकास का सर्वप्रथम क्रांतिकारी शोपान माना गया है।

अध्याय-3
शिल्प विशेषीकरण एवम् श्रम का विभाजन
[(Division of Labour & Craft specialization (Chalcolithic Age)]

ताम्रपाषाण काल

नवपाषाण काल में क षि की शुरूआत के साथ ही मानव के जीवन में स्थायित्व आ गया था और साथ ही उसने पशुपालन की भी शुरूआत कर दी थी। इस काल का मानव अब खाद्य संग्रहकर्ता से खाद्य-उत्पादनकर्ता बन गया था। क षि कर्म में प्रायः स्त्रियां संलिप्त रहती थी तथा शिकार मे पुरूष संलग्न थे। हांलाकि क षिकर्म अभी विस्त त पैमाने पर नही था। चाक पर निर्मित म दभांडो की शुरूआत हो चुकी थी, लेकिन अधिकतर टोकरी पर बने, हाथ निर्मित और घुमावदार तरीके से बनाए जाते थे। यह कार्य इस काल के मानव में अन्य कार्यो के साथ ही किए। मिश्र में फायूम तथा मेरिमदे नामक स्थलों पर तरीके से क षि करने के प्रमाण नवपाषाण में मिलने शुरू हुए। सिंचाई व्यवस्था की भी शुरूआत हो चुकी थी। लेकिन इन सभी उपलब्धियों के लिए किसी प्रकार के विशेषीकरण की अभी आवश्यकता नहीं थी।

कालान्तर में जब मानव स्थायी तौर पर बसने लगा तथा जनसंख्या की व द्धि के कारण उनके भरण-पोषण के लिए जब अतिरिक्त अन्न की आवश्यकता पड़ी, तो इस जरूरत को पूरा करने के लिए नई तकनीक के विकास पर जोर दिया गया। तकनीकी क्षेत्र में यह परिवर्तन लाने में धातुओं के अविष्कार का बड़ा योगदान है। जिसके कारण उस समय के समाज में आमूल परिवर्तन आए। सर्वप्रथम मानव में जिस धातु का प्रयोग करना सीखा वह तांबा था। इसके पिछे कारण यह था कि तांबे तथा अन्य अलोह धातुओं को से निकालना आसान है। क्योंकि इनकी गलाने की मात्रा कम है। तांबे को प्रयोग में लाने के लिए उसे उसके धातुज्ञान का होना आवश्यक था। पहले उसे से अलग करना या इससे पूर्व उसे वैसे ही पीट-पीट करद्वारा औजार बनाए जाने थे या तांबे को गलाकर धातु अलग करना इसे तरीका कहते है। इसके लिए पर्याप्त तापमान का होना आवश्यक है। यह समस्त कार्य एक विशेषज्ञ ही कर सकता है। इस प्रकार समाज के ऐसे निपुण वर्ग की उत्पति हुई जो अन्न उत्पादन की प्रक्रिया में नहीं लगा हुआ था। इस वर्ग की खाद्य जरूरतों की पूर्ति क षक वर्ग करता था तथा क षकों के लिए औजारों तथा अन्य वस्तुओं की पूर्ति यह कारीगर वर्ग करता था। दूसरे शब्दों में समाज के वे दोनों वर्ग एक-दूसरे पर आश्रित हो गए थे।

इस प्रकार इस काल में जब पाषाण के औजारों के साथ-साथ तांबे के औजारों का भी प्रयोग किया जाने लगा ता यह काल ताम्रपाषाण काल कहलाया। तांबे से निर्मित औजार पत्थरों के औजारों से ज्यादा प्रभावशाली थे, क्योकि ये उनकी अपेक्षा तीखे थे और इन्हें किसी भी आकार में आसानी से ढाला जा सकता था। दूसरा तांबे से औजारों का निर्माण करना भी आसान था क्योंकि इसे पिघलाना आसान था और बाद में इसे कोई भी आकार देना भी सरल था।

तांबे के ज्ञान तथा इसके औजारों के प्रयोग से समाज मे न केवल एक नए वर्ग का उदय हुआ हांलाकि इसके साथ ही नवपाषाणकालीन समाज की आत्म-निर्भर अर्थव्यवस्था के स्थान पर अतिरिक्त उत्पादन की अर्थिकता का उदय हुआ। क्योंकि समाज के इस विशेष कारीगर वर्ग को उसी अतिरिकत उत्पादन में से ही अनाज दिया जाता था। दूसरे, तांबा सभी स्थानों से मंगवाया जाता था। इस कारण इस काल में व्यापारिक गतिविधियों की भी शुरूआत हुई। प्रांरभ में यह विमिमय प्रणाली (वस्तुओं के आदान-प्रदान) पर आधारित था। वन गति-विधियों को बढ़ावा देने में घुम्मकड़ कबीलों या जातियों का विशेष योगदान रहा क्योंकि एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में घुमते रहने के कारण इन्हें विभिन्न प्रदेशों के प्राक तिक संसाधनों की पूरी जानकारी रहती थी।

ताम्रपाषाणीय युग में धातु ज्ञान के अतिरिक्त और भी बहुत चीजों का अविष्कार हुआ जैसे कुम्हार की भट्टियां, और चाक इत्यादि। सिचालक नामक स्थान से कुम्हार की अनेक भट्टियां उत्खनन में प्राप्त हुई है। जिनमें हवा पंहुचाने का विशेष प्रबन्ध था जिससे तापमान नियंत्रित किया जा सके यानि तापमान को आवश्कतानुसार घटाया और बढ़ाया जा सके। इससे बर्तनों को अच्छी तरह पकाया जा सका। इस कार्य को भी निपुण व्यक्ति या वर्ग ही सम्पन्न कर सकता था साधारण व्यक्ति नही। इसलिए म दभांडो का निर्माण करने वाला एक अन्य वर्ग (कुम्हार वर्ग) भी इस काल में अस्तित्व में आया, जो अन्य अत्पादन गतिविधियों में हिस्सा नहीं लेता था।

इस काल में चूंकि क षि से अधिक अन्न उत्पादन की आवश्यकता थी तो इसके लिए भी क षि में नए-नए तरिकों का अविष्कार हुआ। अभी तक क षि का कार्य अधिकतर स्त्रियां ही करती थी परन्तु अन्न उत्पादन की मांग में व द्धि होने के कारण मानव ने बैलों द्वारा हल खींच कर खेती करना आंरभ कर दिया। इस प्रकार उसने पशु शक्ति को काबू कर अपना प्रभुत्व भी बढ़ा लिया। इस काल के मानव ने व्यक्तिगत संपति की अवधारणा को अपना लिया। जिसके पास ज्यादा धन उसका ज्यादा महत्व। इसके साथ-साथ ईटों के घर बनाना,मुंद्राक का प्रचलन भी इस काल में शुरू हुआ जो व्यक्तिगत संपति तथा शक्ति का घोतक था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ताम्रपाषाण युग विशेषीकरण का काल था। इसके अतिरिक्त पहिए वाली गाड़ी की शुरूआत हो गई जिससे एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना आसान हो गया।

क्षेत्र विभाजन :
(Division of Land)

ताम्रपाषाण युग के प्रांरभिक प्रमाण हमें मिश्र, एशिया माइनर में सीरिया, फिलिस्तीन, असीरिया, इरान, इराक, अफगानिस्तान तथा उतर-पश्चिमी भारतीय उपमहाद्वीप में मिलते है। यूरोप, चीन तथा अन्य क्षेत्रों पर यह काल हजारदो हजार बाद शुरू हुआ। प्रांरभिक क्षेत्र का बहुत सारा भाग पर्वतों और रेगिस्तानों से घिरा हुआ है, जिसके बीच नदी घाटियां हैं जैसेः नील, दजला-फरात, मिश्र और सिन्ध इत्यादि।

सर्वप्रथम मैसोपोटामिया की हुसना संस्क ति में तांबा निकालने तथा उसका प्रयोग करने के प्रमाण मिले है कार्बन [14] विधि के आधार पर इनका काल निर्धारण 5010 ई०पू० से 5080 ई०पू० निर्धारित किया गया। इस संस्क ति के लाग म दभांडो को चाक पर बनाकर भट्टियों मे अच्छी तरह पकाते थे, जिन पर लेप करके चित्रकारी की जाती थी। इसके अतिरिक्त अनेक मिट्टी की स्त्री आक तियां तथा जंगली और पालतु पशुओं की आक तियां भी मिली है। अनातोलिया के कई स्थलों से इस प्रकार के प्रमाण मिलते हैं। इराक में हलफ नामक स्थान से भी इस प्रकार के प्रमाण मिले हैं यहां से मोहरों के आकार के पैंडेंट भी मिले है जिन पर ज्यामितिय डिजाइन बने है विश्व की यह प्राचीनतम मोहर है जिससे स्वामित्व की अवधारणा का प्रांरभ माना जाता है।

इस काल के मानव ने उबेद नामक स्थान पर दलदली भूमि को क षि योग्य बनाया और नहरों का निर्माण किया। ये तांबे की कुल्हाडियों का प्रयोग करते थे। तथा यहां बड़े-बड़े सार्वजनिक भवनों के निर्माण की शुरूआत 4015 ई०पू० में हुई।

कथान के समीप स्चिालक में सर्वप्रथम तांबे को पीटकर उसे ढालने के बाद, सूए तथा पिन इत्यादि का निर्माण शुरू हुआ तथा पकी मिट्टी के म दभांडो का भी विकास हुआ।

सामाजिक स्थितः
(Social Life)

यद्यपि इस काल में लोगों का मुख्य व्यवसाय क षि था लेकिन इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के शिल्प उद्योग भी अस्तित्व में आ गए थे। जैसेः धातु विशेषज्ञ, कुम्हार, कारीगर इत्यादि। इस प्रकार प्रत्येक वर्ग की कार्य निपुणता इस काल में देखने को मिलती है। समाज के विभिन्न वर्ग एक-दूसरे पर आश्रित थे। हल्फ तथा उवेद में स्यालक की भाँति ही प्रत्येक वर्ग का प्रत्येक काम के लिए विशेषिकरण देखने को मिलता है। परन्तु 10 उवेद में उतर काल में इन लोगों ने इसी क्षेत्र में अत्यधिक विकास किया जिसकी भरपाई क षकों द्वारा अतिरिक्त उत्पादन करके की गई। यहां भी पित सतात्मक समाज देखने को मिलता

है। इसी प्रकार टेप गावरा में भी अलग-अलग वर्गो की विशेष कार्य में निपुणता देखने को मिलती है। यहां बाहर की जातियों के आने से जनसंख्या बढ़ गई थी जिससे अतिरिक्त उत्पादन की आवश्यकता पड़ी। जोकि इस समय की सबसे महत्वपूर्ण की सबसे महत्वपूर्ण site है में भी समाज का वर्गीकरण देखने को मिलता है। इनमें किसान कुम्हार, बढ़ई, जुलाहा मिस्त्री शिल्पी आदि देखने को मिलते है। यहां पर घुम्मकड़ कबीलों के भी प्रमाण मिलते है। इसके साथ-साथ यहाँ दासों के प्रमाण तथा निवास स्थान की स्थिति के आधार पर जैसे सरदार प्रायः केंद्रीय स्थल पर रहते थे। जारमो तथा हुसना में कुम्हारों का कार्य घुम्मकड़ कबीलों द्वारा किया जाता था। यहां पर कुम्हारों के प्रशिक्षण के कार्य में शिक्षा पुत्र का या शिषय को दी जाती थी। यहां लोगों के स्थानतरंण के प्रमाण मिलते है। ये लोग प्रायः व्यापार विनिमय द्वारा ही अपनी आवश्कताओं की पूर्ति कर लेते थें। इनका मुख्य व्यवसाय क षि था। इसी प्रकार जैतून, नामागजा मे भी इसी प्रकार के प्रमाण देखने को मिलते है।भारतीय स्थलों में इनाम गांव प्रमुख है जो क षि पर ही आधारित ग्रामिण व्यवस्था में रहते थे। यहां पर जातीयता के प्रमाण सरदार के घर के प्रमाण बस्ती के केंद्र में होने से मिलते है। यहां पर अन्न संग्रह के लिए भी स्थान मिले हैं।

घर निर्माण :

इस काल में लोग मुख्यतः स्थायी रूप से कच्ची इंटो या सूर्य की रोशनी में सुखाई इंटो के बने घरों में रहते थे। स्चिालन में लोग गांवों में रहते थे जो खंडहरों के ऊपर बसाए जाते थे। यहां पर घर खांचे में तली सूर्य की धूप में पकी ईटों से बनाए जाते थे और इसी प्रकार के प्रमाण जारसो और हुसना से भी मिलते है। परन्तु यहाँ पर कुछ घरों में पत्थरों के भी दीवारों के प्रमाण मिलते है। इसके विपरीत हल्फ में घरों के प्रमाण जमीन के नीचे मिलते है जिनके छोटे कमरे होते थे। ये लोग चूने से निर्मित फर्श तथा दीवारों पर प्लास्टर करते थे। परन्तु टेप गवारा में छोटे नगर मिलते है जहाँ पर स्मारक स्थाप्तय के घर मिलते है। यहां पर मंदिर के प्रमाण मिलते हैं जो केन्द्रीय स्थान पर बने होते थे जो भटठे से पक्की ईटों के बने थे। यहां पर अनेक कमरों के होने के प्रमाण मिलते है। इसके विपरीत जैतु में बड़ी-बड़ी बस्तियों के प्रमाण मिलते है जहाँ पर 18 कमरों या अधिक कमरों वाले घरों के प्रमाण मिलते है। यहाँ दीवारो पर ज्यामितिय डिजाइन मिलते है। जैतून और नामागज़ा में घरों के छोटे होने के प्रमाण मिलते है। जहाँ उच्च स्तर की बस्ती भी मिलते है। इसके विपरीत इनामगाँव में चूल्हों सहित बड़ी-बडी कच्ची मिट्टी के मकान और गोलाकाट गढ़ढो के मकान मिले है। यहां पर एक घर ऐसा मिला है जहाँ पर चार कमरे आयताकार एवं एक कमरा वर्गाकार है। यहां पर अन्न संग्रह तथा राजस्व के एग्रीकरण के लिए अलग से व्यवस्था देखने को मिलती है।

औजार :

इस समय जो सबसे अधिक एवं महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिलता है वह है इस काल के औजारों में आया परिवर्तन, क्योंकि अब तांबे को विभिन्न आक तियों में सुगमता से ढाल कर तथा पीटकर अधिक प्रभावशाली तथा मजबूत औजार बनाए जाते थे। हल्फ में तांबे के साथ पत्थरों तथा हड्डियों से बनाए गए औजारों के भी प्रमाण मिलते है। तांबे के औजारों में मुख्यतः चाकू तथा छुरी प्राप्त हुए हैं। स्थ्ल में युद्ध होने के प्रमाण मिलते है क्योंकि यहाँ पर मछली पकड़ने का कांटा, बरछी, तलवार जोकि तेज धार वाले तांबे से बनाए गए औजार थे। ये औजार एक बार टूटने पर दोबारा ढाले जा सकते थे। इस प्रकार सभी स्थलों से प्राप्त औजारों में अधिकता तांबे के औजारों की मिलती है।

कला :

इस काल के म ंदभाडो में विशेष रूप से परिवर्तन देखने को मिलते हैं। सभी स्थलों पर तेज गति से घूमने वाले चाक पर बनाई गई म दभांड़ के प्रमाण मिलते हैं। टेप गवारा में कुम्हार द्वारा पहिए पर सुंदर कलश के बारे में प्रमाण मिलते हैं। यहाँ पर शिल्पी के बारे में भी प्रमाण मिलते हैं। यहाँ पर चरखें व तकलियाँ मिली है जिनसे इनके सूत कातने तथा वस्त्र निर्माण के प्रमाण मिलते है। ये चाको पर म दभांड भी बनाते थे। इन्होंने कला के क्षेत्र में विशेषीकरण प्राप्त था। इसलिए विभिन्न स्थलों से जैसे टेपगावरा इत्यादि में उसकी अलग बस्ती के प्रमाण मिलते हैं। इसके साथ-साथ अन्ऊ से हमें नाव बनाने के प्रमाण मिले है जो पाल की नाव होती थी। यहीं पर ऊनी वस्त्र, कॉटन के वस्त्र, चटाइयों के भी प्रमाण मिलते है। तथा ये काफी अच्छे डिजाइन की मिलती है। यहाँ पर हाथी दाँत से वस्तुएं चूना तथा टेराकोट की मूर्तियां भी प्राप्त होती है। इसी तरह लगभग सभी स्थलों पर बैलगाड़ियों के प्रमाण मिलते है। इनामगांव के शिल्पकार अधिक कुशल थे। यहां से विशेषतः कार्नेलियन, स्टेटाइट, क्वार्टज, क्रिस्टल जैसे महंगे पत्थरों के मोती मिलते है।

आर्थिक स्थितिः
(Economic Condition)

इनके आर्थिक जीवन में मुख्यतः व्यापार क षि तथा पशुओं के बारे मे जानकारी मिलती है।

1.क षिः

ताम्राष्मीय काल की लगभग सभी स्थलों की अर्थ व्यवस्था क षि पर निर्भर थी। कुछ स्थलों पर अतिरिक्त उत्पादन के लिए विभिन्न उपायों का प्रयोग किया गया जैसे उवेद में दलदली भूमि से पानी निकाल कर उसे क षि योग्य बनाया जाता था तथा अतिरिक्त पानी का प्रयोग सिंचाई के लिए किया जाता था। टेप गवाया जारमो हुसना, तथा स्यालक में सिंचाई के प्रमाण मिलती हैं। ये प्रायः क षि को जोतने के लिए पशुओं का प्रयोग करते थे। स्यालंक से बाहर की प्रजातियों के पौधें के प्रमाण मिले हैं। इनकी मुख्य फसले जो, गेहूँ, बाजरा, मसूर थी इसके अलावा कुछ स्थलों पर सब्जियों के उत्पादन के प्रमाण मिलते है। कुछ स्थलों जैसे इनामं गांव से सूत के भी प्रमाण मिले है। यंहा पर अन्ऊ में तिलहन के प्रमाण मिले है। नामगजा में इन सभी के साथ-2 उडद तथा मूंग के भी प्रमाण मिलते है। स्यालक में सिचांई के चश्मों का प्रयोग किया जाता था पंरतु टेप गयाना में चरागाहों की अधिकता मिलती है।

क्योंकि इस काल में क षि करने के लिए बधिय कर जूले (Yole) की साथ बैलों का प्रयोग क षि में करने लग गए थे इस लिए इन पशुओं को विशेष बाडों में राव अच्छी तरह खिलाया मिलाया जाता था इन का गोबर इक्कठा कर खेतों में खाद के रूप प्रयोगो कर अधिक फसल ऊगाई जाने लगी।

2. पशुपालन :

काफी मात्रा में पशुओं का पालतू बनाया जाना नवपाषाण में ही गया था पंरतु अब यह और भी अधिक देखने को मिलता है। स्यालक में गाय, भेड़, बकरी, इत्यादि को पालतू बनाया जाना देखने को मिलता जिनका प्रयोग दूध एवं मांस के लिए किया जाता था। हल्फ में बैल तथा ऊंट को भी पालने के प्रमाण मिलते है जिनकी सहायता से क षि की जाती थी। उबेद में भेड़ बकरी, सुअर, घोडा, ऊँट, बैल इत्यादि के पालतू बनाने के प्रमाण मिलते हैं। तेप गावरा में भी इन सभी पशुओं के पालतू बनाने के प्रमाण मिलते है। पंरतु onagar का प्रयोग यहां भारवाहक के रूप में किया जाता था परन्तु अन्ऊ में घोड़े के हड्डियों के प्रमाण मिलते है। ये इसका प्रयोग माँस, दूध तथा भारवाहक के रूप मिलते है यहां ऊँट का प्रयोग मरूस्थल को पार करने के लिए किया जाता था। जारमो और हुसना में पशुओं का प्रयोग खादप्राप्ति के लिए किया जाता था तथा बैल से हल जलवाने के भी प्रमाण मिलते है। जैतून में मछली के शिकार के प्रमाण मिलते है। नामताजा में पशुओं का प्रयोग रहट से पानी खीचने के लिए किया जाता था। हल जोतने में घास लाने के लिए इस काल में बैलों को बघिया करने का काम शुरू किया गया तथा जूलो (Yoke) का प्रयोग इस काल में ही हुआ और भार वाहक के रूप में बैलों का प्रयोग दो तथा चार पहिए की कैंडट (Wheeled) ढकी हुई गाडियों में किया जाने लगा।

3. व्यापारः

ताम्राष्मीय काल में व्यापार का अत्यधिक प्रचलन देखने को मिलता है। लगभग सभी स्थलों पर अतिरिक्त उत्पादन किया जाता था जिसका मुख्य उद्धेश्य व्यापार करना था। स्यालक में सोने को आयात किया जाता था जिसे उत्तरी अफगानिस्तान से मंगाया जाता था। यहां पर पैडेंट मोहर की प्राप्ति हुई है, जो कि नितिसम्पति तथा व्यापार के होने का प्रमाण देती है। इसके साथ-साथ मुहरे भी प्राप्त हुई हैं। हल्फ में कुछ मुहरे मिली है जिन पर ज्यामितिय चित्र मिले है, जिससे यहां पर व्यापार होता था। इसके प्रमाण मिलते हैं। यहां पर फारस की पहाड़ियों से शंख के तथा आर्मेनिया से ज्वाला कांच के आयात के प्रमाण मिलते है। यहां पर वान झील के पास हलाफिरएन् औधोगिक समुदाय के प्रमाण मिलते हैं जो मुख्यतः उत्पन्न का कार्य करते थे। उबेद में ताबीज रूपी मोहरे मिली है जिन के पिछे के भाग में लूप तथा दूसरी तरफ ज्योमित आक ति के स्थान पर जानवरों की मूर्तियां अकिंत थी जिनसे इनके व्यापार का प्रमाण मिलते है। टेप ग्वारा में अफगानिस्तान से वैदयत, सुमैर से छोटी वस्तुएं भी प्राप्त करते थे। यहां पर दक्षिण से आयातित वस्तुएँ भी प्राप्त होती है। अन्ऊ में भी इस समय की कुछ मोहरें मिली है, जारमोहुस्ना में तांबा हर जगह नहीं मिलता यहां पर खनन का कार्य किया जाता था। इन सभी पत्थरों तथा धातुओं के आपात करने के लिए क षि

उपजों को दिया जाता था। जिन्हें इन लोगों को जरूरत से अधिक उपजाना पड़ता था ताकि वस्तु विनियम के आधार पर व्यापार में इन्हें प्रयुक्त किया जा सके। नामागाजाा में बैल गाडियों का प्रयोग व्यापार के लिए किया जाता था। हयूक में Stampseats मिलती है जो पकी मिट्टी की बनी हुई थी।

4. धर्मः

यहां पर लगभग सभी स्थलों से लोगों की धार्मिक आस्था का पता चलता है हल्फ में मन्दिरों के प्रमाण मिले है जिसका निर्माण ग्रामवासियों के सहयोग से होता था यहां लोग म तकों का संस्कार एक विशेष विधि द्वारा करते थे। अतः उबेद से म वको को मुड़ी हुई अवस्था में दफनाने का प्रमाण तथा गेरू से उनके शरीर पर लेप किया जाता था। उवेद में मात देवी की पूजा के प्रमाण मिले है। यहां पर म तकों के साथ खाने पीने की चीजे, ऑगन में दबाते थे। यहां पर बैल की भी पूजा की जाती थी। टेप गावरा में मन्दिरों के अवशेष मिले है यहां पर भी मात देवी की पूजा की जाती थी। यहां पर प्रायः शवों को जलाया जाता था। अन्ऊ में भी लोग धार्मिक प्रव ति रखते थे। पूरे विधि-विधान से कर के तांबे की कुछ वस्तुएँ रखकर घर के आगंन में म तकों को दबाते थे। ऐसा ही जारमो हुस्ना में देखने को मिलता है। परन्तु इनामगांव में ये लोग विशेष रूप से उतर दक्षिण की ओर गाडते थे। यहां पर सभी स्थानों से किसी अराध्य देवी की पूजा के प्रमाण मिलते हैं।

इस प्रकार ताम्रपाषाणीय युग जिसने नवपाषाण संस्क ति का स्थान लिया, समाज में अब आत्म-निर्भर अर्धव्यवस्था का स्थान अतिरिक्त उत्पादन प्रणाली ने ले लिया। इस प्रक्रिया में विशेषज्ञों का योगदान काफी रहा इन विशेष वर्गो में कारीगर धातुकार, कुम्हार इत्यादि शामिल थे। धातु प्रचलन में आने से पाषाण उपकरणों की संख्या में कमी आई। इसके बाद के काल में तो धीरे-धीरे पाषाण उपकरण प्रायः लुप्त से हो गए। तांबे धातु के ज्ञान से ही धीरे-धीरे मिश्रित धातुओं को बनाने की कला का विकास हुआ। कांलान्तर में तांबे और टीन को मिलाकर कांस्य धातु का निर्माण किया गया, जिस काल में संस्क ति के स्थान पर सभ्यताओं का विकास हुआ। इसके अतिरिक्त इस काल में शुरू हुई सिंचाई व्यवस्था, मुद्राकों का प्रचलन बड़े-बड़े सार्वजनिक भवनों और मम्यिरों के निर्माण इत्यादि ने सभ्यताओं के विकास में अपना एक अनुठा योगदान दिया।

अध्याय-1

B. Bronze Age Civilizations

सुमेरियन सभ्यता
(Sumerian Civilization)

मैसोपोटामिया की सभ्यता एवम् नगर राज्यों का विकास दजला एवम् फरात नदियों के मध्य क्षेत्र में विकसित हुआ। इस क्षेत्र में यह विकास नवपाषाण काल में प्रारंभ हुआ और मेसोपोटामिया के उतरी क्षेत्र में उतरी सीरिया के निचले घास के मैदान तथा दूसरा क्षेत्र दक्षिणी मैसोपोटामिया था, जो ऊपरी हिस्सा कहलाता था। यहां निचले क्षेत्र में उम्मदबधियाह, हस्सुना तथा समरा और उसके बाद हलफ संस्क तियो का विकास हुआ जबकि दूसरे (ऊपरी क्षेत्र) में 30 वेद तथा सुसियाना संस्क तियों का विकास हुआ।

उम्मदबधियाह इस क्षेत्र की प्राचीनतम संस्क ति थी जहां के निवासियों ने अण्डाकार निवास स्थल बनाए बाद के काल में घरों की दिवारों पर चित्रकारी की भी शुरूआत की। ये निवासी म दभांड बनाने की कला से भी परिचित थे। जंगली पशुओं के शिकार के अतिरिक्त जौं, तिलहन और सफेद मटर की खेती भी करते थे। लगभग 6000 ई०पू० के आसपास इस संस्क ति के पश्चात् यहाँ हस्सुना संस्क ति (6000-5250 ई०पू०) अस्तित्व में आई। इस संस्क ति के दौरान गांव तथा यहां की जनसंख्या मे तेजी से व द्धि हुई। इस संस्क ति के एक स्थल यरीम टेप (Yarim tape) से एक विशाल भवन संरचना वाले सार्वजनिक अन्नागार के प्रमाण मिले हैं। पशु पालन के अलावा यहां गेंहू, जौ और तिलहन की खेती की जाती थी। इस स्थल से कई-कई कमरों वाले घरों के भी प्रमाण मिले है। इस स्थल के म ंदभाड बहुत कलात्मक और चित्रकारी युक्त थे इन्हें हस्सुना डीलैक्स वेयर का नाम दिया गया है। संभवतः सर्वप्रथम तांबा धातु का इन्होंने प्रयोग किया। ये कीमती पत्थरों को दूसरे प्रदेशों से आयात कर औजारों का निर्माझा करते थे। यहां से प्राप्त पत्थर की मुद्राक (Seal) इस संस्क ति के विभिन्न पहलुओं को दर्शाती है।

टिगरीस (Tigrus) नदी के किनारे बगदाद से 100 कि.मी. उतर में बसे Tell-es-sawaan नामक स्थल से हमें हस्सुन से भी विकसित समरी संस्क ति की जानकारी मिलती है। जिनका तकनीकी स्तर काफी उच्च था और दूसरे क्षेत्रों से इन्होंने व्यापारिक संबध भी स्थापित किए। म तकों का शवाधान ये चटाइयों में लपेट कर कीमती पत्थरों तथा तांबे के आभूषणो को शव के साथ रखते थे। यहां से प्राप्त अल्वास्टर पत्थर की सुन्दर स्त्री आक तियां इनके धार्मिक कार्यो की घोतक है। एक मंदिरपरिसर के नीचे 130 में अधिकतर बच्चों को दफनाने के प्रमाण मिलते हैं। क षि के अलावा यहां सिंचाई व्यवस्था भी काफी उन्नत थी। इस काल के महत्वपूर्ण भवन T आकार के थे जो बाद में सुमेरियन T आकार के मन्दिरो में विकसित हुए।

5500-4700 ई०पू० के आसपास हल्फ संस्क ति जो उतरी सीरिया, टर्की तथा उतर-पश्चिमी इराक में अस्तित्व में आई, इसका अन्य विकसित संस्क तियों से सर्म्पक और आदान-प्रदान हुआ। इस काल में 'थोलाई' एक प्रकार के गोलभवन, जो चाबीनुमा था को अन्नागार के तौर पर प्रयोग किया जाता था इसके अतिरिकत यह स्थान धार्मिक स्थल के रूप में भी इस्तेमाल होता था। इस संस्क ति के निवासियों ने क षि के आलावा सुन्दर म दभांडों का निर्माण किया। जिन पर Textile डिजाइन बने होते थे तथा ये डीलक्स बर्तन सुदूर के प्रदेशों में निर्यात किए जाते थे ये म दंभाड लेबनॉन में रामशामरा स्थल पर मैडिट्रेनियन समुद्र तक तथा उतर ये वान झील तक टर्की से प्राप्त हुए है। इस काल में वस्त्र उद्योग काफी विकसित था। तांबाधातु की जानकारी लोगों को थी। दूर प्रदेशों से व्यापार के साथ-साथ इन्होंने कबीलाई आधार पर सामाजिक संगठन का विकास कर लिया था जो प्रकार का था इस प्रकार यहां राजनैतिक तथा सामाजिक ढांचे के विकास के प्रमाण मिलते हैं।

दक्षिण मैसोपोटानिया में उर (Ur) शहर के कुछ दूरी पर स्थित अलग उब्बेद नामक स्थल पर सुमिरियन सभ्यता का विकास हुआ। 4000 ई०पू० के बाद यहां की संस्क ति ग्रामणीकरण से धीरे-धीरे शहरी संस्क ति में परिवर्तित हुई। कस्बों और शहरों

का विकास हुआ। जैसे सुसा, उकैर, उरूक, इरिडू, उर इत्यादि इस काल के महत्वपूर्ण स्थल थे। इन स्थलों के मध्य में मन्दिर तथा उसके आस-पास बस्तियों के प्रमाण मिलते हैं। मन्दिर के आसपास पुजारी, उच्चवर्ग तथा शिल्पी वर्ग निवास करते थे तथा इसके बाहर क षकों के निवास स्थल थे। इरिडू शहर में इस काल में करीब 5000 से अधिक जनंसख्या थी। एक ही स्थल पर बार-बार मंदिर निर्माण से उस स्थल की उंचाई आसपास के क्षेत्र की अपेक्षा बढ़ गई थी इस काल में मंदिर की पवित्रता की अवधारणा शुरू हो गई थी। कांलातर में सीढीनुमा सुमेरियन मंदिरों का विकास इन्हीं मंदिरों से हुआं इस काल से इनके सामाजिक संगठन में भी बदलाव देखने को मिलता है। मंदिरों के आकार भी अपेक्षाक त बढ़ने लगे तथा मन्दिरों के पुजारी की बढ़ती हुई शक्ति इस काल में एक केन्द्रीक त शक्ति होने का प्रमाण देती है। इस प्रकार इस काल में सुमेरियन नगर-राज्यों का विकास हुआ तथा इसके बाद के काल को नगर-राजयों का काल कहा जाता है।

नगर राज्य/उरूक काल (3500 - 3100 B.C.) (City States/URUK Period)

इस काल की खास विशेषता थी नगरीय केन्द्रो का स्थापित होना, जिनसे बाद की शहरी सभ्यता का उदय हुआ। इस काल में विभिन्न नगरों के उदय के कारण नगर राज्यों का काल या इसे उरूक नामक नगर, जो इस काल का प्रमुख नगर केन्द्र था, के नाम पर उरूक काल भी कहा जाता है। यह इस काल के पांच प्रमुख नगर राज्यों मे से एक था और सबसे अधिक उत्खनित स्थल भी था। पांच प्रमुख नगर उर, उरूक, किश, लगाश तथा निप्पुर थे। इस काल में जनसंख्या मे व द्धि हुई जिसका कारण था बढ़ी जन्म पर और घुम्मकडों का स्थायी निवास इत्यादि। नगरों की जनसंख्या और उनका क्षेत्र भी बढ़ा। इस काल के शुरू में यानि 3500 ई०पू० में दक्षिणी मेसोपोटामिया मे 17 गांव 3 कस्बे तथा केवल एक ही छोटा शहर था। लेकिन 3200 ई०पू० तक गांवों की संख्या 112, छोंटे कस्बें 10 और एक शहर था। लेकिन 200 वर्षो के पश्चात् गांवों की संख्या 112 से 124 छोटे कस्बें 10 से 20 तथा शहर एक से 20 तथा एक बड़ा शहर बन गया था। इस काल मे सामाजिक ओर तकनीकी परिवर्तन भी हुए। इन परिवर्तनों ने पूर्णतः ग्रामीण उब्बेद संस्क ति को एकीक त शहरी संस्क ति में बदल दिया। जिसमें बड़े-बड़ें सार्वजनिक भवनों (मन्दिरों) का निर्माण और लेखन काल का विकास, नए प्रकार के म दभांड, सिलैंडर आधार की मुद्रांको का प्रचलन शामिल है। इन सभी ने एक नगरीय क्रांति की इसके साथ समाज में भिन्नताएं तथा विशेषीकरण हुआ।

इस काल में मेसोपोटामिया के विभिन्न नगरों के बीच आपसी प्रतिर्स्पधा शुरू हो गई थी। प्रत्येक नगर के मध्य उस नगर के प्रमुख देवता का मन्दिर होता था। उरूक का मुख्य देवता Anu (अनु) था जो आकाश का देवता भी था। (इ-अन्ना) प्रेम की देवी थी। नगर मे इनके भव्य मंदिरों का निर्माण हुआ। एक मन्दिर चूने के पत्थरों से निर्मित था। जो 86 X 33 मीटर का था जिसकी दिवारों और स्तम्भो पर पकी मिट्टी के शंक (Cones) से डिजाइन बने हुए थे। इसी तरह अन्य शहरों जैसे मिप्पुर, किश, सरेडू, उर, लगाश इत्यादि के भी अपने देवता थे और ये मंदिर भी भव्य तथा इंटों के चबूतरे पर निर्मित थे। सामान्य नगरों से इनकी ऊंचाई 15-16 मीटर तक थी।

मंदिरों के अनेक महत्वपूर्ण कार्य थे और मंदिरों में पुजारी का मुख्य स्थान था। मंदिरों का मुख्य कार्य क षि के लिए नहरें खुदवाना और पानी की व्यवस्थ करना था। इसके बदले में मंदिर क षकों से लगान के रूप मे अन्न की प्राप्ती होती थी और इसे मंदिरों में जमा किया जाता था। मंदिर के परिसर में रहने वाले कारीगर, दुकानदार और बुनकर विभिन्न वस्तुओं का निर्माण करते थे, बाद में जिन्हें व्यापार के लिए बेचा जाता था। ये सभी कारीगर मंदिर के समीप ही निवास करते थे। मंदिर के समीप रहने वालों का सामाजिक स्तर अपेक्षाक त ऊंचा था। क षक एवम् अन्य वर्ग के लोग मंदिर के परिधि से बाहर निवास करते थे। समाज की इस नई सामाजिक व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति के लिए कानून, उसके अधिकार तथा एक अलग व्यवस्था द्वारा संचालित होने लगी जिसमें मन्दिर के पुजारी की भूमिका महत्वपूर्ण थी।

मंदिरों के कार्यो में बढ़ोतरी के साथ उनके आकार में भी व द्धि होने लगी। तथा मन्दिरों के पुजारियों की राजनैतिक स्थिति भी मजबूत होने लगी। क षि योग्य भूमि तथा बढ़ती जनसंख्या की पानी व्यवस्था के लिए नहरों का निर्माण करवाया गया। नहरें बनाने, उनका उचित रखरखाव तथा पानी के बंटवारे के लिए अनेक कर्मचारी नियुक्त किए गए। जिस कारण लोगों को रोजगार के अवसर प्राप्त हुए तथा वेतन के तौर पर उन्हें अन्न भी दिया जाने लगा। शुरू में हिसाब-किताब रखने का कार्य मौखिक रूप से किया जाता था लेकिन कांलातर में कार्य बढ़ने के कारण संकेत लिपि तथ कीलनुमा लिपि का आविष्कार भी इन्हीं मन्दिरों

में हुआ। इस प्रकार हम देखते है कि सिचांई व्यवस्था तथा नौकरशाही के कारण ही मैसोपोटानिया में सुमेरियन सभ्यता का विकास हुआ।

इस काल में मन्दिर शिक्षा के भी प्रमुख केन्द्र थे। कारीगरों, लिपिकों तथ नौकरों को प्रशिक्षण देना तथा जन साधारण को शिक्षा देना मंदिरों का ही उतरदायित्व था।

राजनैतिक एवम् सामाजिक व्यवस्था :
(Political and Social System)

इस काल में राज्यों की राजनैतिक संरचना धर्म पर आधारित थी। प्रत्येक नगर-राज्य का अपना अलग देवता था, सारी प्रजा उसी की सन्तान मानी जाती थी। पुजारी का राजनैतिक महत्व बहुत था क्योंकि वह सभी प्रशासनिक, धार्मिक और सामाजिक कार्यो का प्रधान था। राज्य में नहरे खुदवाना और सिचांई का प्रबंध उसके कार्यो में शामिल था। इस कार्य के लिए उसने अनेक व्यक्ति नियुक्त किए हुए थे। मन्दिरों में पुजारी तथा अन्य नौकरशाही के लोगों का वर्ग सबसे उतम माना जाता था। इसके बाद मन्दिरों में कार्य करने वाले कारीगरों, प्रशासकों तथा व्यापारियों का स्थान था। लिपि के अविष्कार के बाद हिसाब-किताब रखने वालों का महत्व काफी बढ़ गया था। लेकिन यह उन्नति अपेक्षाक त बाद में हुई। मन्दिरों में कार्यरत वर्ग परिसर के आस पास के क्षेत्र में निवास करता था। क षक तथा अन्य व्यक्ति मंदिर परिसर से बाहर निवास करते थे। इस प्रकार हम सामाजिक स्थिति के अनुसार प्रत्येक वर्ग के रहने के स्थान तथा उनकी प्राथमिकताओं को देख सकते हैं जिनका केन्द्र बिन्दु मन्दिर तथा उनके पुजारी होते थे।

इस काल में एक ही स्थान पर बार-बार मंदिर निर्माण के कारण उस स्थान की ऊँचाई काफी बढ़ गई बाद में इन्हीं से सुमेरियन जिग्गुरात या सींढीनुमा मन्दिरों का विकास हुआ। मंदिर इस काल में एक राजनैतिक ईकाई के रूप में भी उभर कर सामने आए तथा इस काल में व्यापार, सिचांई इत्यादि में काफी उन्नति हुई। कुछ विद्वान तो सिचांई व्यवस्थ तथा उसके साथ संबधित नौकरशाही का ही सुमेरियन सभ्यता के विकास का एक महत्वपूर्ण पहलू मानते है। इस काल में निर्मित मंदिर ही सुमेर की वास्तुकला के नमूने बने। सिलेन्डनुमा मुंद्राक (seals) का प्रचलन जो सर्वप्रथम इसी काल में शुरू हुई जो बाद के काल तक भी चलती रही। Seals मुख्यतः Lapis-Lazuli (लाजवर्द मणि) तथा कीमती पत्थरों से निर्मित थी ये कलात्मक भी थी। इनके अतिरिक्त सुन्दर मूर्तियों सोना, चांदी और तांबे के आभूषण तथा उन्नत म दभांड कला का विकास इस काल में था। धातु से इस काल में बहुधा बर्तन बनाए गए। इस काल की प्रमुख उपलब्धी लेखनकला की शुरूआत थी इसी से इस सभ्यता का विकास हुआ। सर्वप्रथम हमें इनके इ अन्ना (देवी) के मंदिर से इसका पता चलता है। लेखनकला में सर्वप्रथम तस्वीर कुरेद कर बनाई जाती थी बाद में कलाकार लेखनी की शुरूआत हुई। लेकिन इस काल में प्रत्येक चीज या विचार को एक चिन्ह दिया गया जिनकी एक Phonetic Value रही। मिट्टी की तखतियों (Tablets) पर लेखन की शुरूआत हुई। इन पर वस्तुओं की सूची जो भेजी गई या प्राप्त की गई दोनों अंकित होती थी। ये अभी केवल प्रशासनिक एवम् आर्थिक कार्यो के लिए ही प्रयुक्त होती थी।

उरूक काल की समाप्ती तक मैसोपोटामिया में समकालीन सभ्यताओं की अपेक्षा काफी प्रगति हो चुकी थी। अगला काल जिसे जेमदेतनस्र काल (3100-2900 ई०पू०) कहा जाता हैं, इसमें सर्वप्रथम बाहर की संस्क तियों से सम्पर्क भी स्थापित हो गए तथा इसे अर्न्तराष्ट्रीयकरण का काल भी कहा जाता है।

जेमदेत नस्र काल (3100 - 2900 ई० पू०)
(Protoliterate Period) :

इस काल का नाम एक शहर जो कि बगदाद तथा बिलोन के मध्य स्थित है, के नाम पर पड़ा। यह उरूक काल का ही विकसित रूप था। क्योंकि इस काल में धार्मिक तथा धर्मनिरपेक्ष मुद्रांकों का प्रचलन, वास्तुकला तथा अधिकतर म दंभाड पहले काल जैसे ही है। लेकिन कुछ नए म दभांड भी प्रचलन में आए जिन पर किया गया चित्रण इरान की ऐसामाहद संस्क ति के प्रभाव को दर्शाता है। लेकिन इस काल में धातु ज्ञान, कला, लेखन कला, तथा नौकरशाही में काफी विकास हुआ जो एक प्रफुल्लित सभ्यता की ओर एक महत्वपूर्ण कदम है।

इस काल में सुमेर में बाहर से अनेक लोग आए जिस कारण जनसंख्या में व द्धि हुई। इसके साथ ही अन्तराष्ट्रीयता का युग प्रारंभ हुआ क्योकि दक्षिण-पश्चिमी इरान में जिसका मुख्य केन्द्र सूसा (Susa) था में, ऐलामाइट संस्क ति का प्रारंभ हुआ। इन दोनों के आपस में व्यापारिक संबध स्थापित हुए। जेमदेत नस्र के म दभांड तथा मुद्रांक इरानी पठार में टेप याहया जो कि उरूक से 100 मील पूर्व में स्थित था तक मिलती है। इसके अतिरिक्त सुमेरियन प्रकार के मुद्रांक सूसा में ऐलामाइट भाषा में लिखे मिलने लगे। ये मुद्रांक इरानी पठार में याहया, स्याल्क, शहर-ए-सोख्ता, हिस्सार इत्यादि के अतिरिक्त तुर्कनेनिस्तान तक प्राप्त होते हैं। इन सभी स्थलों पर समान लिखे मुद्रांक, म दभांड, बड़े-2 भवन प्राप्त होते है। इन दोनों संस्क तियों का सम्पर्क बढ़ी जनसंख्या के लिए नए क्षेत्रों की खोज, नए संसाधन, व्यापार और बाजार के कारण हुआ इरानी क्षेत्र में सुयेरियन संस्क ति का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

दूसरी और पश्चिम में भी इस काल में मिस्र में सभ्यता का विकास शुरू हुआ। 3100 ई०पू० में मिस्र के Pre-Dynastic प्रारंभिक वंश की में से मेसोपोटानिया की मुंद्रांक नाकदा (Naqada) नामक स्थल से प्राप्त हुई है। लाजवर्दमणि पत्थर से निर्मित सिलेण्डर आकार की कुछ मोहरें प्राप्त हुई है। ये मुद्रांक सुमेरियन संस्क ति (जेमदेत नस्र) से अफगानिस्तान के माध्यम से यहां मगंवाई गई थी। यहां से प्राप्त कुछ शिकार के चित्र भी सुमेरियन तथा एलमाइट संस्क त से प्रभावित पाए गए है। जिनमें पंखों वाले शेर का चित्रण भी है, जिसे मिस्री लोगों ने मैसोपोटानिया से नकल किया है। मिस्र के प्रथम राजवंश काल के मकबरें भी मेसोपोटानिया मन्दिरो से मिलते-जुलते है।

इस काल में सुमेर ने अपने केन्द्र उतरी सीरिया में हबूब कबीर चाहया नाम स्थलों तक स्थापित कर लिए थे।

ऐतिहासिक युग :

मैसोपोटानिया में ऐतिहासिक युग से पूर्व अनेक प्रतिस्पर्धी नगर राज्य थे। सुमेरियन लेखों में हमें अति प्राचीन काल में जिसुद्र के शासन काल में जल-प्रलय होने का उल्लेख मिलता है। इन अभिलेखों में इस जल-प्रलय के पूर्व तथा बाद के इन दो युगों मे विभाजन मिलता है। जलप्रलय से पूर्व का युग कालपिनक लगता है। क्योंकि इनमें कई राजवशेां का काल लाखों साल तथा बहुत सी मिथ्या घटनाओं का इसमें जोड़ दिया गया है। पुरातात्विक साक्ष्यों से जल-प्रलय के प्रमाण तो स्पष्ट मिलते है। प्रो० ल्यूनार्ड वूली को उर नगर में 40 फीट नीचे 11 फीट मोटी मिट्टी की तह प्राप्त हुई जो संभवत फरात नदी में आई बाढ़ के कारण बनी थी। इसके अलावा सत्य और कल्पना का एक मिश्रण गिल्गामेश आख्यान में भी मिलता है। जो कि एरेक का एक क्रूर शासक था जिसे मार के लिए देवताओं ने श्याबानी नाम देत्य का स जन किया। जलप्रलय के बाद के काल में हमें ऐतिहासिकता प्राप्त होती है। और सुमेरियन शासकों की महत्वपूर्ण सूची मिलती है। जिसमें शासको के क्रमबद्ध नाम, उनके शासन काल इत्यादि मिलते है। इसमें हमें उसके चार प्रसिद्ध राजाओं का नाम भी मिलता है, जो बाद के सुमेरियन साहित्य में भी वर्णित है। ये निम्न है जैसेः इन्मेरकर, लुगलबन्द, दूमूजी तथ गिलगामेश। यदि हम 2371-2316 ई०पू० तिथि को सारॅगान का काल मानकर पिछे के काल की गणना करें तो वंशानुगत इतिहास का प्रारंभ 2900 ई०पू० से 2371 ई०पू.० मान सकते है जिनमें

2900 ई०पू० - 2750 ई०पू० - प्रांरभिक राजवंश काल प्रथम

2750 ई०पू० - 2600 ई०पू० - प्रारंभिक राजवंश काल द्वितीय

2600 ई०पू० - 2371 ई०पू० - प्रांरभिक राजवंश काल त तीय में बांट सकते हैं।

प्रारंभिक राजवंश काल :-

सुमेरियन राजवंशावली के अध्ययन के बाद पता चलता है कि प्रारंभिक राजवंश काल में मेसोपोटानिया में स्वतंत्र राज्यों की स्थापना हो चुकी थी। जिनमें सर्वोच्चता के लिए आपसी प्रतिद्धंदिता चलती रहती थी। लेकिन किसी एक नगर का समस्त क्षेत्र पर एकाधिकार ज्यादा समय तक नही रहा। यहां से प्राप्त राजवंशावली में केवल उन्हीं नगर-राज्यों का वर्णन है, जिन्होंने समस्त यूरोप पर अपना आधिपत्य जमाया और इसमें उरूक, किश, उर तथा लगाशा नगर राज्यों ने अलग-अलग समय पर यह गौरव प्राप्त किया। इसके अतिरिक्त इस काल में शक्तिशाली विदेशियों ने भी कम समय के लिए अपना अधिकार जमाया।

प्रांरभिक राजंवश काल द्वितीय में 2700 ई०पू० में कुछ समय के लिए ऐलामाइटों ने भी सुमेर को थोड़े समय के लिए जीत लिया। इस काल के अंत में लगाश राज्य काफी शक्तिशाली था और इस वशं के संस्थापक उर-निना ने पूरे सुमेर पर अपना प्रभुत्व जमा लिया था। उसने अनेक देवतओं के मंदिर बनवाए और अनेक नहरें खुदवाई। इसके उत्तराधिकारी इचन्नातुम ने उम्मा नगर को पराजित किया जिसका उल्लेख ग घ्र पाषाण से मिलता है। इसके अलावा उसने ऐरेक, उर, एलम और किश को भी विजित किया। इस वंश को अंतिम शासक उर-कगिना था। जिसके समय में लगाश के पद्‌धिकारी आलसी और अत्याचारी हो गए थे। उसने राज्य में फैली इस अव्यवस्था को समाप्त करने के लिए अनेक प्रतिबंध लगाए। इसने करों की दर में कटौती की। लेकिन इसके द्वारा किए गए सुधारों के कारण राज्य का उच्च वर्ग शासक के खिलाफ हो गया इस अव्यवस्था के चलते प्रांरभिक राजवंश काल त तीय के अंत में उम्मा का राजा लुगल जग्गेसी काफी शक्तिशाली हो गया तथा उसने लागाश के अतिरिक्त अन्य नगर राज्यों को भी विजयी किया। इसके अभिलेखों के अनुसार इसने सुमेर के बाहर के क्षेत्रों को भी जीता और उरेक को अपनी राजधानी बनाया। इसने किश के विद्रोह का दमन किया तथा अमुर्रु (सीरिया) पेलेस्तीन को पराजित किया तथा उरूक तथा सुमेर के राजा की पद्‌वी धारण की। लेकिन उसके काल (2400 ई०पू० - 2371 ई०पू०) के बाद उक्काद के सेमाइटों ने सुमेर पर अधिकार किया जिनका राजा सारगोन था इसने स्वयं को विश्व के चारों भागों तथा सुमेर और अक्काद का राजा घोषित किया। इसी ने प्राचीन मेसोपोटामिया में प्रथम वंशानुगत साम्राज्य की स्थापना की तथा इसके नाम के कारण ही इसके राजवंश के काल को सारगोमिद काल भी कहा जाता है। जो 150 वर्षो तक रहा। सारगोन की विजय से सुमेर इतिहास में एक नया अध्याय प्रारंभ होता है तथा सेमेटिक जाति के सुमेरीकरण की प्रक्रिया का यह सूचक है। सुमेरियन राजनैतिक शक्ति धीरे-धीरे समाप्त हो गई और सुमेरवासी सेमाइट संस्क ति में विलिन हो गए।

सारगोन प्रथम :-

2371 - 2316 ई०पू० के मध्य सारगोन ने मेसोपोटामिया पर राजय किया, इसे विश्व के महानतम शासकों में गिना जाता है। इसके काल में पहली बार मेसोपोटानिया में एक संयुक्त राज्य की स्थापना हुई। इस शासक के बारे में सुयेरियन आख्यानों में वर्णन है कि वह गरीब परिवार से था, इसके पिता का पता नहीं था तथा अक्की नामक माली ने उसे पाल कर बड़ा किया। बाद में इसने किश के शासक के पास नौकरी प्राप्त की फिर विद्रोह कर स्वयं शासक बन गया। लेकिन ऐतिहासिक शोधों से पता चलता है कि वह अक्काद नगर के एक छोटे अधिकारी दति एनलिल का पुत्र था। अपने पिता के समान वह भी कुछ समय के लिए किश में एक उच्च पदाधिकारी रहा।

सारगोन ने केवल लगाश को ही विजित नही किया बल्कि अन्य सभी मुमेरी तथा अक्कादी नगर राज्यों को भी पराजित किया इसके अलावा इसने उतर तथा पूण्र में स्थित गती (Guti) तथा जागरोस के पर्वतीय क्षेत्र के कबीलों को भी हराया, ये मोनोपोटामिया पर निरन्तर आक्रमण करते रहते थे। इसके अभिलेखों में पूर्वी एशिया माइनर की विजयों का भी उल्लेख है। Ninevch (निनेवेह) से प्राप्त एक अभिलेख के अनुसार उसने पश्चिमी समुद्र को पार कर दक्षिण-पूर्वी द्वीप समूह पर भी राज्य किया। एक अन्य अभिलेख उसके फारस की खाड़ी में स्थित दिलमुन द्वीप पर अधिकार की सूचना देते है। कुछ विद्वान उसे साइप्रस तथा एजियन द्वीप समूह पर आक्रमण का श्रेय देते है। अपने राज्य काल में सारगोन ने प्रशासन ने काफी सुधार किए तथा बहुत से भव्य मन्दिरों और महलों का निर्माण करवाया। इसने समस्त सुमेरियन कानूनों एवम् धर्म ग्रन्थों को संग्रहित कर समेटिक भाषा में अनुवादित करवाया। संचार प्रणाली की व्यवस्था की। सारगोन के बाद उसका पुत्र 2316-2291 ई. पू. तक राज्य करता रहा, लेकिन उसके काल की विस्त त जानकारी का आभाव हैं।

नरमसिन :

इसका शासन काल 2291-2255 ई०पू० का था तथा सारगोन की तरह यह भी एक महान शासक था। इसके काल के अभिलेखें तथा नबोलिडस की प्राप्त पुरातातविक खोजों से पता चलता है कि उसने सतुनी जो कि लुल्लुबी का शासक था, को पराजित कर विजय परान्त में नरामसिन में पाषाण स्मारक बनाया जो अक्कादी युग की एक उतम कलाक ति है। इसके अलावा उसने अन्य नगर राज्यों के साथ सूसा की एलामाइट वंश की शक्ति को भी खत्म किया तथा उतरी मौसोपोटानिया पर अधिकार किया तथा पूर्वी अरब के मांगन पर भी अधिकार कर लिया अपने अभिलेखों मे वह स्वयं को चारों दिशाओं का स्वामी बतलाता है।

नरमसिन के उतराधिकारी :-
(Successors of Naramsin)

राजवंशीय सूची मे यद्यपि नरमसिन के पश्चात् के 7 शासकों को नाम नहीं मिलता। लेकिन 2200 ई०पू० के आस पास गुतियों ने अक्काद के इन राजाओ को हरा दिया तथा इसके साथ ही यहां पर अराजकता के काल की भी शुरूआत हुई। सुमेरियन राजसूचि में भी उल्लेख है कि इस काल में कौन राजा है कौन राजा नहीं यह कोई नहीं जानता। इस काल में 91 वर्ष के काल में 21 राजाओं ने राज्य किया। इस काल के अन्तिम शासक को उरूक के राजा उतुलेगल ने 2120 ई०पू० में हरा दिया तथा इसे उर के गर्वनर उस्नम्मु ने हरा स्वयं को सुमेर तथ अक्काद का शासक घोषित कर दिया।

उर के इस त तीय राजवंश ने 2113-2000 ई०पू० तक राज्य किया। इस काल को सुमेरियन इतिहास में स्वर्ण काल की संज्ञा दी जाती है। नन्मु के काल में भव्य मन्दिरों को निर्माण हुआ जिनमें चन्द्र देव नन्न का मन्दिर तथा जिग्गुरातों का निर्माण हुआ। सबसे प्राचीन कानून संग्रहों का संकलन भी इसी काल में हुआ। लेकिन एलामाइटों तथा पूर्व के अमोराइटों ने इस राजंवश का अन्त कर दिया तथा मेसोपोटामिया एक बार फिर छोटे-छोटे राज्यों में बंट गया।

सुमेरियन राज्य-सरंचना :-

प्रारंभिक काल में सुमेर में छोटे-छोटे नगर राज्यों का उदय हो गया था जिनकी प्रभुसता शहर तथा इसके आस पास के कुछ गांवों तक ही सीमित थी। प्रत्येक नगर के मुख्य देवता का मंदिर मध्य में स्थित होता था। जहां पर पुजारी निवास करता था। वही समस्त प्रशासनिक, धार्मिक तथा आर्थिक कार्य नौकरशाही की मदद से सम्पन्न करता था। हांलाकि प्रत्येक नगर में नागरिकों की एक संस्था भी होती थी, जिसका वर्णन बाद के अभिलेखों में मिलता है। गिल्गामेश के आख्यानों से पता चलता है कि उस समय राज्य में 2 संस्थाएं महत्वपूर्ण थी। आपातकाल में इनकी बैठकें होती थी। जैसे गिल्गामेश के काल में अग्गा के शासक द्वारा गिल्गामेश को आत्मसर्म्पण के संदेश के समय हुई।

नगर राज्यों में वास्तविक प्रभुत्व पुजारियों का ही था और राज्य में एक प्रकार का धार्मिक प्रजातंत्र स्थापित था। उस काल में मन्दिर ही समस्त शक्तियों का केन्द्र थे। बाद में सम्पन्नता बढ़ने के कारण तथा बाहरी आक्रमणों के कारण सेनापति का महत्व भी धीरे-धीरे बढ़ने लगा था। कालान्तर में राजतंत्र की स्थापना हो गई। इसके साथ-साथ मन्दिर के प्रतिंद्वदी के रूप में राजमहल भी आ गया। राज्य के समस्त कार्य जो पहले मंदिरों में होते थे। वह अब महल में भी होने लगे। जैसेः प्रशासन, कर इक्कठा करना, नई नहरों का निर्माण तथा सिचांई व्यवस्था आदि। इस प्रकार मन्दिर तथा महल सुमेरियन राज्य के दो मुख्य स्तम्भ बन गए। लेकिन बाद में मन्दिरों के कार्य धीरे-धीरे घटते गए और वे अब केवल धार्मिक तथा समाज की भलाई के कामों तक ही सीमित रह गए तथा दूसरी और राजाओं की शक्ति में बढ़ोतरी हुई तथा वंशानुगत राजतंत्र की स्थापना हो गई। इस प्रकार लुगल पटेसी क्रमशः राजा तथा देवता के प्रतिनिधि के रूप में प्रयुक्त होते थे। इनमें कोई भेद नहीं रह गया था और प्रत्येक शासक यह उपाधि धारण करने लगा था। प्रारंभ में लुगुल का पद अस्थाई होता था परन्तु कालांतर में नगर राज्यों के आपसी कलह बढ़ने के कारण व्यवहार में यह स्थाई हो गया। कहीं-कहीं तो प्रधान मन्दिरों के प्रधान पुजारी लुगलों के समान राजनैतिक नेता बन गए थे जिन्हें 'एनसी' कहा जाता था।

साम्राज्यवाद का उदय :-

तीसरी सहस्त्राब्दी में सुमेर में राजनैतिक एकता की जरूरत प्रतीत होने लगी। सारगोन तथा उसके उतराधिकारियों ने देश में राजनैतिक एकता स्थापित की थी। इसलिए वहां अपनी सता बनाए रखने के लिए अक्कादी नरेशों ने व्यक्तिगत अनुयायिों का दल या सेना बनाई तथा मन्दिर की भूमि को उनमें बांट दिया। राजा के प्रति आस्था का सिंद्धात भी उसी काल में प्रतिपादित हो लोकप्रिय हो गया। राज्य का प्रशासन सुव्यवस्थित रूप से चलाने के लिए विभिन्न नगरों में अपने गर्वनर नियुक्त किए गए तथा नरमसिन के काल में तो उन्हें 'राजा का दास' की उपाधि धारण करनी होती थी। इसके अतिरिक्त न्यायालयों में राजा के नाम पर शपथ की पद्धती भी चली। यह राजा को दैविक सम्मान का दर्जा प्रदान करने के लिए शुरू हुई। पूरे राज्य में समान प चांग लागू कर समस्त राज्य में एकता लाने का कार्य भी इन राजाओं ने किया। राजंवश के इस काल में राजा का पदा वंशानुगात था। राजाओं ने अपनी मूर्तियां मन्दिरों में भी रखवाई और राजा को पवित्र किए जाने के अनुष्ठान किए जाने लगे। नरमसिन के नाम के साथ देवता शब्द का प्रयोग किया जाने लगा। बाद में यह प्रथा सुमेर में भी काफी लोकप्रिय हुई और राजा के प्रति भक्ति के सिंद्धान्त का प्रतिपादन होने लगा।

न्याय व्यवस्था :-

प्रारंभ में सुमेरियन राज्य में न्याय का कार्य रीति-रिवाजों एवम् वंश परम्पराओं पर आधारित था। परन्तु सुमेर में अलग-अलग जातियों के आगमन से समाज में अन्तः विरोध उत्पन्न होने लगे। तब शासकों में स्थिति को सुधारने के लिए नए कानून बनाए तथा त तीय शताब्दी में सभी कानूनों को संग्रहित कर एक व्यवस्थित कानून संहिता का निर्माण किया जो बैबीलोनिया के महान सम्राट हम्मुराबी की संहिता से भी कई सौ वर्ष पहले की है। लेकिन हाल के शोध कार्यो से कई नगर राज्यों की विधि संहिताओं को भी प्रकाश में लाया गया हैं।

सुमेर की न्यायव्यवस्था में प्रारंभ से ही मन्दिर के पुजारियो की भूमिका महत्वपूर्ण थी। साम्राज्य काल में भी पुजारी ही न्यायधीश होते थे। स्थानीय स्तर पर छोटे-छोटे न्यायालय थे। कुछ नगर राज्यों में नागरिक सभाओं को भी न्यायिक अधिकार प्राप्त थे। वादी और प्रतिवादी को स्वंय अपना पक्ष रखना पड़ता था तथा न्यायधीश पुराने फैसलों के आधार पर फैसले सुनाते थे। सुमेर की दण्ड़ व्यवस्था काफी उदर थी। फैसलों में वादी के अनुसार अपराधी को दण्ड़ दिया जाता था। सरकारी कर्मचारी वादी की सहायता करते थे। किसी भी मुकद्दमें पर तभी विचार किया जाता था जब वादी स्वयं या उसके परिवार का कोई सदस्य न्यायलय के फैसले को लागू करवाने का वचन देता था। इसके अतिरिक्त सुमेरियन कानूनों के अनुसार आकिस्मक एवम् संकल्पित मानव हत्या में कोई अंतर नहीं था। अनजाने में हत्या हो जाने पर भी म त व्यक्ति के परिवार को अपराधी द्वारा धन दिया जाना होता था। आम मुकद्दमों में जैसे तलाक के मामलें में व्याभिचारिणी पत्नी को पति को तलाक न देकर दूसरी पत्नी की दासी के रूप मे पहली पत्नी को रखना होता था। कानून के समक्ष सभी नागरिक सम्मान नहीं थे। अपितु उन्हें उनके वर्ग के अनुसार ही दण्ड़ दिया जाता था जैसे उच्च वर्ग के व्यक्ति की हत्या दूसरे वर्ग की हत्या से अधिक संगीन मानी जाती थी। भागे हुए दास को शरण देने वाले व्यक्ति को उसका जुर्माना भरना पड़ता था।

सामाजिक व्यवस्था :-
(Social System)

समुरियन समाज में मुख्य तीन वर्ग थे। उच्च वर्ग में शासक, राजपरिवार के सदस्य, उच्चाधिकारी तथा पुरोहित शामिल थे। इनका समाज में प्रतिष्ठित स्थान था तथा ये बड़े-बड़े महलों और घरों में निवास करते थे। दूसरा वर्ग मध्यम श्रेणी का था जिसमें क षक, व्यापारी, लिपिक, शिल्पी तथा कारीगर इत्यादि शामिल थे। निम्नवर्ग में दास तथा सर्फ शामिल थे।

सुमेरियन समाज में स्त्रियों की स्थिती काफी उच्च थी तथा उन्हें बहुत से ऐसे अधिकार प्राप्त थे जो किसी अन्य सामाजिक संस्क ति में देखने को नहीं मिलते। लेकिन कानूनी रूप में उन्हें अपने पति को सम्पति ही माना जाता था और पत्नी को बेचने तक का प्रावधान था। लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं होता था। विवाह उपरान्त पति का वधु के दहेज पर अधिकार नहीं था, उसे पत्नी अपनी इच्छानुसार खर्च करती थी। यहीं नही पति तथा पुत्र के ना होने पर परिवार की सम्पति का अधिकार भी उसी का था। वह सार्वजनिक तथा धार्मिक कार्यो में भाग ले सकती थी। यहां तक कि अपने पति से स्वतंत्र होकर व्यापार में भी हिस्सा लेती थी। उसे व्याभिचारिणी होने पर भी तलाक नहीं दिया जा सकता था, लेकिन इस स्थिती में वह दूसरी पत्नी की दासी के रूप में रहती थी। कुछ कन्याओं को मंदिर में देवदासियों के तौर पर भी दान में दिया जाता था इस प्रथा में देवार्पित करने पर उत्सव मनाया जाता था और उसे धन इत्यादि भी भेंट किया जाता था। स्त्रियों से अपेक्षा की जाती थी कि वे ज्यादा से ज्यादा सन्तान पैदा करे और ऐसा ना होने पर उसे तलाक दिया जा सकता था।

निम्न वर्ग की स्त्रियों का जीवन उच्च वर्ग की स्त्रियों से भिन्न था। उन्हे वे भौतिक सुख प्राप्त नहीं थे जो उच्च वर्ग की स्त्रियों को प्राप्त थे। उच्च वर्ग की स्त्रियों का जीवन काफी विलासी था वे श्रंगार प्रिय थी। पुरातातविक उत्खनन के दौरान शाही समाधि में एक रानी की कब्र से एक लघु प्रसाधन पेटका (Vanity Box) प्राप्त हुई हैं। जिसमें सोने और कीमती रत्नों की विभिन्न वस्तुएं प्राप्त हुई हैं। इसके अतिरिक्त उच्च वर्ग की स्त्रियां अंगूठियां, कर्णहार, कर्ण के गहने, पावं के गहने, कड़े इत्यादि पहनती थी। केश विन्यास के लिए कंघे और फूलों का प्रयोग किया जाता था। स्त्रियों चोली और ब्लाउज पहनती थी। पुरूष सामान्यतः लुंगी प्रकार का वस्त्र पहनते थी। पुरूष घर के बाहर जाने पर लंबा चोला प्रकार का वस्त्र धारण करने की प्रथा थी। उर ही शाही समाधि में राजा के साथ रानियों और नौकरों के दफनाने के प्रमाण से सती प्रथा जैसी किसी प्रथा के प्रचलन की जानकारी मिलती है।

आर्थिक व्यवस्था :-
(Economic System)

मेसोपोटानिया के अधिकांश क्षेत्रों में रेत के टीले है तथा बीच में दजला और फरात नदियों के आस-पास की जमीन समतल तथा उपजाऊ है। पहलें यह दलदली भूमि थी लेकिन उत्बेद संस्क ति के काल में इस दलदली भूमि को क षि योग्य बनाया गया तथा अतिरिक्त पानी नहरों द्वारा दूर के क्षेत्रों को सिंचित करने के लिए प्रयोग किया जाने लगा। नगर राज्यों के कालों तथा बाद में साम्राज्य काल में भी पुजारियों तथा शासकों ने नहरों का निर्माण करवाया तथा सिंचाई व्यवस्था की सुविधा उपलब्ध करवाई। इस कारण अतिरिक्त उत्पादन पर जोर दिया गया इससे फिर बाहर दूसरे प्रदेशों से विभिन्न वस्तुओं का आयात किया जाने लगा। जैसे यहां प्राक तिक संसाधनों की कमी थी और इसलिए यहाँ लकड़ी प्रचूर मात्रा में उपलब्ध नही थी और ना ही पत्थर। जबकि ये दोनों चीजें महलों और मन्दिरों के निर्माण के लिए आवश्यक थे। इसलिए इन दोनों वस्तुओं का बाहर से आयात किया जाता था।

सिंचाई व्यवस्था एक ऐसी व्यवस्था थी जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपना योगदान देता था। सर्वप्रथम मन्दिरों के पुजारियों ने नहरों के निर्माण की शुरूआत की तथा यहां के निवासी बिना वेतन प्राप्ती के यह व्यवस्था करते थे। इनके रख-रखाव, पानी बांटने के अधिकार के बदले में मन्दिरों को अन्न इत्यादि दिया जाता था। जिससे मन्दिर तथा उसके अन्य अनेक कर्मचारियोंके भरण-पोषण से बचे हुए का प्रयोग पुनः नहरों को बनाने तथा रख-रखाव पर खर्च किया जाता था। साम्राज्य काल में भी सम्राटों ने सिचांई व्यवस्था पर विशेष ध्यान दिया। नदी में बाढ़ का पानी इक्कठा कर उसे ढेंकुली या रहट की सहायता से नहरों द्वारा खेतों में पानी पंहुचाया जाता था। इसके अतिरिक्त नहरें यातायात का साधन भी थी इसी मार्ग द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचा जाता था।

क षि :
(Agriculture)

सुमेरियन राज्य की आय का मुख्य स्त्रोत क षि था तथा सिंचाई के कारण भूमि से अधिक उत्पादन किया जा सकता था। यूनानी विद्वान हेरोडोटस भी मेसोपोटानिया की धरती की उर्वरता से काफी प्रभावित हुआ था। यहां की भूमि काफी उर्वर और उपजाऊ थी। सुमेर में मुख्यतः गेंहू, जौ की खेती की जाती थी। नदियों, नहरों तथा तटीय क्षेत्रों के किनारे, खजूर उगाए जाते थे। सुमेर में बहुत से फलों के बाग भी भी थे। क षि के लिए पानी का उचित प्रबन्ध कराना राज्य का महत्वपूर्ण कार्य था इसके अतिरिक्त विश्व का प्रथम क षि पंचाग भी यहां विकसित किया गया जिसमे क षि करने के समय, विधि और औजार आदि का पूरा विवरण दिया गया है। खेतों में हल चलाने के लिए गधों एवम् आनेगर का प्रयोग किया जाता था।

पशुपालन :-
(Animal Husbandry)

क षि के अतिरिक्त पशुपालन भी एक प्रमुख कार्य था। ये लोग गाय, बैल, भेड, बकरी, सूअर, गधे, ओनेगर इत्यादि पालते थे। यहां पर गाय की देवी के रूप में कल्पना की गई है। उर के समीप निर्मित गौ देवी का मन्दिर बनाया हुआ प्राप्त हुआ है। यहां के भितिचित्रों से उस काल के दूध उद्योग की भी जानकारी मिलती है। पशुओं का प्रयोग पहिए वाली गाड़ियों को खींचने के लिए भी किया जाता था जैसे बैल, गधा, खच्चर तथा आगेनर आदि। नहरों, नदियों से मछली पालने तथा पकडने का कार्य भी किया जाता था। इसके अलावा हल के साथ ही नाली द्वारा बीज डालने की व्यवस्था भी की जाती थी।

उद्योग-धन्धे :-
(Business)

इनके अतिरिक्त अन्य उद्योग धन्धों का विकास भी सुमेर में हो चुका था। मन्दिरों में संग्रहित क षि उत्पादों को चीजों में बदलने के लिए, कारीगर उपस्थित थे, जो रेशेदार पदार्थो से धागा तथा कपड़ा बनाते थे। खालों से जूते तथा कपड़े एवम् चीजों का निर्माण किया जाता था। इसके अतिरिक्त बाहर से मंगाई लकड़ी का प्रयोग बढ़ई सुन्दर फर्नीचर बनाने में करते थे। लकड़ी की नांवे और गाड़ियों भी बनाई जाती थी।

इस काल में धातु ज्ञान काफी विकसित हो चुका था। विदेशों से आयात खनिजों से तांबा टिन, सोना, चांदी और सीसे की चीजें बनाई जाती थी। तांबे और कांसे के औजार तथा बर्तन, सोने-चांदी के आभूषण बनाए जाते थे। वस्त्र उद्योग तो हल्फ काल से ही काफी उन्नत हो चुका था। इस काल का वस्त्र उद्योग भी काफी प्रफुल्लित था। सूती वस्त्र के अतिरिक्त भेडों की ऊन से ऊनी वस्त्रों को भी यहां बनाया जाता था। इसके अतिरिक्त बर्तन बनाना, ईट बनाना तथा मूर्तियां बनाने के कार्य में इस काल में शिल्पी तथा कारीगर सिद्वहस्त थे। रथों तथा गाड़ियों में पहियों का प्रयोग आदि सर्वप्रथम इसी क्षेत्र में हुआ था। रथों के लकड़ी के पहियों पर चमड़े के टायर चढ़ाना इन्हें आता था।

व्यापार :-
(Trade)

इस सभ्यता के काल में क षि के अतिरिक्त व्यापार का काम भी महत्वपूर्ण था। क्योंकि यहां से संसाधनों की कमी थी तथा लकड़ी, धातुएं, पत्थर इत्यादि बाहर से मंगवाए जाते थे तथा इसके बदले क षि उत्पाद जैसेः अनाज, खजूर, वस्त्र, चमडा, ऊनी वस्त्र, फल इत्यादि बाहर भेजे जाते थे। व्यापार में प्रारंभ में मन्दिरों का ही बोलबाला था तथा मन्दिर के सदस्य ही व्यापार करते थे तथा स्थानीय वस्तुओं को बाहर भेज सोना, चांदी रत्न मणियां, तांबा, लकडी तथा पत्थर इत्यादि मंगवाए जाते थे। बाद में कुछ स्वतंत्र व्यापारियों ने भी यह कार्य शुरू किया। इनका व्यापार भूमध्यसागर के तट, एलामाइट, मिस्र तथा सिन्धु तट तक विस्त त था। आयात की जाने वाली वस्तुओं में अधिकतर विलासिता की चीजें ही होती थी। फारस की खाड़ी में स्थित दिलमुन, ओमान, से ताम्र, तोरूस से चांदी, सीरिया, एशिया माइनर से टिन इत्यादि मंगवाया जाता था। सामान एक स्थन से दूसरे स्थान ले जाने के लिए बैल, गधों, ऊंटों से खींची जाने वाली पहिएदार गाडियां तथा नावों का प्रयोग जलयातायात मे किया जाता था। सारगोन के काल मे व्यापार में बहुत उन्नति हुई। सिन्धु तथा मिस्र तक के क्षेत्रों से प्राप्त अभिलेखों में उल्लिखित मलुहा का समीकरण मोहनजोदड़ों से किया गया है। जहां से इस समय तांबा आयात किया जाता था।

व्यापार के लिए अनुबंद इत्यादि मिट्टी की (तखतियों) पर लिखे जाते थे। बाहर भेजी जाने वाली वस्तुओं तथा बाहर से आने वाली वस्तुओं का उल्लेख इन तखतियों पर किया जाता है। व्यापारिक अनुबन्धों में गवाहो के हस्ताक्षर भी होते थे। यह हुडिंयों तथा बिल, रसीदों को भी लेन-देन में प्रयोग करते थे। इब्ला नामक स्थल से सुमेरियन लिपि में लिखी हजारों Tablets प्राप्त हुई है जिनसे इस काल के वस्त्र उद्योग तथा अन्तराष्ट्रीय व्यापार का पता चलता हैं इन 15000 Tablets में सें 14000 वस्त्र उद्योग, व्यापार विनियम से संबधित है। 500 क षि तथा क षि उत्पादन की जानकारी देती है। यह शाही अभिलेखागार अपने प्रकार का एक अनूठा संग्रह है। सुमेर के राजाओं जैसे सारगोन, नरमसिक ने व्यक्गित रूप से व्यापार तथा व्यापारियों की सुविध ाओं का ध्यान रखा व्यापारियों की सुरक्षा के लिए उनके आग्रह पर सेना भी भेजी जाती थी। वस्तुओं को विनिमय के लिए धातु का प्रयोग माध्यम के रूप में प्रयोग किया जाने लगा। इसके लिए चांदी के टुकड़ों का प्रयोग एक निश्चित भार, जो कि एक शेकल का 1/16 भाग था, मे होता था। कर के रूप में चांदी तथा अन्य खाधान्न तेल, खजूर, इत्यादि दिए जाते थे। इस काल में व्यापार को लोकप्रिय बनाने के लिए आजकल की तरह कमीशन देने तथा ऐजेन्ट भेजने की प्रणाली भी शुरू हो चुकी थी।

धर्म :-
(Religion)

सुमेरियन सभ्यता में धर्म का काफी महत्व था। प्रत्येक नगर के अपने-2 देवता होते थे तथा उनकी बड़ी-बड़ी मूर्तियां मदिरों में लगाई जाती थी। मंदिर नगर के मध्य में स्थित होता थाा। किसी भी स्थान की पवित्रता की भावना यहां पहले से ही आ चुकी थी। इसलिए एक ही स्थल पर बार-बार मंदिर बनाए जाते थे। जिस कारण मन्दिर आसपास के क्षेत्र से 15-16 मीटर तक ऊंचे होते थे।

सुमेरवासियों के अनुसार आदिकाल में केवल जल ही जल था जिसकी कल्पना उन्होंने नम्मूदेवी के रूप में की है। इससे एक देवी पर्वत का आविर्भाव हुआ जिसकी 'की' (प थ्वी) नाम की देवी थी तथा शिखर 'अन' (आकाश) नाम का देवता था। कालान्तर 'की' के गर्भ से एनलिल (वायु देवता) का जन्म हुआ। एनलिल से सूर्य, चन्द्रमा तथा अन्य ग्रहों का जन्म हुआ।

सुमेर का प्रमुख देवता आकाश देव 'अन' था। जिसे 'अनु' भी कहा जाता था। इसकी पूजा समस्त सुमेर में तो की जाती थी। परन्तु प्रमुख रूप से उरूक में होती थी। जहां इसके अनेक भव्य मंदिर बनाए गए। इसे सर्वप्रथम देव राज माना जाता था। एनलिल इनका वायु देव था, इसे देव पिता आकाश का स्वामी इत्यादि भी कहा जाता था। ऐसा माना जाता था कि यहीं समस्त स्रष्टि को अपने नियमों से व्यवस्थित करता है। इसी के कारण सूर्य उदय होता है तथा वनस्पति एवम् अन्न उत्पन्न होता है। यही देव संसद की दण्डाज्ञाओ को कार्यन्वित करने वाला है। नगरों को नष्ट करने वाले इस देव की पूजा निप्पुर में अधिक की जाती थी।

जलदेव के रूप में एनकी की पूजा की जाती थी। इसे ज्ञान और बुद्धि का प्रतीक भी माना जाता था। यही नदियों, नहरों और सिंचाई के अन्य साधनों को नियंत्रित भी करता था। प थ्वी देवी (निन्माह) का स्थान भी महत्वपूर्ण था इसे पहले 'की' कहते थे। प थ्वी को माता के रूप में पूजा जाता था तथा यही प्रति वर्ष भूमि को हरियाली से ढकती थी। अन्य देवगणों में नीति एवम् आचार का देव 'इया' सूर्य देव 'अतू' प्रेम की देवी 'इन्ना' जिसका चूने के पत्थरों का भव्य 86 x 33 मीटर का मंदिर उरूक नगर में स्थित था। चन्द्र देव 'सिन' की पूजा भी सुमेर में की जाती थी।

सुमेरवासियों ने अपने देव की कल्पना मनुष्यों के रूप में की थी तथा इनका निवास एक पर्वत पर था जहां से सूर्य उदय होता था। वे मंत्रों द्वारा देवताओं से तादात्म्य स्थापित करने में विश्वास रखते थे, ताकि उनमें देवताओं के गुण आ जाए। सुमेरियन धर्म में व्यक्ति पर किसी प्रकार के नैतिक बंधन नही थे। चरित्रहीन व्यक्ति भी धार्मिक हो सकता था। नियम तोडने पर देवता मनुष्यों से नाराज नहीं होते थे बल्कि बलि ना देने पर वे मनुष्यों से नाराज होते थे। इसलिए देवताओं की मूर्तियों पर अनाज, खजूर, अंजीर, तेल, मधु, दूध और पशु इत्यादि चढ़ाए जाते थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सुमेरवासी बहुदेववादी थे तथा उन्होंने देवताओं की शुभ और अशुभ शक्तियों का विभाजन नहीं किया था। देवता सत्य तथा न्याय के संरक्षक थे। कुछ परलोक के भी देवता थे जैसे 'कुर' के अथवा पाताल प थ्वी के नीचे भाग के जहां म त आत्मांए निवास करती थी। यहां पहुंचने के लिए म त्यु की नदी पार करनी पड़ती थी इरेसकीगल जो कि इन्ना की बड़ी बहन है, तथा यहां की देवी। इसका पति 'नेरगल' प्लेग का देवता था। पाताल से कोई वापिस नही आ सकता था परन्तु गिलगामेश के आख्यान में तामुज का ईश्वर पुर्नजीवित कर लाई थी।

मिस्र की भांति सुमेर में भी म तक संस्कार का पर्याप्त महत्व था। म तकों को प्रायः मकान के आंगन या कमरे के फर्श के नीचे गाड़ते थे। साधाण व्यक्तियों को चतुर्भुजाकार कब्र में लिटा कर उस पर मेहराब बना दी जाती थी और उसके साथ म दभांड, दैनिक उपभोग की वस्तुएं, अस्त्र-शस्त्र इत्यादि रखे जाते थे। संभवतः ये वस्तुएं अगले जीवन में प्रयोग के लिए रखी जाती थी। उर की राजसमाधी के उत्खनन से म त राजा के साथ रानियां, नौकर, अंगरक्षक, सैनिक, दास और बैलों को दफनाने के भी प्रमाण मिले है। ताकि परलोक में भी वे अपने स्वामी की सेवा कर सके।

नैतिक मूल्य :-
(Moral Values)

सुमेर के लोगों ने सामाजिक जीवन में श्रेष्ठ जीवन पर बल दिया हैं। सामाजिक जीवन में सदाचार की भावना समाज में काफी थी। बहुत कम आख्यानों में देवताओं की अवज्ञा का उल्लेख है। एकाध जगह को छोड़कर साहित्य में कहीं भी अश्लील वर्णन नहीं मिलता। दास प्रथा यद्यपि समाज में भी परन्तु उनसे ठीक व्यवहार किया जाता था। युद्धों में न शंस प्रव ति नहीं अपनाई जाती थी। जुआ खेलने के प्रमाण नही के बराबर मिलते है। समाज में शिक्षित वर्ग आदरणीय था। धार्मिक आख्यान सुनना पुण्य का काम था। इस प्रकार समाज में उच्चनैतिक मूल्यों का प्रतिपादन था।

अध्याय-2
मिश्र की सभ्यता
(Egyptian Civilization)

विश्व के विभिन्न भागों में नवपाषाण काल की समाप्ति पर विभिन्न क षक बस्तियां धीरे-धीरे नगरों में परिवर्तित हो गई। परिवर्तन की इस प्रक्रिया को कुछ विद्धानों ने शहरी क्रांति का नाम दिया। प्रारंभिक शहरों का विकास नदी घाटियों के किनारे हुआ, जिनमें दजला और फरात की नदी घाटियाँ प्रमुख है इसके अतिरिक्त नील, सिन्धु, तथा चीन की पीली नदि घाटियाँ प्रमुख है। यहाँ सभ्यता के विकास के लिए उपयुक्त अनुकूल परिस्थितियां थी जैसे उपजाऊ मिट्टी, जिसमें क षक अतरिक्त उत्पादन कर सकते थे। इसके अतिरिक्त सिचांई व्यवस्था पर्याप्त थी, पानी में शिकार के लिए मछलियां मिल जाती थी और अन्य पशु भी पानी के लिए यहां आते थे जो उस काल के मानव के भोजन साम्रगी के लिए प्रयुक्त थे। नदियों का प्रयोग मार्गो के रूप में भी किया गया। कालान्तर में जिसने व्यापार को बढ़ावा दिया। जनसंख्या व द्धि के साथ-साथ नए क्षेत्रों को क षि योगय बनाया गया और सिचांई व्यवस्था की जाने लगी। इसके लिए बांध, नहरे, नालियां इत्यादि की व्यवस्था करने की जरूरत महसूस हुई। इसके लिए किसी संगठन की जरूरत थी, इसी से आगे चलकर राज्य सरकार का उद्‌भव हुआ।

यद्यपि प्रांरभिक नदी घाटी सभ्यताएं विभिन्न क्षेत्रों में स्वतंत्र रूप से विकसित हुई। लेकिन इनमें एक-दूसरे के साथ सम्पर्क विकसित हुए तथ स्थानान्तरण, युद्ध और व्यापार के जरिए विचारों का आदान प्रदान हुआ। इसके साथ ही एक सभ्यता की वस्तुएं दूसरी सभ्यता तक सुलभ हो सकी। इस व्यवस्था में धुम्मकड़ लोगों की भूमिका काफी महत्वपूर्ण रही थी।

प्राचीन मिस्र की सभ्यता यूनानी इतिहासकार हेरोडोप्स के अनुसार नील नदी का वरदान है। यह सभ्यता नील नदी के स्वभाव, यहाँ फली-फूली। नील अफ्रीका की बड़ी झीलों अल्बर्ट एवम् विक्टोरिया न्यान्जा से निकलकर 6100 मील बहकर भूमध्यसागर में गिरती है। इस नदी की आरवरी करीब 900 किलोमीटर आस्वन के प्रथम महाप्रताप से समुद्र तक का प्रदेश मिस्र है, इसी के दोनों तरफ का क्षेत्र उपजाऊ है बाकि सब मरूस्थल है। आस्वन से डेल्टा के शुरू के क्षेत्र में नदी पथरीले पठारी क्षेत्र से गुजरती है और यह 800 किलोंमीटर का उपजाऊ क्षेत्र कही पर भी 20 किलोमीटर से चौड़ा नही है, इस क्षेत्र को ऊपरी मिस्र कहा जाता है। मैमफिस के समीप नदी का डेल्टा 100 कि.मी. तक चौडा हो जाता है। मैमफिस तथा डेल्टा का क्षेत्र निचला मिस्र कहलाता है, यह क्षेत्र समतल है जबकि उपरी मिस्र लंबा और संकरा क्षेत्र है तथा निचला मिस्र छोटा और चौड़ा है। ये दोनों क्षेत्र एक दूसरे के समकालीन है। उपरी मिस्र 22 नोम तथा निचला मिस्र 20 नोमों में विभक्त है।

मई के महीने में नदी में सबसे कम पानी होता है और खेत सूख जाते है। जुलाई के आसपास जब नदी में बाढ़ आती तो सबसे पहले वनस्पति भरा हरा पानी एक महीने बाद लाल रंग की मिट्टी वाला पानी जो कि खनिज और पोटाश से भरा आता है यहाँ की मिट्टी को उपजाऊ बनाता है। अक्टूबर के बाद पानी का स्तर कम होने लगता है। अैबसीनिया से आने वाली काली मिट्टी के कारण मिस्र को काली जमीन भी कहा जाता है। वे इस नदी का हाथी का नाम देते है उनका सब कुछ नदी के स्वभाव पर निर्भर था। नदी में पानी की कमी से अकाल की स्थिति पैदा हो जाती थी तथा अधिक बाढ़ से उनके बांध और नहरें नष्ट हो जाती थी। इसलिए उन्होंने नदी के स्वभाव की गहराई से जांच की तथा प्रति वर्ष नदी के पानी का स्तर नाप कर लगभग 3100 ई.पू. से रिकार्ड रखना शुरू किया। प्रत्येक निवासी ऐसी व्यवस्था करता था कि बांध तथा नालियां सुव्यस्थित रखी जाए। इसके लिए केन्द्रीय सरकार या प्रांतीय प्रशासन द्वारा भी प्रबन्ध किया जाता था। जैसा कि प्रथम इंटरमिडेटरी काल में हुआ। इसके अतिरिक्त नील नदी यातायात का मुख्य मार्ग भी थी। इस काल में फराओं अपनी राजधानी ऐसे स्थान पर बनाते थे जहां से उपरी और निचले मिस्र पर नजर रखी जा सकती थी। इसलिए उन्होंने मैमंफिस का चुनाव किया। लेकिन नए राजवंश काल

में नूबिया द्वारा उपनिवेश कायम करने के कारण थे। इस को राजधानी बनाया गया। दोनों क्षेत्रों के सुव्यस्थित प्रबन्ध के लिए अलग-अलग वजीर भी नियुक्त किए जाते थे।

इतिहास के साधन :-
(Source of History)

मिस्र की सभ्यता को जानने के अनगिनत प्रमाण पूरी नील घाटी में ऐसे बिखरे पड़े है मानों यह एक संग्रहालय हो। इस सभ्यता की जानकारी के महत्वपूर्ण अवशेष यहां से प्राप्त इमारतें, पिरामिड़, स्फिक्स, समाधियां, मेपिर तथा अनय अवशेष सुरिक्षत और बड़ी मात्रा में प्राप्त हुए है। लेकिन इनके लेखों में मौलिकता की कमी है, इसी कारण इनका कोई प्रसिद्ध इतिहासकार नही हुआ तथा यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस ही मिस्र का प्रथम इतिहासकार था। इसके बाद हेकाप्यूस, स्ट्रेबों, चूयूरिमोन जोसेफस, लुचार्च तथा होरपोले इत्यादि ने मिस्रवासियों के बारे में लिखा। इसके अतिरिक्त पलेरमों अभिलेख, कार्नाक मन्दिर के अभिलेख, अबिडोज तथा सक्करा के लेख, टसूरिन, पेपिरस संग्रहालयो से हमें शासकों के नाम एवम् वंशावली के बारे में जानकारी मिलती हैं, इसकी सबसे महत्वपूर्ण राज वंशावली टॉलमी II (285-47 B.C.) के एक पुजारी मनेथो ने बनाई थी जो बहुत सी त्रुटियों के बावजूद आज भी मिस्र का इतिहास जानने का एक अमुल्य साधन है। इसी के आधार पर इसी आधार पर हम प्रथम राजवंश की स्थापना से प्रांरभ होने वाले युग को वंशीय युग तथा इससे पूर्व को प्राग्यवंशीय युग कहते है। मनेथों की वंशावली से हमें मिस्र के 30 वंशों के राजाओं के इतिहास की जानकारी मिलती है, सूचीबद्ध राजाओं का वर्णन करते हुए कहीं-कहीं उसने वंशावली बताने में गलती की है। उसने पहले काल के राजाओं को बाद के काल में तथा बाद के काल के राजा को पहले काल में डाल दिया। तिथियां भी ठीक नही है। इनके बावजूद मनेथो की रचना इस काल का महत्वपूर्ण स्त्रोत है।

प्रारंभिक इतिहास :-
(Earlier History)

प्रागसतिहसिक काल में मिस्र के क्षेत्र से सर्वप्रथम पुरापाषाण काल के अवशेष प्राप्त होते हें जो अफ्रीका और यूरोप की एबेविलियन तथा एशूलियन संस्क ति के समान था। इसके बाद यहां मध्यपुरापाषाण काल के लवलवा तकनीक के फलक पर बने उपकरण प्राप्त होते है। इस संस्क ति को अेटारियन का नाम दिया गया। उतरपुरापाषाण काल की ब्लेड़ संस्क ति का यहां सेबिलिन नाम दिया गया। इस काल के पश्चात् जलवायु में परिवर्तन के कारण संस्क ति में भी परिवर्तन आया, मध्यपाषाण कालीन संस्क ति के बाद यहाँ 6000 ई.पू. नवपाषाण काल की शुरूआत के साथ ही नील घाटी में स्थायी बस्तियों की शुरूआत हुई। जिन्होंने क षि और पशुपालन की शुरूआत की। अनुमानताः 4500 ई.पू. के आसपास यहां ताम्रपाषाणीय संस्क तियां अस्तित्व में आई।

मिस्र में नारमेर से प्रथम राजवंश की स्थापना मानी जाती है जबकि कुछ विद्वान इसे मात्र कल्पना मानते है। प्रथम दो राजवंशों के काल को प्रारंभिक राजवंश या काइनाइट काल भी कहा जाता था। इसका समय 3300 B.C.-2778 B.C. का है, इस काल के लिए मनेथो की वंशावली को सच नही माना जा सकता। उसके अनुसार प्रथम दो रजवशों से 18 शासक हुए, इसने सभी शासकों का विवरण नही दिया है। नारमेर और दूसरे वंश के शासकों ने अबिडोज के समीप थिस से राज्य का संचालन किया प्रथम दो राजवंशों के काल को थाइनाइर काल कहां जाता है। इन दो कालों में राज्य की प्रशासकनिक, सामाजिक और आर्थिक संगठनों की नींव पड़ी बल्कि इसके साथ लेखन कला की भी शुरूआत हुई। वास्तुकला के क्षेत्र में त तीय राजवंश के पिरामिडों का आधार भी इसी काल में शुरू हुआ और राज्य के केन्द्रीय प्रभुक्त की स्थापना भी इसी काल में हुई।

नारमेर ने उतरी और दक्षिणी राज्यों को मिलाकर मिस्र की नींव डाली। प्रथम राजवंश का दूसरा राजा अहा था। इसका मकबरा काफी भव्य इमारत था इसे संभवतः सक्करा में दफनाया गया था। इसके 6 उतराधिकारियों को भी उनके निवास स्थान अबिड़ोज के शाही मकबरों के दफनाया गया था। इनके साथ अनेक साम्रगी जैसे तांबे एवम् पत्थर के बर्तन, सोने के आभूषण भी दफनाए गए थे। इन साम्रगी से इनके वैभव के अलावा उनके दूर-दराज क्षेत्रों से व्यापारिक संबध और कुशल कारीगरों के होने के संकेत मिलते है।

प्रथम राजंवश के राजाओं ने लिबिया, नूबिया तथा सिनई पर संयुक्त सैनिक अभियान किए। इन अभियानों का प्रयोजन इन प्रदेशों पर अधिकार कर प्राक तिक संसाधनों (कच्चा माल व धातुएँ) पर अधिकार करना था क्योंकि मिस्र में इनकी बहुत कमी थी। इस काल के शासक निंरकुश शासक थे यहां से प्राप्त प्रमाण इस ओर संकेत करते है।

द्वितीय राजंवश :-

इस राजवंश के काल में मैमाफिस मिस्र की राजधानी था। पेरिब्सेन तथा सेखुमुइ इस राजवंश के महत्वपूर्ण शासक थे। इसी काल में विभिन्न नोमों (प्रांतो) में कानूनी तथा आर्थिक संगठनों का विकास किया गया। इसके साथ ही राजा के कार्य और कर्त्तव्यों की भी शुरूआत हुई। राजा ने अनेक उपाधियां धारण करना शुरू किया। राज्य में नहरो और बांधों का निर्माण करवाना राजा का मुख्य कार्य था। इसी काल में नील नदी की वार्षिक बाढ़ को मापकर अध्ययन करना आरंभ किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रथम दो राजवंशो के काल में मिस्र ने काफी प्रगति कर ली थी।

OLD KINGDOM

(पिरामिड युग) :-

तीसरे राजवंश से छठे राजवंश (2778 B.C.-2300 B.C.) का काल प्राचीन राज्यों का काल है। चूंकि इस काल में बहुत से पिरामिड़ों का निर्माण हुआ इसलिए इसे पिरामिड युग के नाम से भी जाना जाता है।

तीसरा राजवंश :- (2778-2723 B.C.)

तीसरे राजवंश का पहला फराओं जोसर था, जो द्वितीय राजंवश के अंतिम शासक खसेखेमुई का पुत्र था। पिरामीड युग का यह महान शासक था सर्वप्रथम इसी के काल में पिरामिडों का निर्माण होना शुरू हुआ और इसने सीढ़ीनुमा पिरामिड़ बनाए। इमहोटेप इसका वजीर था और एक अच्छा वास्तुकार थी। सक्करा के पिरामिड का निर्माण इसी की देख-रेख में हुआ। इस काल में इनकी राजधानी मैम्फिस थी, इसी कारण इस काल काल का मैम्फाइर राज्य भी कहा जाता है। जोसर ने पहले के शासकों की भांति सैनिक अभियान भी किए तथा आसवान से ग्रेनाइट, तुरा से चुना पत्थर तथा सेन्नई से तांबा अपने यहां लाया। एक अभियान उसने दक्षिण के राज्यों के विरूद्ध भी किया और उन प्रदेशों को जीतकर अपने साम्राज्य की सीमा बढ़ाई। दक्षिण के किन-किन प्रदेशों को उसने जीता उनके नामों का उल्लेख नही मिलता। जोसर ने नूबिया पर अधिकार कर वहां शांति व्यवस्था स्थापित की थी। इसने अपने समय में पुरोहितों के प्रभाव को भी कम किया।

जोसर का प्रधानमंत्री अमनहोटेप एक बहुमुखी प्रतिभा का व्यक्ति था। वह एक लिपिशास्त्री, चिकित्सक तथा वास्तुकला का महान स्थापत्यकार था। जोसर की सुफलता के पिछे इसी का हाथ बताया जाता है। अमन होटेप के सम्मान में सेमफिस के निकट एक स्मारक भी बनवाया गया था।

जोसर के काल में केवल राज्य-सीमाओं का ही विस्तार नही हुआ बल्कि मिस्र में सभ्यता और संस्क ति का भी विकास हुआ। इसने अनेक देवालया और पिरामिडों का निर्माण करवाया। इसलिए इसे पिरामिडों की कला को विकसित करने वाला तथा पाषाण स्थापथ्य कला का जनक भी कहा जाता है। इसके काल में कच्ची ईटों के स्थान पर पकी इंटों का प्रयोग भवन निर्माण में किया जाने लगा। सीढ़ीदार पिरामिड़ वास्तुकला का उतम उदाहरण है।

जोसर के उच्चधिकारियों के बारे में हमें अधिक ज्ञान नही है तथा इस राजवंश का अंत भी अज्ञात है। इसके उतराधिकारियों ने भी पिरामिडों का निर्माण करवाया। इसके एक उतराधिकारी ने दासूर (Dahsur) में दो पिरामिड बनवाएं। त तीय राजवंश का अन्तिम शासक नेफ्रू था जोकि एक महान विजेता एवम् कला प्रेमी था इसने सिनाई पर सैनिक अभियान कर वहां फैले विद्रोह को शांत किया। उसे पश्चिम की ओर हरे-भरे प्रदेशों को अपने कब्जे में लाने वाला कहा गया है। उसने नूबिया पर भी सैनिक अभियान किया।

चतुर्थ राजवंश : (2723-2563 B.C.)

इस राजवंश का संस्थापक सनोफ्रू था। इसने अपने काल में दो सैनिक अभियान किए। प्रथम नूबिया पर तथा द्वितीय लिबिया पर जिनका विवरण हमें सिचाई की एक चट्टान पर अंकित मिलता है। नूबिया से वह 7000 तथा लिबिया से 11000 युद्धबंदियों को पकड़कर लाया। उसके दहसूर पलेरयो प्रस्तर पर अंकित लेख के अनुसार उसने 2 पिरामिडों का निर्माण करवाया तथा बहुत से देवालयों और किलों का भी निर्माण करवाया। इसने फ्यूनिसिया (Phoenicia) से लकड़ी का आयात किया और वहां एक कालोनी भी स्थापित की। उसने हतनूब पर आक्रमण किया तथा श्वेत खल्ली की खानों में मिस्र के मजदूरों को नियुक्त किया। उसका साम्राज्य उतर-पश्चिम में डेसुक से लेकर पूर्वी डेल्टा में बूबसतीस तथा दक्षिण में हेराकोन पोलीस तक फैला

हुआ था। वह एक अच्छा प्रशासक था तथा केन्द्रीय शासन में विश्वास करता था। इसने समस्त प्रशासनिक गतिविधियों पर सरकार का प्रभुत्व एवम् नियंत्रण कायम किया। इसने अपने-अपने विश्वाशनीय और योग्य व्यक्तियों को बड़े पदों पर नियुक्त किया। इसका बड़ा पुत्र न केवल प्रधानमंत्री बल्कि मुख्य न्यायधीश भी था। इसके उतराधिकारियों चियोप्स (Cheops), चेफरेन (Chephren) तथा माइसेरीनस (My Cerinus) के बारे में हमें अधिक जानकारी नही। इनके काल में भी बड़े-बड़े भवनो का निर्माण किया गया, जिनमें गीजा का पिरामिड प्रसिद्ध है। माइसेरीनस का उतराधिकारी डडेफरा था, उसने अबु रोस में पिरामीड़ का निर्माण करवाया। इस वंश का अंतिम राजा शेप्संस्काफ था जिसने हेलिथोपोलिय के सूर्य पुजारियों की बढ़ती शक्ति को ललकारा। उसने सक्करा में पिरामिड़ो के स्थान पर सार केफेगस आकार का चार टागों वाला मस्तबर बनवाया। लेकिन चार वर्ष बाद इन पुजारियों में पांचवे राजवंश की स्थापना की।

पंचम वंश :- (2563-2423 B.C.)

पंचम राजवंश के सभी छह फराओं सूर्य के उपासक थे और अपने नाम के साथ 'रा' का प्रयोग करते थे। ऐसा माना जाता है कि इस वशं के पहले तीन फराओं एक पुजारी की पत्नी के सूर्य देव 'रा' से पैदा पुत्र थे। इस काल में सूर्य देव के भव्य मन्दिरों का निर्माण किया गया। खफरा, मेनकुरा तथा डडेफरा इस काल के महत्वपूर्ण शासक थे। इस काल में शासकों की धार्मिक तथा प्रजातंत्रात्मक प्रव तियों के कारण इस वंश का पतन हुआ। क्योंकि इस काल में पुजारियों तथा अन्य उच्च अधिकारियों को बड़े पैमाने पर भूमि दान तथा अन्य साम्रगी दी गई। इस काल में साहुरा के सैनिक अभियान के अतिरिक्त किसी अन्य महत्वपूर्ण अभियान के बारे में जानकारी नही मिलती। साहुरा जो कि यूसरकाफ का पुत्र था, इतिहास में अपनी विजयों के लिए प्रसिद्ध है। उसने सैनिकों की संख्याँ में व द्धि की तथा नौ सैनिक शक्ति भी बढ़ाई। फिर उसने फिनिशिया तथा पुव्ट पर आक्रमण किए। पुण्ट पर अधिकार करने से मिस्र से गोंद, किसमिस, स्र्वण, रजत और कीमती लकड़ियों भी वहां से लाई गई। इस वंश का अंतिम शासक संभवतः यूनिस था, जिसने दक्षिण दिशा में राज्य विस्तार करने के लिए अपने सैनिक अभियान भेजे। इसकी पुष्टि सीमान्त प्रदेश में पाए गए एक शिलालेख से होती है।

इस राजवंश में पहली बार धर्म और राजनीति का आपसी गठबन्धन देखने को मिलता हैं। सभी शासक 'रे' देवता (सूर्य देव) के पुजारी थे इसलिए इसके सम्मान में अनेक मन्दिरों का निर्माण करवाया गया। इन मन्दिरों के विशाल प्रांगण होते थे तथा प्रत्येक दिशा में पूजा के प्रकोष्ठ बने होते थे। पूजा की वेदियों में भी एकरूपता थी। मंदिर की भीतरी दिवारों पर चित्र बने हुए थे। राज्य के पांच अधिकारी इन देखभाल करते थे और उन पर एक निरिक्षक होता था, जो मंदिर की संपति का सरंक्षक था।

छठा राजवंश :- (2423-2300 B.C.)

छठे राजवंश में पेपी I तथा पेपी II दो महत्वपूर्ण शासक हुए। पेपी I ने लगभग 50 वर्षो तक शासन किया और अनेक सैनिक अभियान किए। उसने केवल प्राक तिक संसाधनों की प्राप्ति के लिए ही सैनिक अभियान नही किए बल्कि अपने साम्राज्य विस्तार के लिए भी फिलीस्तीन तक आक्रमण किए। वेणी इसका प्रसिद्ध सेनानायक था, इस बेडूइन कबीलों के विरूद्ध पांच अभियानों पर भेजा गया। इसने नूबिया पर भी आक्रमण किया तथा पेपी के पुत्र मैरेनरा ने भी अपने पिता की मदद की। पेपी I के काल में बुस्तिस (Butastis) टानिस (Tanis), डेनडेरा (Dendera), कोट्टोस (Koptos) तथा स्बीगेस (Abydos) में मन्दिरों का निर्माण किया।

पेपी I के पश्चात् मेरेनरा शासक बना जिसने 5 वर्ष तक राज्य किया। इसने मेरीरा के एडफू नोमार्क (प्रांतपति) को नूबिया के सैनिक अभियान पर भेजा तथा इलिफन्टाइन के नोमार्क को दक्षिणी नूबिया में यम नामक स्थान पर विजय अभियान के लिए भेजा। इसकी म त्यु के बाद पेपी II फराओं बना। इसका शासनकाल मिस्र के इतिहास में सबसे लंबा था। इसने अपने काल में उतरी तथा दक्षिणी दिशा में अपने साम्राज्य का विस्तार किया। लेकिन इसके काल में नूबिया में अनेक विद्रोह हुए। सामाजिक सुधारों के नाम पर नोमार्को ने अनेक मुनाफा कमाया। पुजारियों तथा अन्य अधिकारियों ने भी अपने लिए जमीनें तथा अन्य अधिकार प्राप्त कर लिए जिस कारण राज्य की आर्थिक स्थिति बदहाल हो गई। अव्यवस्था की स्थिति का फायदा उठाते हुए सीमांत प्रदेशों के नोमार्को ने अपनी मनमानी शुरू कर दी और समस्त देश में जगह-जगह विद्रोह होने लगे तथा डेल्टा और मध्य मिस्र में अराजकता की स्थिति पैदा हो गई। इस प्रकार 2300 B.C. के आसपास पिरामिड़ युग का अंत हो गया।

आर्थिक व्यवस्था :-

पिरामिड़ युग में मिस्र आर्थिक द ष्टि से काफी सम्पन्न था तथा इस काल का आर्थिक आधार क षि कर्म था। इसके अतिरिक्त फराओं ने अर्थव्यवस्था को सुद ढ़ करने के लिए व्यापार, उद्योग-धन्धों तथा अन्य आर्थिक साधनों, जैसे खनिजों की प्राप्ति के लिए किए गए सैनिका अभियानों को बढ़ाने में व्यक्तिगत रूची ली। इसी कारण इस काल की अर्थव्यवस्था सुद ढ़ थी जिसकी पुष्टि इस काल के पिरामिड़ों, मन्दिरों तथ अन्य कलात्मक क तियों से देखने को मिलती है।

क षि :-

मिस्रवासियों के जीवन का आधार क षि था। क षि कार्यो में नील नदी का बहुत योगदान रहा। नील में प्रतिवर्ष आने वाली बाढ़ से पहाड़ों से आई नई उपजाऊ मिट्टी इस प्रदेश में बिखर जाती और क षक फसलें बो देते। बाढ़ के पानी से स्वयं सिचांई हो जाती तथा जल का स्तर घटने पर बांधो और नहरों द्वारा सिंचाई कार्य होता था। क षि कार्यो में क षक कम मेहनत करके अधिक उत्पादन पैदा करते थे। क षि कार्यो में क षक कम मेहनत करके अधिक उत्पादन पैदा करते थे। क षि कर्म में उन्हें प्रशासन की ओर से भरपूर मदद मिलती थी। जैसे सिचांई के लिए पूरे राज्य में नहरें खुदवाना फराओं का महत्वपूर्ण कार्य था। इस काल के बहुत से मितिचित्रों पर राजा को नहर निर्माण के लिए पहला फावड़ा मारकर मिट्टी निकालते चित्रित किया गया है।

समस्त प्रदेश की जमीन पर स्वामी फराओं स्वंय था, वहीं क षकों को खेती के लिए भी भूमि देता था। राज्य क षकों को नील नदी में आने वाली बाढ़ की पूर्व सूचना देता था। इस कार्य के लिए प्रशासन में अनेक अधिकारियों की नियुक्ति की गई थी। अग्रिम सूचना मिलने पर क षक होने वाले नुकसान से बच सकते थे। इसके अलावा क षकों को राज्य की ओर से प्रशिक्षण भी दिया जाता था। क षि स्थिति की जांच के लिए, अनाज पर नियंत्रण रखने के लिए तथा कर वसूलने के लिए राज्य द्वारा अधिकारी नियुक्त किए जाते थे। फसल का घनत्व (denisty) तथा ऊंचाई माप कर निर्धारित किए जाते थे। यह कर या लगान आय का 1/5 से 1/10 तक होता था। चूंकि इस काल में मुद्रा प्रणाली अस्तित्व में नही थी इसलिए कर के रूप में अन्न वसूला जाता था। जो क षक कर की अदायगी नही करता था उसे राज्य की ओर से सिचांई के लिए नहरों का पानी नही दिया जाता था। इस काल में मुख्यतः गेंहू, जौ, तिलहन, विभिन्न दालें तथा मटर की खेती की जाती थी। मिस्र की काली मिट्टी में पैपीरस, पटरसन और कपास की पैदावार प्रचुर मात्रा में होती थी। अनाज के साथ सब्जियां भी पैदा की जाती थी। फलों में खजूर, जैतून, अंजीर और अंगूर की भी खेती की जाती थी इस काल के भित्ति चित्रों में क षकों को विभिन्न अवस्थाओं में दर्शाया गया है जैसे हल चलाना, अन्न ओसावन, फसल काटना, ढुलाई अन्न निकालना, अन्नागारों में भंडारण के साथ-साथ विभिन्न पशुओं तथा राजकीय कर्मचारियों को फसलों का नाप लेकर निर्धारण करते दिखाया गया हैं।

पशुपालन :-

क षि के साथ-साथ पशुपालन भी मिस्र वासियों का दूसरा प्रमुख धन्धा था। पशु क षि से सम्बद्ध थे इसलिए उनके रखरखाव पर विशेष ध्यान दिया गया। बैल और खच्चर द्वारा हल जोता जाता था तथा वे भारवाहक के रूप में प्रयुक्त होते थे। गाय, भेड़ बकरी इत्यादि दूध, मांस और ऊन के लिए पाले जाते थे। सूअर और मुर्गियों को भी मांस प्राप्ती के लिए पाला जाता था। इस काल में बंदरों को भी पालतू बनाया गया ये विशेषतः ऊंचे पेड़ो से फल तोड़ने में मदद करते थे। नील नदी तथा इससे निकली नहरों से इस काल के लोग मछलियों तथा घड़ियाल का शिकार कर भोजन के रूप में प्रयोग में लाते थे।

उद्योग-धन्धे :-

मिस्र की भौगोलिक स्थिति ऐसी थी कि नील नदी के आसपास का क्षेत्र छोड़कर बाकि समस्त क्षेत्र रेगिस्तान है। जहां पर खनिज पदार्थो का काफी अभाव है तथा पेड़-पौधे ज्यादा ना होने के कारण लकडियां भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध नही है। इस कमी को पिरामिड युग के फराओं द्वारा काफी हद तक दूर किया गया। शासकों ने सैनिक अभियानों के तहत नूबिया, लिबिया, सिनाई पर आक्रमण कर वहाँ के खनिज पदार्थो का मिस्र मे लाए। इससे न केवल घरेलू उद्योग धन्धो के लिए कच्चे माल की प्राप्ती हुई बल्कि यह राज्य की आय का भी एक स्त्रोत था। इसी प्रकार लकड़ी भी बाहर से आयात की जाती थी। दूर-दराज के प्रदेशों से इन वस्तुओं को मिस्र तक लाने के लिए बड़े जलस्त्रोत विदेशों की यात्रा करते थे।

धातु उद्योग :-

मिस्र का धातु उद्योग काफी विकसित था। इस काल के कारीगर धातुओं के गलाने की कला से परिचित थे। तांबे को पिघलाकर विभिन्न प्रकार के अस्त्र-शस्त्र, बर्तन और अन्य उपकरण बनाए जाते थे। सोने के विभिन्न प्रकार के आभूषण बनाए जाते थे। इस काल के अनेक भितिचित्रों में स्वर्णकारों को कार्य करते हुए चित्रित किया गया है। इस काल के फराओं, सामंत तथा प्रदेश के उच्च अधिकारी स्वर्ण के विभिन्न आभूषणों तथा साज-साम्रगी के लिए तैयार अन्य कलाक तियों का प्रयोग करते थे।

असीरिया और नूबिया से देवदार आबनूस की लकड़ी मंगवाई जाती थी जिनसे किश्तियां, पोत तथा फरनीचर बनाया जाता था। इस काल के पिरामिड़ो में पाई जाने वाली लकड़ी की विभिन्न कलाक त्तियों तथा आराम कुर्सियों और मेजों इत्यादि से पता चलता है कि काष्ठ उद्योग इस काल में काफी उन्नत था। लकड़ी से दैनिक उपभोग में प्रयुक्त की जाने वाली भी विभिन्न वस्तुओं का निर्माण किया जाता था।

हाथी दांत का विदेशों से आयात किया जाता था और उसकी विभिन्न कलात्मक वस्तुएँ बनाई जाती थी जिन्हें शासक वर्ग तथा समाज के अन्य उच्च वर्ग के लोग अपने घरों में सजावट के लिए रखते थे। हाथी दांत के आभूषण भी बनाए जाते थे।

पाषाण उद्योग भी प्रचलित था इसमें संलिप्त कारीगर काफी दक्ष थे। विदेशों से पत्थरों का आयात किया जाता था। पत्थरों को तराशने का कार्य बड़ी निपुणता से किया जाता था। इस काल में बीस-बीस टन भारत के बड़े-बड़े पाषाण खंडों को काटकर तराशा जाता था और इमारतें तैयार की जाती थी। इस काल में निर्मित पिरामिड और मन्दिर जिन्हें बड़े-बड़े पाषाण खंड़ो से जोड़कर बनाया गया है इस काल की उच्च तकनीक और दक्ष शिल्प का उदाहरण है। इसके अतिरिक्त पत्थरों के विभिन्न म दभांड, सज्जा साम्रगी जैसे फूलदान, तश्तरियां और खिलौने आदि बनाए जाते थे।

म दभांड कला का भी इस काल में काफी विकास हो चुका था। यद्यपि इस काल के म दभांड कलात्मक द ष्टि से सुन्दर नही थे, परन्तु वे उपयोगी थे। म दभांड खाद्य-साम्रगी भर कर रखने तथा तेल और शराब इत्यादि पेय पदार्थ भर के रखने के काम आते थे।

पेपीरस नामक घास से कागज बनान, चमड़े तथा खालों से वस्त्र-निर्माण, रस्सी, चटाइयां और चप्पलें इत्यादि बनाना अन्य उद्योग-धन्धे थे। मकानों का निर्माण करने के लिए कच्ची और पकी इंटों का प्रयोग किया जाता था, इन्हें बनाने का उद्योग भी विकसित था।

वस्त्र उद्योग इस काल में काफी विकसित था। सुत कातना और बुनाई का कार्य सामान्यतः घरों की स्त्रियां करती थी। घरों से तकुए और तकलियों प्राप्त हुए है जो इस ओर इशारा करते है। छोटे क षक और दास भी कारखानों में कार्य करते थे। उच्च वर्ग के लोग उत्तम कोटि के लिनन वस्त्र धारण करते थे। इनके वस्त्र ज्यादातर चमकीले और भडकाऊ होते थे निम्न वर्ग के लोग साधारण वस्त्र पहनते थे।

जैतून का तेल निकालने का उद्योग भी इस काल में महत्वपूर्ण था।

इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की कलात्मक वस्तुओं के निर्माण में भी काफी कारीगर संलिप्त थे। इस काल के कारीगरों की चित्रकारी के प्रमाण हमें पिरामिड़ो तथा मन्दिरों की भीतरी दिवारों पर और इस काल के म दंभाड़ो पर देखने को मिलती है।

व्यापार प्रणाली :-
(Trade System)

चूंकि मिस्र में नील नदी के आसपास का क्षेत्र छोड़कर सारा प्रवेश मरूस्थल है। इसलिए नील नदी और उसकी नहरों द्वारा ही व्यापारिक गतिविधियाँ होती थी। विदेशो से व्यापारी लकड़ियाँ, स्वर्ण, रजत , हाथीदांत, मसाले, पत्थर और सुंगधित पदार्थ मंगवाया करते थे। लकड़ियों से नाव और जहाज बनाए जाते थे। सिसली से ग्रेनाइट, अनातोनिया से चांदी, सिनाई से तांबा, हमामात से पत्थर, अभाय से चूना पत्थर मंगवाया जाता था रत्नमीण और रंगों का भी आयात सिनाई प्रायद्वीप से किया जाता था।

निर्यात की जाने वाली वस्तुओं में अनाज, जैतून का तेल, मिट्टी के पण तथा अन्य कलात्मक वस्तुएं शामिल थी। व्यापार विनिमय प्रणाली (Barlir-system) पर आधारित था जिसमें वस्तुओं का आदान-प्रदान होता था। इस काल में वस्तुओं की सूची थी निर्धारित होती थी कि अमुक वस्तु के बदले कौन सी वस्तु और कितनी मात्रा में मिल सकती थी। जैसे एक कच्चे बर्तन के बदले एक मछली, एक गुच्छा प्याज के बदले एक पंखा इत्यादि।

पिरामिड़ युग में समस्त व्यापार पर सरकारी नियंत्रण था। व्यापार के लिए जरूरी नियमावली का निर्माण राज्य द्वारा किया गया था। जिसका पालन सरकारी और मुक्त व्यापारियों को करना पड़ता था। इस काल में व्यापर के लिए आपसी लिखित अनुबंधो की शुरूआत हो गई थी। व्यापार के लिए आदेश पत्र खरीदी और बेची साम्रगी की रसीद ली जाती थी। व्यापार संबधी वसीयतनायें भी इस काल में लिए जाते थे। इन कार्यो के लिए बहुत से लिपिक नियुक्त थे जो मिट्टी की पट्टिकाओं और मुद्राकों पर इस प्रकार के अनुबन्ध अंकित करते थे। इस प्रकार के अनेक व्यापारिक अनुबंध लेख, पत्र इत्यादि प्राप्त हुए है। व्यापार के लिए हुण्डियों का प्रयोग भी किया जाता था। व्यापार के लिए सोने-चांदी-तांबे की निश्चित भार वाली अंगूठियों और छल्लों का प्रयोग माध्यम के तौर पर किया जाता था।

चूंकि व्यापार पर राज्य का नियंत्रण था इसलिए मुक्त व्यापार काफी कम था जिसके अभाव में व्यापारी उत्साहपूर्ण व्यापारिक गतिविधियों में हिस्सा नहीं लेते थे कर के रूप में भी उनके लाभ का अंधिकाश भाग राज्य ले लेता था। इसलिए उन्हें उतना मुनाफा नही मिल पाता था। लेकिन इस काल में व्यापिरयों ने अपने संघों का निर्माण कर लिया था ये श्रेणियां या संघ व्यापारियों के हितों की रक्षा करती थी।

अध्याय-3

हड़प्पा सभ्यता
(Harappan Civilization)

बीसवीं सदी के तीसरे दशक में (1922-23) में जब राखलदास बैनर्जी मोहनजोदड़ों नामक स्थल पर एक बौद्ध स्तूप का उत्खनन कर रहे थे तो उन्हें चित्राक ति लेख वाली मुहरें प्राप्त हुई जिससे एकाएक भारत की सभ्यता हजारों वर्ष पहले प्रागौतिहास काल में आंकी जाने लगी। इससे पहले केवल पाषाण काल तथा नवपाषाण काल के उपकरणें तथा पांचवी सदी ई.पू. की पिपरावा लेख ही प्राचीन माने जाते थे। जबकि आर्य या वैदिक सभ्यता को द्वितीय शताब्दी ई.पू. से पहले की नहीं माना जा सकता था। सर जानॅ मार्शल ने, जो सिन्धु सभ्यता के मुख्य उत्खननकर्ता थे उन्होंने इस सभ्यता को उस समय 3250-2750 ई.पू. रखा। प्रारंभ में इस सभ्यता के प्रमाण सिन्धु तथा इसकी सहायक नदियों के आस-पास से प्राप्त हुए थे। इसलिए विद्वानों ने इसे सिन्धु घाटी सभ्यता का नाम दिया था हडप्पा से सबसे पहले प्राप्त होने के कारण इसे हडप्पा सभ्यता भी कहा जाने लगा। लेकिन स्वंतत्रता प्राप्ती के पश्चात् प्रमुख सिन्धु स्थल पाकिस्तान चले गए उस समय भारतीय पुरातत्ववेताओ ने भारतीय क्षेत्र में इस सभ्यता के अवशेष ढूढंने शुरू किए। सर्वप्रथम रोपड़ कोटला मिश्रां खान आदि स्थलों से इस सभ्यता के प्रमाण मिले लेकिन अब तो इसके अवशेष पंजाब, हरियाणा, जम्मूक्षेत्र, पश्चिमी उतर प्रदेश, गुजरात, राजस्थान, महाराष्ट्र इत्यादि से भी प्राप्त हुए हैं। इसके बहुत से क्षेत्र सिन्धु या इसकी सहायक नदियों पर स्थित ना होकर अन्य नदियों पर स्थित थे इसलिए अब इस संस्क ति को सिन्धु घाटी की सभ्यता ना कह कर सिन्धु सभ्यता या हडप्पा सभ्यता के नाम से जाना जाता है।

उद्‌गम
Origin

हडप्पा सभ्यता के अस्तित्व में आने स पूर्व इस क्षेत्र में क षि समुदायों के विकास की एक लंबी अवधि रही है। इस क्षेत्र में प्रारिम्भक क षि समुदायों के प्रमाण बोलने दर्रे के पास महरगढ़ नामक स्थान से प्राप्त हुए है। रेडियों कार्बन तिथि से स्पष्ट होता है कि ईसा से 5000 वर्ष पूर्व इस क्षेत्र के निवासी गेहूँ तथा जौ की क षि से परिचित था। धीरे-धीरे इन्होंने सिन्धु के मैदानों में क षि कार्यो को बढ़ाया और सिन्धु नदी की बाढ़ पर नियंत्रण करना सीखा। सिंधु, राजस्थान और ब्लुचिस्तान के क्षेत्रों पर अपना नियंत्रण कर बस्तियां स्थापित की। इन क्षेत्रों में रहने वाले विभिन्न क षि समुदायों में सांस्क तिक परम्पराओं की समानता थी। जैसे :- एक ही प्रकार के म दभाड़ों का प्रयोग, मात देवी की मिट्‌टी की मूर्तियां, सींग वाला बैल देवता आदि प्रमाण इस बात की ओर इंगित करते है कि किस प्रकार इस समूचे क्षेत्र में एक सम्मिश्रित परम्परा का उदय हुआ। क षि विकास की यह प्रक्रिया जो संभवतः ईसा पूर्व सांतवी शताब्दी में ब्लूचिस्तान से शुरू हुई वह ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी के आसपास सिंधु घाटी के सिन्ध और पंजाब तक प्रचलित हो गयी। आगे यही प्रक्रिया पूर्व की ओर बढ़ती हुई प्राचीन सरस्वती घाटी की परिधि तक फैल गई। पुरातातविक अध्ययन से पता चलता है कि इन क्षेत्रों में परस्पर-क्रियांए होती थी। ब्लूचिस्तान और सिधुं घाटी में प्रारंभ के क षि विकास तथा बाद में इसी क्षेत्र में पनपी हडप्पा सभ्यता के विकास के बीच निकट संबध रहे है।

हडप्पा सभ्यता के उद्‌गम का विषय लंबे अरसे से विवादाग्रस्त विषय रहा है। यूरोपिय विद्वान खासतौर से सर मोर्टिमर व्हीलर ने सन् 1968 में हडप्पा सभ्यता की उत्पति के विषय में लिखा कि प्राचीन विश्व के अन्य क्षेत्रों की तुलना में भारत में नगरीय संस्क ति का उदय देर से हुआ। इनके अनुसार ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी के मध्य मे सिन्धु क्षेत्र में हडप्पा संस्क ति अचानक प्रकट हुई अर्थात् इनके अनुसार हडप्पा सभ्यता अपने सबसे प्रथम चरण में ही पूर्ण रूप से विकसित हो चुकी थी और इस संस्क ति का इससे पूर्व समय में उस क्षेत्र में रहने वाले व्यक्त्यो में कोई समानता नही थी। इसका अभिप्राय यह हुआ कि इस सभ्यता

की स्थापना में बाहरी तत्वों का समावेश था। इनके अनुसार मेसोपोटानिया तथा पश्चिमी एशिया से आई जातियों में इस क्षेत्र को जीतकर यहाँ नगरों की स्थापना की। इनका अभिप्राय यह था कि सभ्यता के उदय का विचार विदेश से संभवतः मसोपोटानिया से आया, क्योंकि विचार पक्षियों की भांति उड़ते है।

पुरातातविक अनुसंधानों द्वारा इस सभ्यता की उत्पति के विषय में अब यह स्वीकार किया जाने लगा कि इस सभ्यता की उत्पति और विकास धीरे-धीरे स्थानीय संसाधनों द्वारा ही संभव हुआ है। इस क्षेत्र में मानव शिकारी- संग्रहकर्ता से क षि समाज की ओर कैसे अग्रसर हुआ इस प्रक्रिया के स्पष्ट चिन्ह मौजूद है। इस प्रक्रिया को समझने में महरगढ़ ब्लूचिस्तान, रहमान ढेरी-उतर-पश्चिमी सिन्धु प्रांत, अमरी-सिन्धु घाटी के निचले मैदान कोटदीजी तथा कालीकंगा - राजस्थान, तथा पंजाब की आंरभिक हडप्पाकालीन बस्तियों से विशेष जानकारी प्राप्त होती है। इन क्षेत्रों की (ब्लूचिस्तान, सिंध, पंजाब, राजस्थान आदि) बस्तियों में एकरूपता के प्रमाण स्पष्ट दिखाई पड़ते है। जैसे म ण्यमूर्तियों, म दभांड, घर-दिवारें, परकोटे, नगर-निर्माण तथ हस्तशिल्प में समानता स्पष्ट दिखाई देती है। इस क्षेत्र में हुआ यही विकास क्रम हडप्पा सभ्यता को विकसित स्वरूपी ओर ले जाता है।

विस्तार
(Extent)

पुरातातविक अनुसंधानों के परिणामस्वरूप यह स्पष्ट हुआ कि भौगोलिक द ष्टिकोण से हडप्पा सभ्यता का विस्तार क्षेत्र काफी दूर तक फैला हुआ था। यह सिन्धु नदी की घाटी तक ही सीमित नही थी बल्कि समूचे सिंध तथा ब्लूचिस्तान में और लगाभग पूरे पंजाब (पूर्वी और पश्चिमी), हरियाणा, पश्चिमी उतर-प्रदेश, जम्मू, उतरी राजस्थान, गुजरात तथा उतरी महाराष्ट्र के क्षेत्रों में फैली हुई थी। विस्तार की द ष्टि से यह क्षेत्र मिस्र और मेसोपोटामिया की सभ्यताओं से भी अधिक विस्त त था। इस सभ्यता के प्रमुख केन्द्र निम्न है :- ब्लूचिस्तान में (पकिस्तान), डाबरकोट, सुत्क गेण्डोर कौर सोत्काकोह। सिंध में (पाकिस्तान), मोहनजोदड़ों, चन्हुदडों और अलीमुशद। पंजाब में (पाकिस्तान), हडप्पा। पंजाब में (भारत) रोपड बाडा, संघोल। हरियाणा में मीताथल, बनावली, राखीगढ़ी। राजस्थान में :- कालीबंगा। उतर प्रदेश में - आलमगीरपुर। गुजरात में - रंगपुर, लोथल, घौलावीरा, सुरकोटडा तथा रोजदी। जम्मू में - माण्डा आदि।

निष्कर्षतः हडप्पा सभ्यता का विस्तार दक्षिण ब्लूचिस्तान में सूलकागेनदोर से 1550 कि.मी. दूर पूर्व मे मेरठ में आलमगीर तक तथा उतर में रोपड़ से 1100 कि.मी. दूर भगतराव तक फैला हुआ था। यह समूचा क्षेत्र त्रिभुजाकार का है और इसका क्षेत्रफल लगाभग 1,2,99,66 वर्ग कि.मी. का है।

उत्खनन कार्य :-
(Archaeological Work)

हडप्पा के स्थल पर किसी प्राचीन सभ्यता के अवशेष होने का उल्लेख सर्वप्रथम 1826 में चार्ल्स मेसेन ने किया था। 1853 तथा पुनः 1856 मे कनिधम (भारतीय पुरातातविक सर्वेक्षण विभाग के महानिदेश) ने हडप्पा के टीले के नीचे किसी प्राचीन सभ्यता के दबे होने की पुष्टि की और यहाँ उत्खनन कार्य भी करवाया। 1921 में दयाराम साहनी ने हडप्पा और 1922 में राखल दास बनर्जी द्वारा मोहनजोदडों में किए गए उत्खनन कार्यो में इस सभ्यता का अस्तित्व पूर्ण तौर पर सिद्ध हो गया। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के तत्कालीन महानिदेशक सर जॉन मार्शल ने इन उत्खनन कार्यो में गहन दिलचस्पी ली और 1924 में लंदन से प्रकाशित एक साप्ताहिक पत्र में इस सभ्यता के बारे में सारी दुनिया को जानकारी दी। इन क्षेत्रों में हुए उत्खनन कार्यो से एक बात सामने आई कि यह एक विशिष्ट सभ्यता थी और मिस्र तथा मसोपोटामिया की सभ्यताओं के समकालीन थी। बाद के दशकों में खुदाई के दौरान अनेक महत्वपूर्ण स्थल प्रकाश में आए। अनुसंधान कार्यो मे बाद में मार्टेन व्हीलर, वत्स, एन.जी. मजूमदार, सर स्टाईन, एस.आर.राव. आदि पुरातत्वयिो ने महत्वपूर्ण जानकारियाँ एकत्रित की।

नगर विन्यास
(Town Planning)

सर मार्टिन व्हीलर और स्टूअर्ट पिग्ट जैसे पुरातत्वियों का मत था कि हडप्पा-सभ्यता के नगरों की संरचना और बनावट में असाधारण प्रकार की एकरूपता थी। प्रत्येक नगर सामान्यतः दो भागों में विभाजित होता था, ऊपरी भाग तथा निचला भाग

(शहर)। ऊपरी भाग जिसे पश्चिमी भाग भी कहा जाता था यें शासक, राजघराने और उच्चवर्ग के लोग निवास करते थे जबकि पूर्वी भाग में नगर के शासित और निम्न वर्ग के लोग निवास करते थे। नगर में गढ़ी के चारों और सुरक्षा प्राचीर हुआ करती थी तथा निचला शहर (पूर्वी हिस्सा) सामान्यतः बिना सुरक्षा प्राचीर के होता था। परन्तु इसमें कुछ अपवाद भी है जैसे : मोहनजोदड़ों में गढ़ी पश्चिम की ओर तथा निचला शहर पूर्व में है हडप्पा में निचला शहर दुर्ग या गढ़ी के दक्षिण-पूर्व में स्थित है। गुजरात के सुरकोवड़ा नामक स्थल में यह दोनों एक-दूसरे के साथ सटे हुए है। हरियाणा स्थित बनावली में यह दोनो अलग ना होकर एक ही साथ है जबकि गुजरात स्थित लोथल में भी यह दक्षिण-पूर्व कोनों पर स्थित है।

सामान्यतः दुर्ग या गढ़ी ऊँचें स्थल पर बनी होती थी, जो कि धूप में सूखी इंटों के चबूतरे पर पक्की इंटों से बनी सुरक्षा दिवार के बीच स्थित थी। मोहनजोदड़ों मे यह आसपास के क्षेत्र से 12 मीटर ऊँचाई पर स्थित है। यहाँ पर निचला शहर सुरक्षा प्राचीर रहित है। यहाँ किले के भीतर पुरोहित-आवास, सभा-भवन, अन्नागार और विशाल स्नानागार स्थित थे। हडप्पा के दुर्ग के बाहर उतर दिशा में स्थित 'एफ' टीले पर अन्नागार, अन्न कूटने के व ताकार चबूतरे और श्रमिक आवास के प्रमाण मिले है। लोथेल का दक्षिणी-पूर्वी भाग दुर्ग क्षेत्र था जिसमें अन्नागार स्थित था। यहीं कुछ अन्य महत्वपूर्ण भवन भी रहे होंगें क्योंकि एक कतार में बाहर स्नानागार और ढ़की हुइ नलियाँ मिली है।

हडप्पा, मोहनजोदड़ों और कालीबेगन के दुर्ग मजबूत सुरक्षा-प्राचीर युक्त थे तथा इनके आकार समलम्ब चतुर्भुज की तरह थे। गुजराज में घौलावीरा नामक स्थान पर तो पत्थर के टुकड़ों की बाहरी दिवार के भीतर तीन अलग-अलग सुरक्षा प्राचीरों वाले तीन भाग थे, जिसे उत्खननकर्ता ने नगरगढ़ी, मध्य नगर तथा निचले नगर की संज्ञा दी है। नगर दुर्ग तथा मध्य नगर के चारों ओर दिवार थी, दीवार में समान दूरी पर नगर द्वार और बुर्ज बने हुए थे इस सभ्यता के नगर दुर्गो में पुरोहित और शासकीय वर्ग निवास करते थे जबकि निचले नगर में दस्तकार, व्यापारी, शिल्पकार एवम् अन्य वर्ग के लोग निवास करते थे। सुरकोतड़ा में दो अलग-अलग द्वार हैं, जिनमें एक द्वार गढ़ी को जाता था तथा दूसरा रियायशी क्षेत्र की तरफ। चूंकि इस सभ्यता के सभी स्थलों पर समरूपता पाई गई है तथा मोहनजोदड़ों का विस्त त पैमानें पर उत्खनन किया जा चुका है, इसलिए सामान्यतः बर्ही की नगर योजना को एक भूमिका के रूप में सिन्धु सभ्यता का नगर विन्यास माना जाता है। अधिकांश नगरों में विशेषकर दुर्ग-नगर के चारों ओर मोटी दीवार (परकोटा) होती थी। इस पराकोटे में स्थान-स्थान पर प्रवेश द्वार बने होते थे। घौलावीरा तथा सुरकोतड़ा के नगर प्रवेश द्वारा काफी विशाल और सुंदर थे जबकि अन्य स्थलों के इनकी तुलना में साधारण थे। कुछ नगर द्वारों के करीब सुरक्षाकर्मियों के छोटे कक्ष बने हुए थे। हडप्पा सभ्यता के नगरों के चारों ओर परकोटों तथा नगर द्वारों के निर्माण का उद्देश्य संभवत बाहरी आक्रमणकारियों से सुरक्षा करना रहा होगा।

सड़के और गलियाँ :-

हडप्पाकालीन नगर पूर्व नियोजित योजना के आधार पर बसाए गए थे। इस सभ्यता की वास्तुकला में सड़कों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। सड़के एक-दूसरे को समकोण पर काटती थी। इस तरह शहर कई हिस्सों में बँटा हुआ था। इस काल में निर्मित सड़कें और गलियाँ पूर्व से पश्चिम की ओर तथा उतर से दक्षिण की तरफ निर्मित थी। नगरों में सामान्य रूप से उतर दिशा से प्रवेश किया जाता था और मुख्य सड़क (मार्ग) उतर से दक्षिण दिशा में थी जो काफी चौड़ी थी और इसमें पहिए वाले वाहन आसानी से प्रवेश कर सकते थे। पूर्वी सड़क शहर का मुख्य मार्ग था जो कि पहली सड़क से काफी चौड़ी थी। सड़कों के अतिरिक्त नगरों में गलियाँ भी थी जो मुख्य दिशाओं की ओर एक-दूसरे को काटती थी। मोहनजोदड़ो से सबसे चौड़ी गली (मार्ग) 9.15 मीटर तथा छोटी गलियाँ करीब 3 मीटर चौड़ी थी। कालीबंगा में प्रमुख मार्ग 7.20 मीटर अन्य गलियाँ 5.4, 3.6 तथा 1.80 मीटर चौड़ी थी। यहाँ गलियों का माप हडप्पा सभ्यता के प्रसिद्ध अनुपात 4:2:1 पर आधारित था। सड़कों की स्वचछता और सफाई पर विशेष ध्यान दिया जाता था। कूडा-करकट फैंकने के लिए सड़कों के किनारे या तो गड़ढे बने होते थे अथवा कूड़ेदान रखे जाते थे। सड़कों और गलियों पर कहीं कोई अतिक्रमण देखने का नही मिलता।

नालियाँ :-
(Dranage System)

नगरों में जल निकासी प्रणाली इस सभ्यता की अद्वितीय विशेषता थी, जो किसी अन्य समकालीन सभ्यता में देखने को नही मिलती। प्रत्येक सड़क और गलियों के दोनों ओर पक्की नलियाँ थी प्रत्येक घर का पानी इन्ही नालियों द्वारा बाहर जाता था।

मुख्य सड़कों और गलियों के नीचे 23 से.मी. चौड़ी तथा 50 से.मी. तक गहरी पक्की इंटों से निर्मित नालियाँ थी जो बड़े-2 पत्थरों से ढ़की होती थी। चूने और इंटों से निर्मित गली की नाली का पानी एक बड़ी नाली में जाता था, जो आगे एक नाले में गिरती थी और शहर का पानी बाहर पहुँचाया जाता था। इनकी नियमित सफाई का प्रबन्ध था क्योंकि स्थान-2 पर अवरोध ा लगाए गए थे ताकि कचरे रहित पानी आगे जा सके। यानि मुख्य नलियों में कचरा छानने की भी व्यवस्था होती थी, नलियों में ऐसी व्यवस्था करने के लिए बड़े गड़ढे (शोषगर्त) होते थे, जो पत्थरों से ढके होते थे जिन्हें सफाई करने के लिए आसानी से हटाया जा सकता था।

भवन-निर्माण :-

हडप्पा सभ्यता के नगरों में उत्खनन के दौरान दो प्रकार के भवनावशेष प्राप्त हुए है; आवासीय भवन और सामुदायिक भवन। सामुदायिक भवन दुर्ग या गढ़ी में थे तथा आवासीय भवन निचले नगर में। हडप्पा और मोहनजोदड़ों में सामान्य भवन योजनाबद्ध तरीके से निर्मित थे। प्रत्येक आवासीय भवन के बीच में एक आंगन होता था, जिसके चारों ओर चार-पांच कमरे, एक रसोईघर और एक स्नानागार बना होता था। अंधिकाश घरों में एक कुआँ भी होता था। सम्पन्न लोगों के घरो में शौचालय भी होते थे। बड़े आकार के भवनों में तीस कमरें तक होते थे। भवनों में मिली सीढ़ियों से पता चलता है कि दुमंजिलें भवन भी होते थे। घरों के दरवाजे मुख्य मार्ग में न खुलकर पिछवाड़े की ओर गली में खुलते थे। सड़क की तरफ खिड़की और रोशनदान भी नही बने होते थे। भवनों के फर्श ईटें बिछाकर फर्श बनाए जाते थे। कुछ भवनों की दीवारों पर पलस्तर के भी साक्ष्य मिले है। छतों के विषय में साक्ष्यों का स्पष्ट अभाव है अनुमानतः छतें समतल होती थी। छतों पर घास-फूस बिछाकर ऊपर से मिट्टी छाप दी जाती थी।

हडप्पा और मोहनजोदड़ों में पकी हुई ईटों का प्रयोग भवनों के निर्माण के लिए किया गया है। लोथेल, रंगपुर तथा कालीबंगा में भवनों के निर्माण के लिए कच्ची ईटो का ही प्रायः उपयोग किया गया है। कालीबंगा में पक्की ईटों का प्रयोग केवल नालियों, कुओं तथा दहलीजों के निर्माण के लिए किया गया है। कई आकार-प्रकार की ईटों का उपयोग होता था किन्तु प्रचलित आकार 28 x 14 x 7 सें.मी. अथवा ल॰, चौडाई और मोटाई में 4:2:1 का अनुपात था। कालींबंगा में 40 x 20 x 10 सें. मी. के साथ-साथ 30 x 15 x 7½ सें. मी. की ईटों का प्रयोग भी देखने को मिलता है। हरियाणा स्थित बनावली में 24 x 12 x 6, 32 x 16 x 8 सें.मी. की छोटी ईटों के साथ-साथ बड़े आकार की 40 x 20 x 10 तथा 50 x 25 x 12.5 सें.मी. की ईटों का भी प्रयोग मिलता है। घौलावीरा में 36 x 18 x 9 सें. मी. के आकार की ईटों का प्रयोग मिलता है।

भवनों की नींव गहराई तक खोदी जाती थी ईटों को जोड़ने में मिट्टी के गारे तथा विशेष प्रकार की चिनाई में चूने का भी प्रयोग किया जाता था।

सार्वजनिक भवन :-

मुख्यनगर के गढ़ी वाले क्षेत्र में सार्वजनिक भवन निर्मित थे। हडप्पा और मोहनजोदड़ो से ऐसे अनेक विशाल भवन मिले है। हडप्पा में पश्चिमी टीले पर एक सामानान्तर चतुर्भुजाकार दुर्ग था जो उतर-दक्षिण में 460 गज तथा पूर्व-पश्चिम में 215 गज चौड़ा था और इसकी ऊँचाई 45-50 फीट थी। यहाँ से प्राप्त सार्वजनिक भवनों में भंडागार उल्लेखनीय हैं इसके बीच में 7 मीटर चौड़ा गलियारा था। पुरात्तववेताओं ने इस भवन को विशाल अन्नागार बताया है जो अन्न, कपास और व्यापारिक वस्तुओं के गोदाम के काम आता था। इसके पास चबूतरे हो जहाँ अनाज कूटा जाता था। यहाँ पर गेंहू और जौ के कूटे हुए अन्नकण प्राप्त हुए है। इसके समीप ही कारीगरों के लिए छोटे-छोटे घर बने हुए थे।

मोहनजोदड़ो स्थित महत्वपूर्ण भवन विशाल स्नानागार था जो आयताकार आकार का था। इटों से निर्मित इस विशाल स्नान कुण्ड की लम्बाई-चौडाई 12 मी. x 7 मी. और गहराई 3 मी. है। इसमें नीचे उतरने के लिए दोनों तरफ सीढियाँ है, जो दक्षिण और उतर की ओर बनी हुई थी। स्नानकुण्ड के तल को डामर से जलरोधी बनाया गया था। इसके लिए पानी निकालने के लिए भी एक ढलवाँ नाली थी। कुण्ड के चारों तरफ मण्डप और कमेर बने हुए थे, प्रत्येक कमरे की अपनी एक सीढी थी। विद्वानों का अनुमान है कि यहाँ पर राजा या पुरोहित धार्मिक स्नान के लिए आते थे।

अन्नभण्डार :-
(Graining Nouse)

मोहनजोदड़ों से प्राप्त अन्य महत्वपूर्ण इमारत है। इसमें ईटों से निर्मित सलाइस खण्ड (Blocks) है जिनमें प्रकाश के लिए आडे-तिरछे रोशनदान बने हुए है। अन्नभण्डार के नीचे ईटों से निर्मित खांचे थे जिनसे अनाज का भण्डारण के लिए ऊपर पहुँचाया जाता था।

सभागार :-

स्नानागार के समीप स्तम्भ युक्त एक बड़े हाल के प्रमाण मिले है जो कि 80 x 30 फुट चौड़ा था। यहाँ से 20 स्तम्भ प्रकाश में आए है। इस सभागार में पाँच-पाँच ईटों की ऊँचाई की चार चबूतरों की पक्तियाँ थी। यह ऊँचें चबूतरे ईटों के बने हुए थे और उन पर लकड़ी के खंभे खड़े किए गए थे। इसके पश्चिम की तरफ कमरों की एक कतार में एक पुरूष की प्रतिमा बैठी हुइ मुद्रा में पाई गई है।

घौलावीरा से उत्खनन के दौरान काले रंग के पालिशदार स्तम्भ प्राप्त हुए है जो किसी स्तम्भ युक्त बड़े भवन के अवशेष प्रतीत होते है। इसके बाद इस प्रकार के स्तम्भों का प्रयोग केवल मौर्यकाल में ही देखने को मिलता है।

आर्थिक जीवन
(Economic Life)

क षि प्रणाली :-
(Agriculture System)

सिंधु प्रदेश की भूमि आज की अपेक्षा पहले अधीक उपजाऊ थी। इस क्षेत्र की उर्वरता का विशेष कारण सिन्धु नदी में आने वाली बाढ़ें थी, जो इन मैदानों को उपजाऊ मिट्टी से भर देती थी। जिस तरह मिस्र निवासियों के लिए नील नदी एक वरदान थी वैसे ही इस क्षेत्र के निवासियों के लिए सिन्धु नदी थी। खाधान्नों का पर्याप्त मात्रा में उत्पादन इस सभ्यता के विकास का मुख्य आधार थी क्योंकि शहरी जनसंख्या के खाधान्न की आपूर्ति गाँवों से ही होती थी। खुदाई के दौरान विभिन्न क्षेत्रों से गेंहू उत्पादन के पर्याप्त प्रमाण मिले है। यहाँ दो किस्मों के गेंहू (क्लब गांठदार गैंहू तथा लघु आकार का गेंहू) की पैदावार की जाती थी। हडप्पा और मोहनजोदड़ों दोनों ही स्थलों से छोटे-2 दानों वाले जौ की खेती के प्रमाण मिले है। गैंहू तथा जौ की खेती के प्रमाण कालीबंगा से भी प्राप्त हुए है। गुजरात से रागी की फसल और छोटी ज्वार के प्रमाण मिले है। बालाकोट से बाजरा और ज्वार की खेती के प्रमाण मिले है। इनके अतिरिक्त खजूर, मटर, राई, तरबूज तथा तिल और सरसों की खेती के भी प्रमाण मिले है। तिल तथा सरसों का उत्पादन संभवतः तेल प्राप्ती के लिए किया जाता था। हडप्पा और मोहनजोदडों से धान की खेती का कोई प्रमाण नही मिलता लेकिन लोथल और रंगपुर से धान की खेती के प्रमाण प्राप्त हुए है। मोहजोदड़ों से सूती वस्त्र के अवशेष प्राप्त हुए है। जिससे सिद्ध होता है कि ये कपास की भी खेती करते थे। म दभांड और मूर्तियों से भी कपड़े की छाप क चिन्ह मिले है। क षि में प्रयुक्त होने वाले उपकरण कम संख्यों में प्राप्त हए है। संभवतः क षि करने का पुराना तरीका ही प्रचलन में था। क षि में लकड़ी के हल का प्रयोग किया जाता था। कालीबंगा से जुते हुए खेत के प्रमाण मिले है। हडप्पा सभ्यता के निवासी नहरों द्वारा सिचांई करते थे। पंजाब और सिंध की नदियों में अक्सर आने वाली बाढ़ो से खेती की सिंचाई की जाती थी। यद्यपि ब्लूचिस्तान और घौलावीरा से बड़े-बड़े जलाशयों के अवशेष प्राप्त हुए है। संभवतः इनका उपयोग सिचांई के लिए किया जाता होगा। अनाज पीसने के लिए चक्कियों और कूटने के लिए ओखलियों का प्रयोग किया जाता था। लोथल से चक्की के दोनों पाट मिले है, ऊपरी पाट में अनाज डालने के लिए एक छेद भी होता था। विभिन्न स्थलों से बड़े-2 घड़े भी मिले है। अनुमान है कि इनमें अनाज को सग्रंहित किया जाता था। हडप्पा से क षि-कर्म अतिरिक्त पशुपालन भी एक महत्वपूर्ण व्यवसाय था हडप्पाकालीन मोहरो पर अंकित बैलों से विदित होता है कि दो कोटि के बैल थे, प्रथम कोटि वाले बैल कूबड और बड़े सीगं वाले थे, द्वितीय कूबडरहित और छोटे सींग के बैल थे। अनेक मोहरों पर हाथी को भी चित्रित किया गया है। इससे प्रमाणित होता है कि इन्होंने हाथी को पालतू बना लिया था। बकरी, भैंस, गधे, ऊँट तथा हाथी की हड्डिया विभिन्न स्थलों से प्रचुर मात्रा में प्राप्त हुई है। ऊँट की हड्डियाँ कालीबंगा से प्राप्त हुई है। हडप्पावासियों के पालतु पशु-पक्षियों में कुत्ता, बिल्ली, सुअर, खरगोश, बन्दर और मुर्गा विशेष उल्लेखनीय है। भोजन के लिए जंगली जानवरों का शिकार भी किया

जाता था जिनमें कछुआ, साभर, चितकबरा हिरण और प्रियक हिरण (Hog Dear) शामिल थे, रनघुन्डई (ब्लूचिस्तान) और मोहनजोदडों से घोड़े के अस्थिपंजर के अवशेष प्राप्त हुए है। सुरकाटड़ा, लोथल और घौलावीरा से घौडे की हड्डियों के अवशेष प्राप्त हुए है। लेकिन घोडे की सम्पूर्ण अस्थियाँ अभी किसी स्थल से प्राप्त नही हुई है। घोडे से ये परिचित थे या नही यह विषय अभी विवादग्रसत/संदेहस्पद बना हुआ है। अनेक पशु, पक्षियों की मूण्यमूर्तियाँ तथा खिलौने भी मिले है, इनका भोजन के अतिरिक्त संभवतः कुछ का धार्मिम महत्व भी रहा हो।

हडप्पा सभ्यता के नगरीकरण को देखते हुए यह स्वाभाविक है कि आर्थिक ढांचे में उन द्वारा विकसित शिल्प उद्योग, तकनीकी तथा अन्यान्य व्यवसायों का विशेष महत्व था। इस सभ्यता की प्रौद्योगिकी शिल्प और कला की अपनी अलग विशेषता थी। यहाँ के निवासियों के विभिन्न धातुओं की जानकारी थी। हालांकि यह कांस्ययुगीन सभ्यता थी यद्यपि कांसे की बहुत कम वस्तुओं का पता चला है। तांबे का प्रयोग बहुतायात मात्रा में किया जाता था। इससे विस्त त पैमाने पर उपकरण (ताम्र निर्मित कुल्हाडियाँ, छेनियां, छूरियां, छोटी आरियां, तीर व भाले का अग्रभाग, मछली पकड़ने का कांटा और चाकू आदि) बनाए जाते है। तांबा तथा टीन को मिलकार कांसा तैयार किया जाता था। तांबा और कांस्य निर्मित बर्तन प्राप्त हुए है। मोहनजोदड़ो से प्राप्त कांस्य की न तकी की मूर्ति एक उत्क ष्ट उदाहरण है। ये धातु को गलाने की विधि से भी परिचित थे। मोहनजोदडों से ताँबे का गला हुआ एक ढेर भी प्राप्त हुआ है। धातुओं के गले हुए द्रव को सांचों में भरकर विभिन्न आकार दिए जाते थे। धातु के विभिन्न आक तियों के पशु-पक्षियों की मूर्तियों भी बनाई जाती थी। लोहे से अपरिचित थे, इससे निर्मित कोई भी वस्तु प्राप्त नही हुई है। मोहनजोदड़ो और हडप्पा से विस्त त पैमाने पर सौने के आभूषण प्राप्त हुए है, जिन्हें देखने से पता चलता है कि स्र्वणकारों ने अपने काम में काफी निपुणता हासिल कर ली थी। चांदी प्रचलन सौने की अपेक्षा ज्यादा था। चांदी के आभूषण और बर्तन बनाए जाते थे।

इस काल में धातु के अतिरिक्त पत्थर के भी उपकरण बनाए जाते थे जिनमें दरांती, खुरचनियाँ, बरमें तथा फलक आदि मुख्य थे। इन उपकरणों का प्रयोग मणिकारी, क षि, दस्तकारी और नक्काशी इत्यादि में किया जाता था। पत्थर की अनेक मूर्तियां भी विभिन्न स्थानों से प्राप्त हुई है। कला-कौशल के क्षेत्र में हडप्पा सभ्यता के लोगों की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि यह थी कि वे कीमती पत्थरों के मनके और आभूषण बनाने की कला से परिचित थे। हडप्पा तथा लाथल और चान्हूदड़ों से मनके बनाने की कार्यशालाँए मिली है। मनकों का व्यापार मसोपोटानिया के साथ विस्त त पैमाने पर होता था। सीपी (समुद्री शंख) का प्रयोग मनके, चूडियों और छोटी-2 सजावट की आक तियाँ बनाने में किया जाता था। इसके लिए कच्चा माल लोथल, बालकोट और कुतांसी से प्राप्त किया जाता था। म दभांड कला से भी हडप्पावासी अच्छी तरह परिचित थे। मिट्टी की अधिकाश वस्तुएं चाक पर बनाई जाती थी। सजावट के लिए बर्तनों को अलंक त किया जाता था। जिनमें ज्यामितिय डिजाइन, व क्ष तथा पशु पक्षियों की आक तियों, आडी-तिरछी रेखाएँ, तथा स्वास्तिक के डिजाइन प्रमुख थे। म दभांडों के अतिरिक्त मिट्टी की मूतियाँ, चूडियाँ, मनके, खिलौने तथा विभिन्न पशु-पक्षियों की मूर्तियों का भी निर्माण किया जाता था। विभिन्न स्थलों से प्राप्त अनेक विशाल भवनों को देखकर लगता है कि विस्त त पैमाने पर ईटों का निर्माण करने का भी उद्योग रहा होगा। खुदाई के दौरान घरों से तकुएँ और तकलियों की प्राप्ती से प्रकट होता है कि इनका प्रयोग वस्त्रों की कताई बुनाई में किया जाता था। मोहनजोदड़ों से दो ताम् पात्र सूती वस्त्र में लिपटे मिले है। लोथल से कुछ मुद्रा-छापों पर कपड़े के चिन्ह प्राप्त हुए है तथा कालीबंगा में कुछ म दभांडों के टुकड़ों पर भी वस्त्रों के चिन्ह मिले है। इस सम्यता के सभी स्थलों से सेलखड़ी से निर्मित वर्गाकार और आयताकार मोहरे प्राप्त हुई है। जिन पर लेख भी अंकित थे। मुद्राओं पर बैल, सिंह, हाथी, गैडें आदि पशु चित्रित थे। इनमें सर्वाधिक उल्लेखनीय पशुपति वाली मोहर है। बड़े पैमाने पर इन मोहरों की प्राप्ती इस ओर इंगित करती है कि इनका निर्माण एक विशेष व्यवसाय रहा होगा।

इस सभ्यता के नगरीकरण स्वरूप में व्यापार का विशेष योगदान रहा होगा। हडप्पा सभ्यता के प्रायः सभी नगर उन्नत उद्योगिक गतिविधियों के केन्द्र थे। जिनमें व्यापारी वर्ग न महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। व्यापारिक गतिविधियों में संलिप्त नगर नदी के किनारे, समुद्री तटों तथा मुख्य व्यापारिक मार्गो पर अवस्थित थे। विभिन्न प्रकार के कला-कौशलों से अवगत होने के कारण ये माल उत्पादन के कार्यो में संलग्न रहते थे। जिसके लिए कच्चा माल ये बाहर से प्राप्त करते थे। आन्तरिक व्यापार के अतिरिक्त विदेशों से भी इनके व्यापारिक संबध कायम थे।

आन्तरिक व्यापार में पत्थर और धातु के उपकरण दैनिक उपभाग की वस्तुएँ, कलात्मक वस्तुएँ, मोहरें, बाट, मनके, अनाज और कपास व अन्य उपभोग की वस्तुएँ शामिल थी। जिन्हें एक स्थान से उत्पादित कर दूसरे स्थानों पर वितरित किया जाता था।

जैसेः सूक्कूर से चकमक पत्थर और फलक प्राप्त कर इनके औजार और हथियार बनाए जाते थे। हडप्पा, मोहनजोदड़ो, कालीबंगा तथा लोथल विभिन्न कलात्मक वस्तु निर्माण के प्रसिद्ध केन्द्र थे। जहाँ से तैयार माल को अन्य नगरों और गाँवों में भेजा जाता था। चावल, कपास, बाट, मोहरे, सीपियो का समान, तांबे की वस्तुए, उपकरण और अनाज एक स्थान से दूसरे स्थानों पर नदी मार्गो द्वारा भेजे जाते थे। हडप्पा और मोहनजोदड़ों से प्राप्त अन्नागरों से यह स्पष्ट होता है कि विभिन्न क्षेत्रों मे एकत्रित अनाज को नदी मार्गो द्वारा यहाँ संग्रहित किया जात था, आन्तरिक व्यापार में सोना संभवतः दक्षिण भारत में , खासकर मैसूर से प्राप्त करते थे, यहाँ सोने का विशाल भण्डार था और और भी है। महाराष्ट्र से जुंबमीज तथा सौराष्ट्र और पश्चिमी भारत में गोमेद और मूंगा लाया जाता था। तांबा खेतड़ी से लाया जाता था।

हडप्पा सभ्यता के उन्नत आन्तरिक व्यापार के अतिरिक्त विदेशी व्यापार के भी प्रमाण मिलते है। इनका व्यापार मेसोपोटामिया के नगरों तक फैला हुआ था, जहाँ हडप्पा युग की दो दर्जन से भी अधिक मोहरें प्राप्त हुई है। हडप्पा क्षेत्र से भी मेसोपोटानिया की बेलनाकार मोहरें मिली है। मोहरों के अतिरिक्त कीमती पत्थर बाट और मूण्यमूर्तिया इत्यादि भी मिली है। पश्चिमी एशिया के साथ व्यापार के अधिक पुरातातविक प्रमाण नही मिलते है। मेसपोटानिया साहित्य में इस बात का उल्लेख है कि ऊर (मेसोपोटानिया का शहर) के सौदागरों के विदेशी व्यापारियों से व्यापारिक संबंध थे। इस संदर्भ में तिलमुन या दिलमुन, मगन और मेलुहा के नाम उल्लेखनीय है। मेसापोटानिया के सम्राट सरगॉन (2350 ई.पू.) का कहना था कि दिलमुन, मगन और मेलुहा के जहाज उसकी राजधानी में लांगर डालते थे। उपरोक्त तीनों नामों का विद्वान हडप्पा के नगरों से जोड़ते है। दिलमुन अधिकांशतः फारस की खाडी में स्थित बकरैन द्वीप के नाम से जान जाता है। ओमन अथवा दक्षिण अरब का कोई दूसरा भू-भाग मगन कहलाता है। मेलुहा का संबध भारत और मुख्यतः सिन्धु क्षेत्र तथा सौराष्ट्र से जोड़ा जाता है। हडप्पाकालीन मनकें, हाथी दाँत से निर्मित कलात्मक वस्तुएँ, तांबे से निर्मित वस्तुएँ और सीपी से बनी हुई चीजें इन देशों का निर्यात करते थे। मेसोपोटामिया के नगर निपुर से हडप्पाकालीन म ण्यमूर्तियाँ तथा बाट मिले है। व्यापारी निर्यात के अलावा आयात भी करते थे। आयात की जाने वाली वस्तुओं में कीमती धातुएँ प्रमुख थी। जिनमें मुख्य निम्नस्थानों से आयात की जाती थी। जैसे :- अफगानिस्तान और कर्नाटक से सोना, अफगानिस्तान और ईरान से चांदी, ईरानमध्यएशिया और अफगानिस्तान से टिन, नीलम अफगानिस्तान में बदख्वर्गो से, सेलखड़ी ब्लूचिस्तान से आयात किए जाते थे। अफगानिस्तान से कीमती पत्थरों का व्यापार करने के लिए हडप्पा व्यापारियों ने शोर्तघइं नामक स्थान पर अपनी बस्ती बसा रखी थी। यह व्यापार जल तथा स्थल दोनों मार्गो से होता था। समुद्री व्यापार लोथल, सुरकोटडा और बालाकोट जैसे तटीय नगरों से होता था।

इस काल की नाप-तौल प्रणाली में समरूपता देखने को मिलती है। माप-तौल की जो प्रणाली हडप्पा और मोहनजोदड़े में थी, वही अन्य क्षेत्रों में भी उसी रूप में लागू थी। इनकी नाप-तौल प्रणाली दो के अंक पर आधारित थी। जैसेः 1,2,4,8,16,64 तथा बाद में 10 और 16 के गुणा होने वाली प्रणाली भी प्रयोग में लाई जाने लगी। माप में 37.6 सैंटीमीटर की एक फूट की इकाई थी। तौल ज्यादातर सेलखडी पत्थर के धनाकार (Square) बने होते थे। विभिन्न स्थलों से प्राप्त बहुतायात मोहरें और मुद्रांकन इनके उन्नत व्यापार दर्शाते है। हडप्पा और मोहनजोदड़ों से प्राप्त मोहरों पर जहाज और नावों के चित्र अंकित है। लोथल से पकी मिट्टी से बना जहाज का नमूना मिला है जिसमें मस्तूल के लिए एक लकड़ी और उसे लगाने के लिए एक छेद बना है। लोथल से गोदयार्ड के भी प्रमाण मिले है। इससे प्रमाणित होता है कि परिवहन के साधनों में नाव और जहाज प्रमुख थे। लोथल, रंगपुर और बालाकोट नगरों में अनेक बन्दरगाहें थी जहाँ इनकी व्यापारिक गतिविधियाँ विदेशों में होती थी। आन्तरिक व्यापार में बैलगाडियों परिवहन का मुख्य साधन थी। विभिन्न क्षेत्रों से पकी मिट्टी के बने बैलगाडियों के नमूने प्राप्त हुए है।

सामाजिक जीवन एवं सामाजिक स्तरीकरण
Social Life & Social Stratification

हडप्पा सभ्यता की लिपि को अभी तक पढ़ा नही जा सका है इसलिए इसके सामाजिक स्तरीकरण पर अधिक जानकारी प्राप्त नही की जा सकी है। लेकिन उत्खनन से प्राप्त पुरातातविक साक्ष्यों के आधार पर इस काल के समाज की रूपरेखा स्पष्ट की जा सकती है। उत्खनन से प्राप्त अनेक साक्ष्य सामाजिक वर्गीकरण को दर्शाते है। जिससे स्पष्ट होता है कि समाज के विभिन्न वर्गो में स्तरीकरण और जटिलता विकसित हो गई होगी। बी॰वी॰ लाल ने कालीबंगा में उत्खनन के बाद दर्शाया कि यहाँ पर तत्कालीन समाज तीन भागों में विभजित था। पुजारी वर्ग, जो उस काल का शासकीय वर्ग था वह गढ़ी पर निवास करता था।

किसान तथा व्यापारी वर्ग निचले शहर में निवास करता था क्योंकि यहाँ से कई आवासीय भवनों से अनाज संग्रहित करने वाले बड़े-बड़े म दभांड़ तथा मुद्रांक इत्यादि प्राप्त हुए है। तीसरा वर्ग जो कारीगर अथवा श्रमिक वर्ग था। वह नगर की सुरक्षा प्राचीर से बाहर निवास करता था। इस सभ्यता के आवासीय भवनों के आकार और बनावट मे अनेक असामानताएँ विधमान थी। शिलपियों और दस्तकारों में विभिन्नता और विशिष्टता थी। समाज में फैली इन विभिन्नताओं के आधर पर लोगों की वेश-भूषा, खान-पान, व्यापार, शिल्प कलाएँ और विभिन्न सामाजिक समूहों के प्रति जानकारी प्राप्त होती है।

मोहनजोदड़ों के गढ़ी क्षेत्र से भी पुजारी वर्ग के निवास करने के प्रमाण मिलते है। यहाँ पर स्नानागार के आसपास कमरे बने हुए थे जहाँ स्नान के बाद पुजारी अपने वस्त्र बदलते थे। यहीं से एक मुख्य पुजारी के भवन के भी अवशेष प्राप्त हुए है। अन्नागार, स्नानागार के पश्चिम में स्थित जहां दुर्ग के लोग निवास करते थे। निचले शहर में व्यापारी और क षक वर्ग रहता था। यही पर दो-दो कमरो वाले गरीब वर्ग के आवासीय भवन भी मिलें हैं। इस प्रकार गढ़ी या दुर्ग क्षेत्र में पुजारी या शासकीय वर्ग का निवास था तथा दुर्ग के बाहर गरीब वर्ग निवास करता था। इन्हें कर के रूप में अन्न देना पड़ता था जो यहाँ बड़े-बड़े अन्नागारों में इक्कठा किया जाता था। हडप्पा से भी इसी तरह के अवशेष प्राप्त हुए है। घौलावीरा में गढ़ी, मध्यनगर तथा निचले नगर के अलग-2 प्रमाण प्राप्त हुए है। जैसे : अभिजात वर्ग गढ़ी में, व्यापारी और क षक मध्य शहर में तथा गरीब वर्ग निचले शहर में निवास करता था। समाज में इसी प्रकार को वर्गीकरण के प्रमाण हमें अन्य स्थलों से भी प्राप्त होते है।

हडप्पाकालीन विभिन्न स्थलों से जैसे मोहनजोदड़ों, हडप्पा तथा अन्य नगरों से उत्खनन के दौरान अनेक नरकंकाल के अवशेष प्राप्त हुए है। जिनके अध्ययन से पता चलता है कि मुख्य रूप से यहाँ के निवासी चार जातियों में विभक्त थे :

(i) **प्रोटो - आस्ट्रेलायड अथवा काकेशियन** (Proto Anstroloid)

(ii) **भूमध्यसागरीय** (Mediterranian)

(iii) **मंगालियन** (Mongoloid)

(iv) **अल्पाइन** (Alpine)

इससे यह अन्दाजा लगाया जा सकता है कि इस सभ्यता में मिश्रित जातियों के लोग सम्मिलित थे। जिनमें यूरोप, मध्यएशिया की नस्लों के साथ-साथ मंगोल प्रजाति के लोग भी सम्मिलित थे। हाल में किए गए शोध कार्यो से पता चलता है मोहनजोदड़ों मे आजकल के सिंघी जाति के लोग निवास करते थे जबकि हडप्पा में आज के पंजाब जैसे तथा लोथल में आज के गुजरात के लोगों समान ही लोग सिन्धु सभ्यता के समय में निवास करते थे।

इस काल की शिल्प कला और पकी मिट्टी की बनी मूर्तियों के अध्ययन से यहाँ के निवासियों के पहनावें का पता चलता है। पुरूष और स्त्रियाँ शरीर के निचले भाग पर एक वस्त्र लपेटते थे। पुरूष और महिलाएँ दोनो लंबे बाल रखते थे, स्त्री और पुरूष दोनों आभूषण धारण करते थे। हडप्पावासी शाकाहारी और मांसाहारी भोजन का सेवन करते थे। विभिन्न क्षेत्रों से मिट्टी की बनी अनेक मात देवी की मूर्तियाँ प्राप्त हुई है। धरती की उर्वरता से मात देवी का संबध था और लोग इसकी पूजा करते थे। मोहरों से मिलने वाले प्रमाणों में सबसे प्रसिद्ध देवता की पहचान आदि-शिव के रूप में की गयी है। एक मोहर पर एक योगी ध्यानमग्न मुद्रा में बैठा हुआ है, जिसके सिर पर सींग का मुकुट है और वह बकरी, हाथी, शेर और म ग से घिरा हुआ है। इसकी पहचाने पशुपति के रूप में की गयी है। अनेक हडप्पा क्षेत्रों से लिंग और योनि प्राप्त हुए है। संभवतः शिव हडप्पा का सबसे महत्वपूर्ण देवता था। कई मोहरों पर पीपल और कुछ अन्य व क्षों का चित्रण है। कई पर संयुक्त पशुओं का चित्रण भी है। जिनमें एक श्र ंगी, सांड और हाथी या मनुष्य और व्याघ्र शामिल है ये सभी अपने-2 मत के प्रतीक लगते हैं। कालीबंगा और लोथल से अनेक अग्निवेदियाँ प्राप्त हुई है, जिनमें पशुओं की हड्डियाँ और राख है। यह स्थान पूजा-क्रिया का केन्द्र रहा होगा। इनसे पता चलता है कि हडप्पा सभ्यता में भिन्न-2 प्रकार के धर्मो का आचरण होता था। नगरों के समीप प्राप्त कब्रिस्तानों से हडप्पावासियों के म तक संस्कारों की जानकारी मिलती है। शव साधारणतः उत्तर-दक्षिण दिशा में दफनाएं जाते थे। कब्र में मिट्टी के बर्तन, गहनें घर का सामान और खाद्य साम्रगी भी रखे हुए प्राप्त हुए है। कब्रों पर किसी प्रकार का कोई स्मारक प्राप्त नहीं हुआ जैसा कि मिस्र तथा मेसोपोटानिया से मिला है।

कुछ बड़ी इमारतें सामूहिक पूजा अथवा धार्मिक संस्कारों की ओर संकेत करती है जैसे हडप्पा का विशाल स्नानागार। नगर बड़े पैमाने पर प्रोद्योगिकी, शिल्प और कला के केन्द्र थे। समाज के अधिकतर लोग क षि कार्य से जुड़े हुए थे लेकिन दस्तकारी

समूहों के पत्थरों के कारीगर, कुम्हार, सुनार, मणिकार, कांसे और तांबे का कार्य करने वाले, राजमिस्त्री, मिस्त्री, मोहर बनाने वाले मूर्तिकार, चूडियाँ बनाने वाले और नाव बनाने वाले शिल्पी वर्ग इस समाज में मौजूद थे।

राज्य सरंचना :-
(State Structure)

हडप्पा सभ्यता की राजनैतिक सरंचना के में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं हुई, क्योंकि उनकी मुद्रांकों पर अंक्ति लिपि अभी तक पढ़ी नही जा सकी है। सिन्धु सभ्यता का क्षेत्र अत्यंत व्यापक था लेकिन नगर-नियोजन और बस्तियों के निर्माण में किंचित् क्षेत्रीय अन्तर होते हुए भी प्रायः एकरूपता देखने को मिलती है। पात्र-परम्परा, उपकरण निर्माण, बाट एवम् माप-तौल प्रणाली आदि के सन्र्दभ में मानकीकरण एवम् समरूपता देखने को मिलती है। हडप्पा मोहनजोदड़ों तथा कालीबंगा आदि क्षेत्रों से पश्चिम में दुर्ग तथा पूर्व दिशा में नगर की स्थिति से हडप्पा सभ्यता में एक सुद ढ़ प्रशासनतंत्र के अस्तित्व के संकेत मिलते है। इस प्रशासन के नियंत्रण का क्या स्वरूप था, क्या छोटे-छोटे राज्यों का गठन हो चुका था या समस्त सभ्यता एक विशाल साम्राज्य के रूप में विधमान थी। इनके बारे में विद्वानों ने अपने अलग-अलग मत रखे है। प्रत्यक्ष प्रमाणों का अभाव होते हुए भी यह अनुमान करना संभवतः बहुत अंसगत नही होगा कि सिन्धु सभ्यता की प्रशासनकि व्यवस्था में धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका रही होगी अधिकांश विद्वानों के अनुसार सिन्धु सभ्यता का प्रशासन हडप्पा तथा मोहनजोदड़ो नामक नगरों की दो राजधनियों से होता था। हंप्र महोदय का मत है कि सिन्धु सभ्यता का प्रशासन राजतन्त्रात्मक पर आधारित ना होकर जनतन्त्रात्मक था; उनके अनुसार केन्द्रिय सता का विकेन्द्रीकरण हो चुका था कदाचित केन्द्रीय शासन की ओर से अनेक पदाधिकारी भिन्न-भिन्न नगरों में शासन करते थे। मैं के महोदय का अनुमान है कि इस सभ्यता की दो राजधनियों थी ताकि सम्पूर्ण प्रदेश की शासन व्यवस्था सुव्यवस्थित रूप से चल सके। उनके अनुसार उतर में हडप्पा तथा दक्षिण में मोहनजोदड़ों राजधानी के रूप में स्थित थे। दोनों नगरों में दुर्ग के अवशेष प्राप्त हुए है जहाँ पर उच्चाधिकारी निवास करते थे। स्टुअर्ट पिगॅट महोदय का विचार है कि सिन्धु सभ्यता के प्रशासन का संचालन हडप्पा तथा मोहनजोदड़ों में स्थित दो राजधानियों से उसी प्रकार होता रहा होगा जैसा बाद में कुषाण काल के दौरान उतर में पेशावर तथा दक्षिण में मथुर से प्रशासन का संचालन होता था। जैकोबसन नामक विद्वान के अनुसार सिन्धु सभ्यता एक प्रारंभिक राज्य का स्वरूप था। जबकि शरीन रत्नागर इस एक साम्राज्य मानती है। ये दोनों विद्वान अपने विचारों को मध्य तथा पश्चिमी एशिया के क्षेत्रों की सभ्यताओं को आधार मानकर अपने मत प्रकट करते है।

बी॰बी॰ लाल तथा पौशल सिन्धु सभ्यता के अलग - अलग राज्यों तथा उनकी राजधानियों का अनुमान लगाते है। बी॰बी॰ लाल के अनुसार जिस प्रकार छठी श॰ई॰पू॰ का समय महाजनपदों का उदय था संभवतः उसी तरह का स्वरूप सिन्धु सभ्यता का भी रहा हो। पौशल महोदय के अनुसार इस सभ्यता का पाकिस्तान स्थित पंजाब के आसपास का उतरी क्षेत्र एक अलग राज्य था और हडप्पा उसकी राजधानी थी। इसी तरह दक्षिण स्थित क्षेत्र सिन्ध की राजधानी मोहनजोदड़ो रही होगी। गुजरात स्थित लोथल प्रमुख नगर या राजधानी था जबकि राजस्थान स्थित कालीबंगा तथा पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उतर प्रदेश क्षेत्रों की राजधानी संभवतः राखीगढ़ी रही होगी। परन्तु मात्र क्षेत्रों तथा उनके बड़े शहरों के आधार पर पूर्ण रूप से यह भी कहा जा सकता है कि क्या सिन्धु सभ्यता एक साम्राज्य थी, अर्थात् छोटे-छोटे राज्यों वाला इसका कोई स्वरूप था। इस काल में कोई राजा या शासक था यह भी कहना कठिन है। मोहनजोदड़ों से प्राप्त पत्थर की एक पुजारी की प्रतिमा के आधार पर कुछ विद्वानों का अनुमान है। कि पुजारी वर्ग शासक रहा होगा तथा विशाल स्नानागार के आधार पर भी पुजारी वर्ग के राज्य कार्य प्रमुख भूमिका होने पर भी विद्वानों ने अपने मत दिए है।

कुछ विद्वानों ने मोहनजोदड़ों के गढ़ी क्षेत्र में स्थित एक बड़े स्तम्भों वाले महल की संज्ञा दी है लेकिन यह मत सर्वमान्य नहीं है क्योंकि उत्खनन के दौरान कोई शाही मकबरा प्राप्त नही हुआ है जैसे कि पश्चिमी एशिया तथा मिश्र की सभ्यताओं में प्राप्त हुए है। परन्तु यदि हम राजाओं , महलों, मकबरों इत्यादि के होने का नकार दे तो क्या यह मान सकते है कि किसी प्रकार के मिलि-जुली व्यवस्था का प्रशासन रहा होग या पूर्णतयः धर्मनिरपेक्ष प्रशासन था। इन सभी प्रश्नों का उतर तो पूर्ण रूप से तभी मिल पाएगा जबकि सिन्धु सभ्यता की लिपि को पढ़ लिया जाएगा और विभिन्न क्षेत्रों से होने वाले उत्खननों से कुछ और महत्वपूर्ण साम्रगी प्रकाश में आएगी। लेकिन श्री लाल के विचार ही अभी ज्यादा उपर्युक्त प्रतीत होते है कि जिस प्रकार छठी शताब्दी के आस-पास भारत सोलह माहजनपदों में विभाजित था उसी प्रकार सिन्धु सभ्यता के भी अलग-अलग राज्य तथा उनके प्रमुख शहर या राजधानियाँ थी।

धर्म :
(Religion)

हड़प्पा सभ्यता के निवासी किसकी पूजा करते थे, यह प्रश्न विद्वानों के बीच चर्चा का विषय रहा है। लिखित स्त्रोतों के अभाव में उनकी धार्मिक मान्याताओं को समझने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है। लेकिन पुरातातविक साम्रगी के आधार पर इनके लौकिक और परलौकिक विश्वासों के बारे में जानकारी मिलती है। ऐसा प्रतीत होता है कि बहुदेववादी होते हुए भी सिन्धु निवासी एक ईश्वरीय सता से परिचित थे। इसी सता को विश्व कली स जनात्मक शक्ति समझते थे। इसके प्रतीक के रूप में उन्होंने परम पुरूष और परम नारी के द्वन्द्वात्मक धर्म का विकास किया था।

पूजा विधि :
(Worship)

विभिन्न सिन्धु क्षेत्रों से स्नानकुण्ड, स्नानागारों, कुओं और इमारतों के अस्तित्व से अनुमान लगाया जाता है कि पूजा शुद्धि के लिए आवश्यक मानी जाती थी। मोहनजोदडो की कई बड़ी इमारतों मन्दिरों के रूप में मानी गयी है। क्योंकि ज्यादातर पत्थर की मूर्तिया इन्हीं इमारतों से मिली है। मोहनजोदडो के नीचले नगर में एक बडी इमारत मिली है। इसमें एक द्वार तथा मंच पर 16-1/2 इंच ऊँची एक पाषाण शिल्प क ति मिली है। इसमें घुटनों पर हाथ रखे हुए एक पुरूष बैठा है, जिसके चेहरे पर ढाढी हैं इसलिए विद्वानों ने इस इमारत को मन्दिर माना है।

हडप्पा के पवित्र स्थलों में संभवतः विशाल स्नानग ह सबसे प्रसिद्ध है इसके चारों ओर नीचे जाने के लिए सीढियां बनी हुई हैं तथा चारों ओर पुरोहितों के रहने के कमरे बने हुए हैं बाद के काल में भारत में इस प्रकार के धार्मिक स्थलों का निर्माण होता रहा है। इस विशाल स्नानागार के समीप एक अन्य विशाल इमारत (230x78 फुट) मिली है जिसे विद्धानों ने मुख्य पुरोहित का निवास स्थल माना है। इस प्रकार किले बंद क्षेत्र में एक सभागार मिला है इसके पश्चिम की ओर एक साथ कई कमरे बने मिले हैं। जिनमें एक में एक बैठे हुए योगी की मूर्ति मिली है। इसे भी धार्मिक इमारत के रूप में देखा गया है।

पूज्यनीय वस्तुओं के प्रमाण के तौर पर हमें हडप्पा की मोहरें और पक्की मिट्टी की मूर्तियां विभिन्न स्थानों से प्राप्त हुई हैं। मुहरों से मिलने वाले प्रमाणों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण देवता की पहचान आदि शिव के रूप में की गयी है। कई मोहरों पर एक देवता, जिसके सिर पर सींग का मुकुट है, योगी की मुद्रा में बैठा हुआ है। इसके चारों और बकरी, हाथी, शेर तथा म ग खड़े हुए हैं। मार्शल ने इसे पशुपति माना है। कई स्थलों पर देवता के सींग के बीच से एक पौधा उगता दिखाया गया है। एक अन्य मोहर पर योगी नंगे बदन पीपल की शाखाओं के बीच खड़ा है। एक उपासक उसके सामने झुका हुआ है इसमें योगी के साथ सर्प की आक ति भी है। बाद में इसे शिव का रूप मान लिया गया । अनेक हडप्पाई स्थलों से शिव लिंग भी प्राप्त हुए हैं। इन प्रमाणों के आधार पर विद्धानों ने शिव को हडप्पा का सबसे प्रमुख देवता माना है।

मात देवी :-
(Mother goddess)

अनेक हडप्पा बस्तियों से काफी मात्रा में पक्की मिट्टी की मात देवी की मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। अनेक मूर्तियां सिरों पर पंखे के रूप में मुकुट पहने हुए हैं। कभी-कभी उनके साथ शिशु भी दिखाए गए हैं। मात देवी की मूर्तियों को गर्भधारण के विभिन्न रूपों में भी चित्रित किया गया है। इन प्रमाणों से हडप्पा सभयता में अभिजनन पंथ के प्रति विश्वास और मात देवी की पूजा के प्रमाण मिलते है।

व क्ष आत्माएं :-

संभवतः ये लोग व क्ष आत्माओं की भी पूजा करते थे। कई जगत व क्षों की शाखाओं कें बीच से झांकती हुई आक तियां दिखाई गयी है। विद्वानों के अनुसार ये आक तियां व क्ष आत्माओं को दर्शाती है। कई चित्रों में अराधक पेड़ के सामने खड़े दिखाए है, कई स्थानों पर किसी जानवर को व क्ष के समक्ष दर्शाया गया है। एक स्थान पर व क्ष के सामने 7 मानवीय आक तियां खड़ी दर्शायी है और व क्ष के अन्दर एक आक ति जिसके सिर पर सींग है दिखायी गई है। यह संभवतः शिव की है। पीपल की पूजा यहां हजारों वर्षो से हो रही है। कहीं कहीं शिव और पीपल की पूजा साथ-साथ होती है। सात आक तियां प्रायः 7 महान ऋषियों अथवा मिथ्या की सात जनकी मानी गयी है।

प्रतीक-पूजा :-

अनेक स्थलों पर सींग स्तम्भा और स्वास्तिक के चित्र प्राप्त हुए है संभवतः इनका धार्मिक महत्व था। इनकी पूजा होती थी और शायद ये अन्धविश्वास के प्रमाण थे। मुदालों पर अंकित कुछ सतम्भों के ऊपर दीप-धूप जलते दिखाए गए है। खुदाई में अनेक स्वस्तिक चक्र तथा क्रास के चिन्ह अंकित मिलते है। हिन्दू धर्म में स्वास्तिक आज भी शुभ और पवित्र आज भी शुभ और पवित्र माना जाता है। संभवतः इन भावना की शुरूआत हड़प्पा काल में हो चुकी थी।

लिंग व योनि पूजा :-

हडप्पा और मोहनजोदड़ो से असंख्य लिंग और योनि प्राप्त हुई है। जो साधारणतः पत्थर, लाल पत्थर अथवा सीप के बने होते थे। संभवतः इन्हें कल्याणकारी माना जाता था। हडप्पावासी इन्हें सदा अपने हाथ ही रखते है। मैके महोदय का मानना है कि लिंगो के नीचले हिस्से धिसे हुए है इसलिए संभवतः ये कूटने पीसने के उपकरण थे। इन्ही के अनुसार जो बहुसंख्यक छल्ले मिले है। वे योनियां नही है। लेकिन भारत मे आज भी अनेक स्थानों पर लिंग और योनि की पूजा साथ-साथ होती है। जो उस काल में भी प्रचलित थी।

जानवरों की पूजा :-

हडप्पा लोग कई प्रकार के जानवरों की भी पूजा करते थे। इसके प्रमाण मुहरों तथा पक्की मिट्टी की मूर्तियों से मिलते है। चन्हूदड़ों से प्राप्त एक मुहर ने लिंग बाहर किए हुए एक सांड एक झूकी हुई मानव आक ति के साथ संभोग कर रहा है। यह निश्चित रूप से अभिजनन के प्रति विश्वास का सूचक है। मुहरों पर ज्यादातर बैल चित्रित किया गया है। संभवतः वर्तमान सभ्यतां के बैलों एवम् गायों के प्रति आदर के भाव हड़प्पा काल में रहे है।

मुहरों पर विभिन्न समष्टि आक ति वाले जानवर भी अंकित किए गए है। मुहरो पर ऐसा जानवर रूप जीव मिलते है जिनका अगला हिस्सा मानव जैसा है, पिछला शेर जैसा है।इसी प्रकार भेड़ो, बैलों, तथा हाथियों की मिली जुली समष्टि प्राप्त हुई है। ये निश्चय ही पूज्नीय आक तियां रही होगीं। हडप्पा की मुहरों पर एक अन्य महत्वपूर्ण जानवर एक चित्रित Unicom मिलता है। यह एक घोड़े जैसा जानवर है जिसके सिर के बीय एक सींग है। सभंवतः इसकी भी उपासना की जाती होगी।

अग्नि-वेदिका :-

प्रतीत होता है कि कालीबंगा और लोथल के हडप्पा वासी अलग-अलग धार्मिक संस्कारों के अनुयायी थे। कालीबंगा के किले में उभरी ईटों के मंच मिले है जिनके ऊपर अग्नि-वेदियां बनी हुई है। जिनमे पशुओं की हड्डियां तथा राख मिली है, इस स्थान पर भी कुआं और स्नानग ह मिले है। संभवतः यह पूजा स्थल रहा होगा जहां पशुओं की बलि धार्मिक पवित्रीकरण तथा अग्नि की पूजा की जाती रही होगी। निचले नगर में भी कई मकानों में अग्नि वेदी मिली हैं। लोथल से भी अनेक अग्नि वेदिकाएं प्राप्त हुई है ये प्रमाण महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इनसे यह संकेत मिलता है कि विभिन्न पात्रों के हडप्पा निवासी अलग-अलग धार्मिक रीतियों के अनुयायी थे। तथा वैदिक युग के धर्म में अग्नि पूजा का विरोध का विशेष महत्व था। वैदिक काल में आर्य भिन्न प्रकार के लोग थे, कालीबंगा से प्राप्त प्रमाणों से पता चलता है कि आर्यो ने हड़प्पा क्षेत्रों मे बसने के बाद हड़प्पावासियों की ही धार्मिक रीतियों को अपनाया। उपर्युक्त विवरण से यह संकेत मिलते है कि हड़प्पा सभ्यता के भिन्न भिन्न प्रकार के धर्मो का आचरण प्रचलित था।

पतन/ह्रास
Decline

पुरातत्ववेता पिछले कई दशकों से इस अध्ययन में कार्यरत है कि हडप्पा सभ्यता का विघटन कैसे हुआ। इनके अनुसार 1900-1700 ई.पू. के मध्य इस सभ्यता के नगरों का स्वरूप बिगड़ने लग गया था। क्योंकि इस काल में पक्की ईटों के योजनाबद्ध तरीके से घर बनने बंद हो गए, औद्योगिक गतिविधियाँ समाप्त हो गई, मोहरे बननी बंद हो गई इसके अतिरिक्त शहरों से जनसंख्या का पलायन शुरू हो गया। पुरातत्ववियों को मिले ये सभी प्रमाण इस सभ्यता के विघटन की ओर संकेत करते है। विद्वानों ने इस विषय में अपने अलग-अलग मत प्रस्तुत किए है।

गोर्डन चाइल्ड और मार्टिन व्हीलर के अनुसार इस सभ्यता का विनाश आर्यो के आक्रमण के कारण हुआ। आर्य अफगानिस्तान के रास्ते से आए, उन्होंने उतर-पश्चिमी भारत पर आक्रमण किया और प्राचीरों वाले नगरों को नष्ट कर दिया। अनेक भारतीय साहित्यिक सूत्रों के अनुसार यह घटना 1500 ई.पू. में घटित हुई। अप्रत्यक्ष रूप से इसी तरह के साक्ष्यों के सकेत हडप्पा

और मोहनजोदड़ो से पाए जाते है और उन्हें ऋग्वेद में वर्णित कथाओं और पात्रों से जोड़ा जाता है। ऋग्वेद में आर्यो के देवता इन्द्र का 'पुरन्दर' कहा गया है अर्थात् किलों को नष्ट करने वाला। यानि हडप्पा में जो किले थे उन्हें आर्यो ने नष्ट किया ऋग्वेद में एक स्थान पर 'हरियूपिया' स्थान का जिक्र है। व्हीलर ने इसे हडप्पा से जोड़ा है। इनके अनुसार आर्यो में इस जगह युद्ध लड़ा और आक्रमण कर इसे जला कर नष्ट कर दिया। अनेक विद्वान इस सिंद्धान्त से सहमत नही है। उनके अनुसार हडप्पा सभ्यता के ह्रास का अनुममित समय 1800 ई.पू. माना जाता है। इसके विपरीत आर्य यहाँ 1500 ई.पू. में आए। दूसरा हडप्पा और मोहनजोदड़ों से किसी सैन्य आक्रमण का कोई साक्ष्य नही मिला है। मोहनजोदड़ों की सड़कों पर जो मनुष्यों के शव पडे मिलने का जो साक्ष्य है वह आसपास की पहाडियों से आए लुटेरों के हमलों से हो सकता है।

मार्शल और मैके ने अपने अध्ययन के बाद यह टिप्पणी की थी कि सिन्धु नदी में बार-बार आने वाली भंयकर बाढ़े इन महानगरों के विनाश के लिए उतरदायी थी। मोहनजोदड़ों से मकानों और सड़कों पर गाद कीचडयुक्त मिट्टी भरी पड़ी थी। बाढ़ आने के बाद यहाँ के निवासी पुराने मलबे के उपर फिर से मकान बना लेते थे। खुदाई के दौरान पता चला कि 70 फुट गहराई तक मकान बने हुए थे। बार-बार आने वाली बाढ़ों से परेशान होकर नगरवासी कही ओर पलायन कर गए। बाद में आर॰ एल॰ रायकस/ रेइक्स ने 1965 में अपने लेख में स्पष्ट किया कि इस सभ्यता के पतन का कारण भंयकर बाढ़ थी, जिससे तीस फुट तक पानी नगरों में भर गया था। इन्होंने आगे बताया कि बाढ़ के साथ भूंकप भी आया। जिससे नदी का मार्ग भी अवरूद्ध हो गया और यह सभ्यता नष्ट हो गयी। इनके अनुसार बालाकोट, सुलकागेदौर और सतकान्कोह जो समुद्र तट पर स्थित थे, भूकम्प के कारण जमीन ऊपर उठने से समुद्र तट से दूर हो गए, जिससे व्यापारिक गतिविधियाँ प्रभावित हुई और इस सभ्यता का विनाश हो गया लेकिन पुरात्ववियों ने इनके मत का कडा विरोध किया। आलोचको के अनुसार यदि भूकंप से नदी का मार्ग अवरूद्ध हो गया होता तो कुछ समय बाद जल के दबाव से टूट भी जाता। लेकिन ऐसा हुआ होगा इसका कोई प्रमाण नही मिला है।

सर व्हीलर, पिगॉट महोदय और डी.पी. अग्रवाल तथा अन्य विद्वान इस सिंद्धात के समर्थक थे कि हडप्पाई क्षेत्र की जलवायु में शुष्कता बढ़ने के कारण और हाकड़ा क्षेत्र (घग्घर नदी) के सूखने के कारण इस सभ्यता का ह्रास हुआ। इस क्षेत्र की जलवायु आग के मुकाबले काफी नम या गीली थी लेकिन दूसरी शताब्दी ई०पू० के मध्य इसकी जलवायु शुष्कता बढ़ रही थी। जिस कारण इस अर्ध-शुष्क क्षेत्र पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा होगा, जैसे क षि की पैदावार में कभी हुई जिसका सीधा असर नगरीय अर्थव्यवस्था पर भी पड़ा। इसके साथ यह तर्क भी दिया जाता है कि इन आन्तरिक परिवर्तनों के कारण इस क्षेत्र के नदी मार्गो पर भी असर पड़ा। इनके मत का पुरात्तवियों ने समर्थन नही किया क्योंकि एक तो यह कम सूचनाओं पर आधारित हो और जिनके स्पष्ट परिणाम नही निकाले गए थै। इसके अतिरिक्त घग्घर नदी के सूखने का काल अभी निर्धारित नही हो सका है।

फेयर सर्विस ने हडप्पा सभ्यता के ह्रास के लिए पारिस्थितकी असंतुलन को मुख्य कारण माना हैं उन्होंने हडप्पा नगरों मे निवास करने वाली जनसंख्या की गणना की और जनसंख्या की खाद्य जरूरतों का आकलन किया। इनके अनुसार गाम्रीण जनसंख्या अपनी उपज की लगभग 80% खपत स्वंय करते थे और 20% मण्ड़ियों में बेचते थे। यदि क षि का सही प्रतिमान पहले भी विद्यमान रहा होता तो मोहनजोदड़ो जैसे नगरों का, जिनकी जनसंख्या करीब 35 हजार थी, खाद्यान्न आपूर्ति के लिए बड़ी संख्या में ग्राम निवासियों की जरूरत थी। इनके अनुसार इन अर्ध शुष्क क्षेत्रों का पर्यावरण असुंतलन इसलिए बिगड रहा था क्योंकि इन क्षेत्रों में मनुष्यों और मावेशियों की आबादी अपर्याप्त जंगलों, खाद्यान्न और ईधन के स्त्रोतों का तेजी से खत्म कर रही थी। इन क्षेत्रों की सीमित उत्पादन क्षमताएँ निवासियों के लिए पर्याप्त नही थी। धीरे -धीरे जंगल और घास के मैदान लुप्त होने के कारण बाढ़ अधिक आने लगी और अधिक सूखा पड़ने लगा। जीविका के मूलभूत आधार नष्ट होने के कारण यहाँ की अर्थव्यवस्था पर भी इसका अनुकूल प्रभाव पड़ा। इसलिए यहाँ के निवासी उन क्षेत्रों की ओर पलायन करने लगे जहाँ पर्यावरण असंतुलन का यह सिंद्धांत मानने में भी कुछ कठिनाइयाँ है जैसे :- हडप्पा जनसंख्या की जीविका संबधी जरूरतों की गणन अल्प सूचनाओं पर आधारित है। उचित आकंडे एकत्रित करने के लिए अधिक साक्ष्यों की आवश्यकता है।

डा॰ आर॰ एस शर्मा का विचार है कि विदेशी व्यापार में गिरावट इस सभ्यता के ह्रास का मुख्य कारण था। विदेशी व्यापार में आई गिरावट के लिए दो कारण उतरदायी थे। प्रथम, क षि तथा उद्योग-धन्धे में उत्पादन मे कमी, दूसरा 1700 ई०पू० के आसपास उन देशों में राजनीतिक अस्थिरता उत्पन्न हो गई जिसके साथ हडप्पा सभ्यता के व्यापारिक संबध थे। इसका परिणाम यह हुआ कि नगरीय सभ्यता की अर्थव्यवस्था में काफी गिरावट आ गई जो इसके पतन का कारण सिद्ध हुई।

कुछ विद्वानों के अनुसार इस सभ्यता का पतन किसी महामारी- प्लेग या मलेरिया के कारण हुआ। महामारी के कारण बड़ी संख्या में लोगों की म त्यु हो गई और जो जीवित रहे उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। जिस कारण इस सभ्यता के विकास में अवरोध उत्पन्न हो गया।

भाग-II

अध्याय-1

C. Iron Age Cultures

यूनानी सभ्यता
(Greek Civilization)

यूनान एक पहाड़ी प्रायद्वीप है, जो पूर्वी भूमध्यसागर पर स्थित है। पहाडी क्षेत्र होने के कारण यहां का एक चौथाई भाग ही क षि योग्य है। इसका तट चारों तरफ से पहाडियों द्वारा कटा-फटा होने के कारण यहां पर कई अच्छी बन्दरगाहें स्थित होने तथा एशिया और अफ्रीका के समीप होने के कारण यहां के नागरिक बैबीलोन, एशिया माइनर और मिस्र की सभ्यताओं के सम्पर्क में आ सके। प्रांरभिक यूनानी पशुपालक एवम् क षक थे तथा यहां की जलवायु में अंजीर तथा अंगूर की ही क षि संभव थी। क षि योग्य भूमि की कमी के कारण जब जनसंख्या में व द्धि हुई तो बहुत से लोग मछली पालन व्यवसाय तथा व्यापार से अपनी आजीविका अर्जित करने लगे और शराब का भी निर्यात किया जाने लगा।

यूनान की भौगोलिक स्थिति के कारण यहां यातायात एवम् संचार साधनों की कमी थी। इसलिए पूरा देश प्रारंभिक काल में एकजूट ना होकर छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्यों में विभक्त था और इन छोटे-छोटे प्रवेशों में ही आपसी संघर्ष होता रहा। तटीय क्षेत्रों पर स्थित होने के कारण विभिन्न प्रदेश दूसरी सभ्यताओं के सम्पर्क में आए और विचारों के आदान-प्रदान से नए विचारों का प्रतिपादन यूनान में हुआ। जैसे कि उन्होंने फ्यूनिशिया अंकमाला के अपनाया। 2000-1400 ई०पू० तक यूनान पर मायोनियन सभ्यता का प्रभाव रहा तथा क्रीट पर इसका बहुत प्रभाव रहा। पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्र में इन लोगों का काफी प्रभाव था तथा अच्छे नाविक होने के कारण इनका व्यापार काला सागर से नील नदी तक तथा फ्यूनिशिया में भी होने लगा। माया सभ्यता के लोग जैतून का तेल, शहद, और शराब का निर्यात करते थे इसके बदले सोना, कीमती पत्थर, अनाज और कपड़ा अपने देश में मंगवाते थे। नौसस नामक नगर इनकी राजधानी था, जहां इनके शासक ने एक भव्य मंदिर बनवाया था।

ऐकियन सभ्यता :-

लगभग 2000 ई०पू० में उतर से एकियाई जाति के लोगों ने यूनानी प्रायद्वीप पर आक्रमण कर दिया और यहां बस गए बाद में दक्षिणी यूनान को भी इन्होंने नियंत्रण में कर लिया। यहां व्यापार और विजयों से इन्होंने अपना साम्राज्य विस्तार किया। 1400 ई०पू० में इन्होंने ऐजियन तथा नौसोस पर भी अपना अधिकार कर लिया। इनके प्रत्येक शहर में एक योद्धा शासक प्रशासन संभालता था। व्यापार तथा लूटी गई संपति से इन शासकों नें काफी धन अर्जित कर लिया था। इन्होंने प्रत्येक शहरों में किलों का निर्माण करवाया। किलों के बाहर व्यापारी, कारीगर, शिल्पी तथा किसान छोटे-2 गांव में रहते थे और राज्य को कर देते थे। इस सभ्यता पर माया सभ्यता का काफी प्रभाव था जो इनकी प्रत्येक वस्तु पर देखने को मिलता है।

होमर युग :-

यूनान के इतिहास में 1250 ई०पू० में एशियाई लोगों ने अपने माइसीनियाई राजा के नेत त्व में ट्राय (Troy) पर धावा बोल दिया, जो उस समय एक प्रमुख व्यापारिक शक्ति था। यहां एक लंबे संघर्ष के बाद इन्हें विजय प्राप्त हुई। सर्वप्रथम इन युद्धों का वर्णन होमर द्वारा लिखित दो महाकाव्यों इल्यिाद तथा ओडेसी में मिलता है। इसे होमर ने 9th cen. B.C. में लिखा था। जैसा कि यूनानी विद्वान हेरोडोटस मानते है कि इलियड में एचियन या एकियन राजाओं के शासनकाल में हुई घटनाओं तथा अन्य सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व्यवस्था के बारे में ज्ञान मिलता है।

राज्य व्यवस्थाः-
(State Structure)

होमर काल में एकियन युग के विशाल नगर विध्वंसत हो चुके थे। इस कारण प्रत्येक राज्य गांव के सम द्ध रूप में अत्यंत आदिम संगठन के रूप में थे। इन ग्रामीण राज्यों के निवासी प्रायः अपने को एक ही पूर्वज के वंशज मानते थे। इनका एक नेता था जो सामान्यतः सबसे शक्तिशाली व्यक्ति था तथा उसे ही वे अपना राजा मानते थे। वही युद्ध में उनका नेत त्व करता था एवम् न्यायिक जिम्मेदारियां भी उसी की थी। इस काल में स्थाई सेना नही थी, आपातकाल में नगर तथा गांवों के सरदार या सांमत सेना भेजते थे। राज्य की कर व्यवस्था भी व्यवस्थित नही थी तथा राज्य की आय लूट के माल या भेंट पर ही आधारित थी।

इस काल में प्रशासन में राजा की सहायता के लिए दो सभांए भी थी। जिनमें एक तो सांमतो की सभा थी जिसे ब्यूल कहा जाता था दूसरी स्वतंत्र नागरिकों की सभा थी जिसे एंगोरा नाम दिया गया था। इस काल में इन संस्थाओं का संगठन काफी शिथिल था क्योंकि इनका कार्यक्षेत्र, अधिकार और कर्त्तव्य निश्चित नहीं थे। एक उदाहरण से हमें राज्य का शासक ओडाइसियस अपने राज्य में 20 वर्ष तक अनुपस्थित रहा। इस काल में ना तो कोई प्रतिशासक (regeant) नियुक्त हुआ और न ही किसी सभा की मीटिंग हुई।

सामाजिक व्यवस्था :-
(Social System)

होमर काल में पित सतात्मक समाज था। पिता परिवार का सर्वेसर्वा होता था। वह परिवार के किसी व्यक्ति को आज्ञा उल्घन पर कठोर दण्ड भी देता था तथा परिवार की खुशियों के लिए बलि देता था। हांलाकि इस काल के प्रसिद्ध महाकाव्यों एलियड तथा ओडिसी में मुख्यतः सोंमतों के जीवन का वर्णन है। लेकिन अन्य स्रोतों से भी सामाजिक जीवन की जानकारी मिलती है, जिनसे पता चलता है कि व्यवहार में पिता या परिवार का मुखिया परिवार की खुशियो का ख्याल रखता था। सर्वसम्मति से ही परिवारिक निर्णय लिए जाते थे। समाज में स्त्रियां भी पुरूषों के समान सार्वजनिक कार्यो में भाग लेती थी। विवाह अवसर पर पत्नी के पिता को वर पक्ष पशु देते थे तथा कन्या का पिता उन्हें कुछ धन दहेज स्वरूप प्रदान करता था। इस धन पर लड़की का अधिकार होता था। इस काल में सुंदर स्त्रियों के लिए संघर्ष के अनेक प्रमाण मिलते हैं। कई विद्वान तो ट्राय के युद्ध का कारण भी स्पार्टा नरेश की पत्नी का ट्राय के नरेश द्वारा अपहरण को मानते है। एलियड के अनुसार एक ट्रायन राजकुमार पेरिस ने स्पार्टा के शासक और उसके भाई ने दूसरे राज्यों की सहायता ली तथा 10 वर्षो के युद्ध के पश्चात् ट्रायन को हरा कर मार दिया तथा ट्राय को नष्ट कर दिया। इस काल में जो वीर युद्ध में असाधारण शौर्य दिखाता था वह सामंत बन जाता था। लोग इस काल में साधारण जीवन व्यतीत करते थे। धनी वर्ग की स्त्रियां, सांमत के पास कुछ ऐसे व्यक्ति होते थे जो उसके लिए सैनिक सेवांए ही नही बल्कि उसके खेतों में भी कार्य करते थे।

इस काल में लोग सूती और ऊनी वस्त्र पहनते थे तथा एक वस्त्र शरीर के निचले हिस्से पर लपेटते थे एक अन्य शरीर के ऊपरी भाग पर ओढ़ते थे। लोग घरों में साधारणतः नंगे पांव रहते थे। परन्तु बाहर जाने पर जूते पहनते थे। पुरूष और स्त्रियां दोनों ही केश रखते थे तथा ढाढ़ी मूंछे रखने की परम्परा भी थी।

आर्थिक अवस्था :-
(Economic Condition)

इस काल में लोगों को मुख्य व्यवसाय खेती था। वे गेहूँ, कपास, तिलहन, जौतून, अंजीर और अंगूर इत्यादि की खेती करते थे। क षि के अतिरिक्त पशुपालन भी उनकी आजीविका का एक अन्य साधन था। इसके अतिरिक्त गाडियों का निर्माण करने वाले बढई, र्स्वणकार, लुहार अपने कार्यो में दक्ष थे। मिट्टी के बर्तन बनाने में कुम्भकार दक्ष थे तथा इसके बर्तन दूर-दूर के प्रदेशों में निर्यात किए जाते थे। इसके अतिरिक्त अन्य विकसित उद्योग-धन्धों के कारीगर भी थे। यद्यपि से इतने दक्ष नही थे, क्योंकि सामान्यतः प्रत्येक परिवार अपने वस्त्र और औजार स्वयं ही बनाता था। वस्तुओं को खरीदने और बेचने के लिए विनिमय प्रणाली अस्तित्व मे थी।

धर्म :-

इस काल में यूनानियों ने अंधिकांशतः प्राक तिक शक्तियों का दैवीकरण कर लिया था। इन्हें मनुष्यों के ही समान अपने क्रिया कलाप करते दर्शाया गया है। लेकिन अन्तर केवल इतना था कि देवता अम त पान करने के कारण अमर थे। इनके देवताओं का निवास स्थल ओलम्पस पर्वत था। जियस प्रमुख देवता था, जो आकाश देव भी था। सूर्य देव अपोलो इनके युद्ध का देव, एथेना विजय की देवी थी। इनके अलावा भी कई अन्य देवी-देवता थे, जिनमें हेडिज नाम परलोक का देवता थी था।

अन्धकार युग :- (1100-750 ई०पू०)
(Dark Age)

ट्राय युद्ध की समाप्ती के बाद एकीयन सभ्यता को उस समय आघात पहुंचा जब डोरियन आक्रमणकारियों ने यूनान पर आक्रमण कर दिया। ये लोग लोहे के अस्त्र-शास्त्रों का प्रयोग करते थे। इन लोगों ने सभी नगरों को ध्वसंत कर दिया तथा व्यापार में बाधा डाली। जिसके कारण कलात्मक विशेषता और लेखन कला समाप्त हो गई। परन्तु कुछ यूनानी इन डोरियन आक्रमणों के कारण एशिया माइनर के पश्चिमी किनारे पर जा बसे तथा वहां उन्होंने एकीयन सभ्यता और आंडिसी की रचना की, उस समय वह एशिया माइनर में ही रहता था। इस अंधकारमय युग में एशिया माइनर में ये व्यापार से काफी सम द्धशाली हो गए तथा उन्होंने फ्यूनिशियाई लेखन कला को अपना लिया। कुछ यूनानी दार्शनिकों ने परम्परागत विचारों को तर्क पर रखना शुरू किया। इसी कारण यूनान में तर्क-विर्तक से दर्शन, इतिहास और विज्ञान में बाद के काल में काफी प्रगति हुई।

यूनानी नगर-राज्य :-

अन्धकार युग में अनेक युद्धों के कारण यूनानी दूर स्थित छोटे-छोटे गांवों में रहने लगे थे। क्योंकि अनेक युद्धों के कारण उनके नगरों का अंत हो गया था। इस काल को इसलिए अंधकार युग कहते है क्योंकि इस काल के बारे में हमें ज्यादा जानकारी नहीं है। 700 ई०पू० के आसपास पुनः यहां बाहरी प्रभाव के कारण पुनरूत्थान की शुरूआत हुई। 750-500 ई०पू० के बीच के काल को Archaic काल कहा जाता है। इस प्रारंभ युग में यूनान में कुछ सम द्ध गांव तथा शहर बसने शुरू हुए जिन्हें Polis (पोलिस) कहा जाता था। ये नगर राज्य एक स्वतंत्र इकाई हुआ करते थे तथा सामान्यतः नगर राज्य पहाड़ पर एक किलाबंद केन्द्र होते थे जिन्हें Acropolis कहा जाता था। यूनान और उतर-पश्चिम में इन्हें पोलिस नही बल्कि Ethnos था जैसे कि Phocis तथा Actoia इत्यादि। इस काल में लोगों का जीवन इन्ही Acropolis के आसपास केन्द्रित था। युद्ध के समय, अपने शहर की सुरक्षा, शांति के समय, अपने कार्यो पर विचार-विमर्श करने तथा अपने देवताओं की पूजा अर्चना करने के लिए यहीं पर एकत्रित होते थे।

प्रांरभिक प्राग काल में नगर राज्य (Polis) में समाज क षि प्रधान था और राजनैतिक व्यवस्था काफी शिथिल थी। प्रत्येक शहर के आसपास के कुछ गांव इस प्रकार नगर राज्यों में होते थे जहां क षि की जाती थी। प्रत्येक नगर राज्य के गांव की संख्या निश्चित नही होती थी जहां क षि की जाती थी। स्पार्टा में इनकी संख्या प्रारंभ में 5 थी। प्रत्येक नगर में बड़े अमीर जमींदार, छोटे किसान, भूमिहीन क षक या मजदूर और शिल्पी इत्यादि थे। कुछ स्थानों पर सर्फ भी थे।

समाज की प्रांरभिक इकाई परिवार थी परिवार में खून के रिश्तों से जुड़े लोगों के अतिरिक्त उन पर आश्रित भी अनेक लोग होते थे। जिन्हें ये परिवार सुरक्षा प्रदान करते थे इसके बदले में ये आश्रित इनके खेतों में काम करते थे तथा सभाओं में इन्हें सहयोग देते थे। इस काल में समाज का विभाजन रेखीय था। आपसी संघर्ष वर्गो के बजाय समूहों में होते थे। प्रत्येक समूह का नेत त्व एक या कुछ प्रभावशाली परिवार करते थे। बाद में इनके संबध वंशानुगत भी हो गए। जिन्हें genos (जीनोज) या Clan (क्लैन) भी कहा जाने लगा इन जीनोज तथा उनके सम्बद्ध आश्रितों से (Phratry) फ्रैट्री बनती थी।

प्रत्येक नगर राज्य के नागरिक वंशानुगत वर्गो में बंटे हुए थे जिन्हें Phylai (फाललाई) कहा जाता था। इसे रोमन एक कबीले या Tribe का नाम देते थे। डोरियन नगर राज्य में तीन कबीले थे जबकि अन्य आयोनियाई नगर राज्यों में यह इतने संगठित नही थे।

राजनैतिक संगठन :-
(Political Institutions)

प्रांरभिक नगर राज्यों में हमें तीन राजनैतिक संस्थाओं के प्रमाण मिलते है जिनका उद्‌भव स्थानांतरण के कारण हुआ। इन तीन प्रमुख संस्थाओं में राजा, काउंसिल तथा सभी पुरूष नागरिकों की एक असैम्बली होती थी। जब यूनान में स्थानांतरण हुआ तब प्रत्येक कबीले को एक युद्ध का नायक चाहिए था जो कालान्तर में पैत क या वंशानुगत हो कर राजा में परिवर्तित हो गया जब इन लोगों ने स्थाई निवास किया। जब राजा को कभी किसी कार्य, युद्ध इत्यादि के लिए किसी की आवश्यकता होती तो वह अपने विभिन्न समूहों के नेताओं की बैठक बुलाता तथा परामर्श करता, इससे काउंसल का प्रारंभ हुआ। अपने इस निर्णय को वह सभी व्यस्क पुरूषों के समूह में घोषित करता तथा उन्हें कूच करने की आज्ञा देता। इससे असैम्बली का प्रांरभ हुआ।

राजा :-
(King)

इस प्रकार की राजनैतिक व्यवस्था में राजा का पद काउंसिल पर अधिक आश्रित था। क्योंकि यदि राजा Minor हुआ या उसका उतराधिकार का झगड़ा हुआ तो कान्सिल की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण हो जाती थी। कुछ नगर राज्यों में तो राजा के साथ सहयोग के लिए विभिन्न अधिकारियों की नियुक्ति भी की जाने लगी। सामान्यतः इनकी नियुक्ति प्रति वर्ष चुनाव द्वारा होती थी। ऐयन्स तथा कई अन्य नगर राज्यों में तो राजा का पद भी चुनाव द्वारा प्रतिवर्ष के लिए होता था।

काऊंसिल :-
(Council)

कांऊसिल में विभिन्न कबीलों अथवा नगर राज्यों के मुखिया हुआ करते थे। प्रारम्भ में काऊंसिल एक परामर्श कारी ईकाई थी। राजा जिसमें युद्धों के दौरान विचार विर्मश करता था। कालान्तर में राजा की शक्तियाँ कम होने के कारण यह शक्तिशाली हो गए तथा विभिन्न समूहों के नेताओं की आपसी राजनैतिक रंजिश का एक मुख्य केन्द्र बन गई।

असैम्बली :-
(Assembly)

नगर राज्य के सभी नागरिक इसके सदस्य होते थे। सामान्यतः इनका कार्य काऊंसिल तथा राजा के फैसलों को स्वीक ति देना होता था। इसके अलावा राजा युद्धों के दौरान अपने काऊंसिल के सदस्यों से विचार विमर्श कर असैम्बली में युद्ध की घोषणा करता था। राज्य के सभी नागरिकों को युद्ध में हिस्सा लेने के निर्देश दिए जाते थे। जिसे वे ध्वनि या शोर कर अनुमोदित करते थे।

इस काल में यूनानी नगर राज्यों के पूर्व की संस्क तियों से सम्पर्क हाने के कारण अनेक सामाजिक बदलाव आए जैसे इन लोगों ने फ्यूनीशिया से उनकी अक्षर माला ग्रहण की। इस काल में प्राक तिक डिजाइनों वाले नए प्रकार के म दभांड मिलने शुरू हुए। सैनिक साजों सामान में भी इन्होंने इस काल में भी इन्होंने इस काल में योद्धाओं को ठाल, तलवार, भाले, हेलमेट, बाजु, धाती का सुरक्षा कवच इत्यादि से परिचित करवाया। इस प्रकार इनकी युद्ध प्रणाली में भी परिवर्तन आया। पहले सैनिक एक व्यक्तिगत योद्धा की भांति लडते थे लेकिन इस काल में वे एक संगठित सेना की भांति लड़ने लगे।

तानाशाह काल :-
(Dictatorship)

सैनिक गतिविधियों में हुए परिवर्तनों का इस काल के समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ा। पहले नगर के प्रत्येक नागरिक (क षक या अन्य) को सैनिक गतिविधियों में हिस्सा लेना पडता था। लेकिन अब यह कार्य केवल कुछ रांजतत्रात्मकों के हिस्से में आ गया। इस कारण समाज में सैनिकों की प्रतिष्ठा बढ़ गई। इस नए प्रकार की सेना और युद्ध प्रणाली से सेना में अनुशासन आ गया इससे राज्य की प्रभुता का विकास हुआ। इस कारण तानाशाही शासन व्यवस्था का प्रारंभ हुआ। क्योंकि नई युद्ध व्यवस्था में युद्ध के रथ जिन पर नोबेल सवार होकर विजयी हुई, निर्णायक सिद्ध हुआ। इस काल में अनेक छोटे क षक कर्ज के बोझ के कारण दास बन गए तथा जनसंख्या में हुई व द्धि के कारण भूमि के लिए संघर्ष बढ़ गया। फ्यूनिशियन के सम्पर्क के कारण

यूनान में व्यापारिक गतिविधियां बढ़ी और समाज में मध्यम वर्ग अस्तित्व में आया। ये व्यापारी वर्ग, पस्तकार विभिन्न प्रदेशों में जाने लगे और इन्होंने बाहरी विचारों के सम्पर्क के कारण निम्नवर्ग के साथ मिलकर कुलीनतंत्र का विरोध किया। इस वर्ग संघर्ष के कारण अवसरवादी नेताओं ने शस्त्र बल के आधार पर राजसत्ता पर अधिकार कर लिया। इन्हें टायरेण्टस या तानाशाह कहा जाता था। सत्ता में बने रहने के लिए इन्होंने सार्वजनिक कार्यो जैसे मन्दिरों, सुरक्षा प्राचीरों, किले इत्यादि तथा निम्न वर्ग को नौकरियां दे दी। कुछ तानाशाहों ने कला को भी प्रोत्साहन दिया जिस कारण कुछ नगर राज्यों में सांस्क तिक तथा आर्थिक उन्नति भी हुई। लेकिन धीरे-2 ये तानाशाह अत्याचारी हो गए इसलिए अंग्रेजी शब्द टायरेनी इन्हीं टायरैन्टस के कारण बना। लेकिन आर्थिक उन्नति के कारण बाहरी सर्म्पकों के कारण यहां के नागरिकों में राजनैतिक चेतना बढ़ी और छठी शाताब्दी ई०पू० में कुछ यूनानी नगर राज्यों में लोकतंत्र की स्थापना हुई। यद्यपि कई नगर राज्यों में नागरिकों द्वारा सरकार चलाने की प्रथा प्रारंभ हो गई सर्वप्रथम यह एथेन्जस में शुरू हुई।

समस्त यूनान में धीरे-धीरे दो प्रकार की शासन प्रणालियां प्रारंभ हो गई। जिस कारण पूरा यूनान विश्व के दो खभों में बंट गया। प्रथम प्रणाली के तहत लोगों द्वारा शासन चलाया जाता था जो एंथेस में विद्यमान थी। दूसरी ओर स्पार्टा और उसके सहयोगी नगर राज्यों में जहाँ सरकार सेना की, सेना द्वारा और सेना के लिए ही थी, ऐंथेस मे जहाँ लोकतंत्र के कारण व्यापार, कला और साहित्य का विकास हुआ। वहीं दूसरी और स्पार्टा में यह विकास नहीं हो पाया सैनिक गतिविधियों के कारण। हांलाकि इन्होंने बहुत बहादुर सेना और सेनानायक स्पार्टा को दिए तथा जब भी कोई बाहरी शक्ति यूनान पर आक्रमण करती तो उसे स्पार्टा की सेना की मदद लेनी पड़ती थी।

एथेन्स नगर राज्य
Athnes City State

एथेन्स एट्टिका प्रदेश का एक महत्वपूर्ण नगर था। यह उन कुछ प्रमुख यूनानी नगरों में से है जहां पर कोरस काल में ही विकास हुआ तथा उसके बाद प्राग जामितिय तथा जामितिय काल में भी एक सम द्ध नगर था। एट्टिका क्षेत्र में बहुत से मैदान पहाड़ों द्वारा अलग किए है। इनके मध्य मैदान में एथेन्स स्थित है तथा साथ ही सम द्धशाली क्षेत्र फलेरोन की खाड़ी भी इसी में शामिल थी पश्चिम में थरीया (Thria) का मैदान तथा पूर्वी एटिका में Brauron और मैराथन इत्यादि नगर थे। पूरे एट्टिका के एकीकरण के प्रथम चरण में समस्त क्षेत्र में तीन-चार शक्तिशाली नगर राज्य थे। दूसरे चरण में एथेन्स ने इन सभी 12 राज्यों को मिलाकर एक नगर राज्य का गठन किया। इस कारण वह यूनान का एक प्रमुख नगर बन गया। इस संगठित राज्य की मुख्य राजनैतिक संस्था नौ अर्कन अथवा सरंक्षकों की एक सभा थी। ये सभी नौ अर्कन 487 तक असैम्बली द्वारा एक वर्ष के लिए चुने जाते थे। एथेंस में पहले राजतंत्र तथा राजा होता था और यहां का अन्तिम ज्ञात राजा कोड्रस था। राजा की यह पदवी नौ में से किसी एक आर्कन को दी जाती थी।

इसके अतिरिक्त एक सार्वजनिक असैम्बली होती थी जो आर्कनों का चुनाव करती थी और उसकी के प्रति उतरदायी होते थे। कांऊसिल का नाम Council of the Arepagus कांऊसिल ऑफ दी एरियोपेगस था, क्योंकि इसकी बैठकें एक्रोपोलिस (गढ़ी) पर हुआ करती थी। जिन्होंने 9 आर्कनो की कांऊसिल की सदस्यता प्राप्त की थी वे सभी इसके सदस्य होते थे। प्रारंभ में कांऊसिल का कार्य राजाओं को परामर्श देना था। एंथेन्स के लेखकों का मत है कि चौथी-पांचवी सदी ई०पू० में यह काफी शक्तिशाली संस्था के रूप में स्थापित थी। लेकिन इसके कार्यक्षेत्र और शक्तियों के बारे में विस्त त जानकारी नही देते। इस काल में आर्कनों की कम से कम आयु 30 वर्ष होती थी तथा वे एक वर्ष के लिए पदों पर नियुक्त किए जाते थे। पद से मुक्त होने के बाद वे कांउसलर हो जाते थे। जहां वे अपने अनुभव के आधार पर कार्य करते थे। जहां वे अपन अनुभव के आधार पर कार्य करते थे। यह सभा आर्कनों पर अंकुश रखती थी। हत्या तथा विद्रोह जैसे गंभीर मामलों पर विचार-विर्मश यहीं किया जाता था। इसका कार्य अनुशासनहीन नागरिकों को दण्ड़ देना भी था। इस काल में एंथेस के कानून लिखित नही थे, इसलिए न्याय व्यवस्था पर सांमतो का अधिकार होने के कारण निर्धन क षकों पर अधिक अत्याचार किए जाने लगे। इस काल में यूनान में जैतून और अंगूर की खेती प्रारंभ हो गई थी, इनकी खेती करने वाले काफी सम द्ध हो गए थे और आम किसानों की स्थिति दयनीय हो गई थी ये ऋणों पर निर्भर रहने लगे थे। इसे अदा ना करने की स्थिति में ये अपनी जमीनें गिरवी रख कर क षक दास (serf) बन गए।

परन्तु इस संगठित नगर-राज्य सर्वप्रथम 632 ई०पू० में साइलोन (cylon) के विद्रोह का सामना करना पड़ा। इसने असंतोष की स्थिति का लाभ उठाते हुए एंथेस पर अपनी निरंकुशता स्थापित करने की चेष्टा की। इसने औलम्पिक समारोह के दौरान गद्दी पर अधिकार कर लिया। परन्तु नगर के नागरिकों ने उसे घेरकर नौ आर्कनों को साइलोन के विरूद्ध विद्रोह का नेत त्व सौंपा। साइलोन यहां से भाग निकला लेकिन इसके साथियों ने आर्कनों से समझौता कर लिया लेकिन बाद में इन्हें मार दिया गया।

621 ई०पू० में यहां Draco (ड्रेकों) ने कानूनों को लिखित रूप प्रदान किया। बाद में उसके इन कानूनों को (सिवास मानव हत्या कानूनों के) Solon (सोलोन) ने समाप्त करके नए तरीके से कानूनों का संग्रह किया। इसके अनुसार यदि कोई व्यक्ति अनजाने में कोई हत्या करता है तो उसके मुकदमें की सुनवाई Cout of fity one या Elphetai (एफेताई) द्वारा की जाए। म तक के रिश्तेतार दोषी को माफी भी दे सकते थे अन्यथा राज्य से उसे बाहर निकाल दिया जाता था। इस प्रकार चर्तुथ-पांचवी शताब्दी तक न्यायालय तथा एक अर्न्तराष्ट्रीय न्यायालय Areopagite स्थापित किया गया। जहां अपराधी को हर्जाना देना पड़ता था। परन्तु अन्यायपूर्ण तथा निष्ठुर कानूनों को लिखित रूप देने मात्र से राज्य का आर्थिक संकट दूर नहीं हुआ। इसलिए राज्य में विद्राहे होने लगे तो 594 ई०पू० में सोलोन को (जो 9 आर्कनों में से एक था। कानूनों में सुधार करने का अधिकार दिय गया।

सोलन के सुधार :-
(Reforms of Sollan)

ऐटिका प्रदेश के क षको और श्रमिकों की स्थिति अत्यंत शोचनीय थी। उनके पास भूमि नही थी। खेतों की उपज का 1/6 भाग उन्हें मजदूरी के तौर पर मिलता था। इससे उनका निर्वाह काफी कठिन था अतः, उन्हें ऋण लेना पड़ता था। संपति के अभाव में उन्हें अपना शरीर भी बेधक रखना पड़ता था। ऋण अदा ना कर पाने पर इन्हे दास भी बनना पड़ता था। नगर में इनकी संख्या बढ़ती जा रही थी। परिणामस्वरूप धनी वर्ग ज्यादा अमीर तथा निम्न वर्ग ज्यादा गरीब हो रहा था। इसलिए नागरिक ने विद्रोह करने शुरू कर दिए। नगर की स्थिति सुधारने के लिए solon को नियुक्त किया गया और इसे कानूनों में सुधार के लिए असाधारण अधिकार दिए गए।

आर्थिक और सामाजिक सुधार :-
(Economic & Social Reforms)

सोलन ने आर्कन का पद संभालते ही पहली घोषणा द्वारा ऋण लेने वालों को मुक्त कर दिया। वे गुलाम जो कर्ज अदा नही कर पाने के कारण इस दशा में थे, स्वतंत्र कर दिए गए। इसके अलावा सोलन ने कानूनों में सुधार किया कि कोई भी व्यक्ति ऋण अदा ना कर पाने के कारण गुलाम नही बनाया जा सकता था। इसके पहले आर्कन पद पर आते ही घोषणा करते थे कि वह सभी संपति की रक्षा करेगें। परन्तु सोलन ने इस परम्परा के विरूद्ध एंथेस की जनता को एक संदेश दिश जिससे उनके दुख दूर हुए। उस द्वारा किए ऋण संबधी सुधारों ने तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में क्रांतिकानरी परिवर्तन किए। इसी कारण इसके इन सुधारों को यूनान की ही नही बल्कि विश्व की महान घटना मानते है। मनुष्स की मर्यादा को समझने की यह पहली कोशिश थी।

भूमि सबंधी सुधार :-
(Land Reforms)

इसके पश्चात् सोलन ने भूमि-संबधी कानूनों में भी सुधार किया। इसने एक सीमा निश्चित कर दी, जिससे किसी के पास अधिक भूमि नही हो सकती थी। उसने यह संशोधन इसलिए किया कि एक व्यक्ति के पास ज्यादा भूमि ना हो। इसने एटिका में उत्पादित वस्तुओं का निर्यात कानून द्वारा बंद कर दिया। जिस कारण यहां वस्तुएं सस्ती हो गई और नागरिकों को इससे लाभ हुआ इसने ऋण अदा ना कर पाने वालों की आधी जमीन उन्हें वापिस लौटा दी और उन्हें स्वतंत्र कर दिया। इस तरह चिन्ह हटाकर बंध रखे भूखण्ड स्वतंत्र कर दिए गए। इसने 1/6 भाग उपज का कर के रूप में देने पर भी रोक लगा दी। इस प्रकार अमीरों पर रोक लगा दी । सोलन के इन सुधारों को Seisachtheria या बोझ उतार फैंकना कहा जाता है।

सोलन ने मध्यमवर्ग के व्यापारियों के हितों की रक्षा के लिए और देश की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए नाप-तौल प्रणाली, मुद्रा प्रणाली में भी सुधार किए। आयोनिया के सिक्कों के आदर्श पर नए सिक्कें प्रचलित किए जिससे व्यापार वाणिज्य में उन्नति हुई । इसने शिक्षा प्रणाली में भी सुधार किए। इसने घोषणा की कि वे पिता, जिन्होंने अपने पुत्रों की शिक्षा का उचित प्रबंध

नही किया, बुढापें में अपने पुत्रों से सहायता प्राप्त करने के अधिकारी नही है। लड़कों को शारिरिक व्यायाम, संगीत एवम् कविता की शिक्षा अवश्व मिलनी चाहिए। जिससे उनका मानसिक और शारिरिक विकास हो सके। उसने यह भी कानून बनाया कि जो नागरिक राजनैतिक कार्यो में सक्रिय भाग नही लेते उन्हें दण्ड दिया जाएगा। इसने विदेशी मूल के दस्तकारों को तथा उनके परिवारों को एंथेस की नागरिकता प्रदान कर उन्हें यहां बसने के लिए प्रोत्साहित किया। लौरियम में चांदी की खानों से खनन प्रारंभ कर देश की आर्थिक स्थिति में सुधार किया।

सोलन ने समाज को चार वर्गो में विभाजित किया प्रथम वर्ग, जिसे Pentakosiomedimnoi (पेन्टाकोसिओयडिम्नोई) कहा गया इसमें वे लोग थे जिनकी आय 500 बुशल से अधिक थी। दूसरा वर्ग, Hippeis (हिप्पेइस) जिनकी आय 300 बुशल, तीसरा वर्ग Zeugitai जेऊगितेई जिनकी आय 200 बुशल, चौथा वर्ग Thites (थीतेस) जिसकी आय इससे कम हो। वर्गो के आधार पर ही राजनैतिक पद दिए जाते थे। प्रथम दो वर्गो से ही आर्कन चुने जाते थे। जबकि चौथे वर्ग को केवल असैम्बली की सदस्यता मिलती थी।

प्रशासनिक सुधार :-
(Administrative Reforms)

यह अपने सामाजिक सुधारों की अपेक्षा संवैधानिक सुधारों के लिए अधिक प्रसिद्ध है इसने प्रशासनिक सुधारों में शासन समितियों का पुनर्गठन किया इसने एरियोपैगस संस्था, जिसमें उच्चवर्ग के ही सदस्य होते थे, लेकिन अब इसमें कुलीन वर्ग ही नही बल्कि कोई भी नागरिक आर्कन हो सकता था तथा अवकाश प्राप्त आर्कन इसके सदस्य होते थे। उसने इसके अधिकारों में कमी कर दी। इसके अधिकारों को कम करने के बाद इसे नई संस्था का निर्माण करना पडा। इसलिए नई कांउसिल का निर्माण किया गया जिसके 400 सदस्य होते थे। इन संस्था के सदस्य प्रत्येक वर्ग के लोग निर्वाचित थे। केवल थीट्स इसके सदस्य नही हो सकते थे। असैम्बली में आने वाले सार्वजनिक विषयों पर विचार इस सभा पहले ही हो जाया करता था। इसका नाम 'बौल' भी था।

सोलन ने सार्वजनिक कचहरियों और न्यायलयों का भी निर्माण किया। न्यायालयों का निर्माण उसका सर्वाधिक क्रांतिकारी सुधार था, जो एंथेंस, के गणतांत्रिक शासन की आधारशिला बन गया। कचहरियों को 'हीलिया' कहा जाता था। मजिस्ट्रटों का चुनाव जनता की सभा में होता था।

पिसिस्ट्रेटर्स का स्वेच्छाचारी शासन :-

सोलन के सुधारों के बावजूद भी समाज में विरोधाभास जारी रही। इसके सुधारो से किसी भी वर्ग को पूर्णतः संतोष नही हुआ था। विशेषतौर पर धनी, कुलीनवर्ग, उच्चकुलतंत्र पुनः अधिकार चाहता था क्योंकि सोलन ने इनके अधिकारों में कमी कर दी थी। इस परिस्थिति से लाभ उठाकर पिसिस्ट्रेटस नामक व्यक्ति ने एथेंस में स्वेच्छाचारी शासन की स्थापना की। यह भी एक कुलीन था, पर यह उदार था। इसने अपने काल में राज्य का विकास करने की कोशिश की।

क्लैस्थनीज के सुधार :-

पिसिस्ट्रेटस के स्वेच्छाचारी शासन के बाद एथेंस गणतंत्र का कार्य क्लैस्थनीज के हाथों में आ गया कई ऐसी घटनांए हुई जिससे तानाशाही का अंत हो गया था और क्लैस्थनीज ने 500 ई०पू० में सुधारों के नए दौर की शुरूआत की। सोलन द्वारा निर्मित संस्थांए इस काल में सुचारू रूप से कार्य नही कर रही थी इसका कारण था कि एटिका प्रदेश में बसने वाले कुलों (Tribe) की शक्ति बढ़ गई थी और इन विभिन्न कुलों के आपसी झगड़े ही समस्या थे। राज्य को गरीब वर्ग से उतना खतरा नही था जितना इन कुलों से। क्लैस्थनीज ने इन कुलों को भंग करने का प्रयत्न किया और नए आधार पर जनता का विभाजन करना चाहा। इसने 10 नए कुलों का निर्माण किया, जिनका आधार भौगोलिक था। अतः अब एक कुल (Tribe) के लोग कई नए कुलों में बंट गए जो एटिका के चारों तरफ फैले हुए थे।

ब्यूल का पुर्नगठन :-
(Reorganisation of Bayool)

इसके बाद बौल (ब्युल) या 400 की कांउसिल का पुर्नगठन किया गया, इसके अधिकारों में व द्धि की गई। यह कांउसिल राज्य की सबसे शक्तिशाली शासन की संस्था बन गई। आर्कन और मजिस्ट्रेटों को इस संस्था के प्रति उतरदायी रहना पड़ता था।

राज्य के सभी वितिय अधिकार इसी के हाथों में थे। वैदेशिक नीति का संचालन भी यहीं कांउसिल करती थी, इसमें नए कानून बनाने का भी कार्य होता था।

इसने सेना में भी सुधार किए। सेना की अध्यक्षता के लिए प्रत्येक कुल से, एक-एक सेना पति लिए जाने लगे। प्रधान सेनापति पोलमार्क होता था। इसी की अध्यक्षता में, ये दसों सेनापति काम करते थे। क्लैस्थनीज के बाद यह पद अत्यंत महत्वपूर्ण होता गया। ये दासों सेनापति एंथेस गणतंत्र के उच्चतम पदाधिकारी माने जाने लगे।

क्लैस्थनीज के सुधार अधिक स्थायी सिद्ध हुए। इन सुधारों के कारण ही इसे एंथेस गणतंत्र का द्वितीय संस्थापक माना जाता है। सुधारो के कारण जनता में एकता की भावना आई उसने गणतांत्रिक संविधान को अधिक मजबूती प्रदान की।

यूनान तथा फारस (ईरान) संघर्ष
Greeco - Persian Wars

छठी शताब्दी ई०पू० के यूनानी इतिहास की महत्वपूर्ण घटना फारस के साथ यूनानी संघर्ष हैं इसका मूल कारण फारसी साम्राज्य की विस्तारवादी नीति था। एशिया माइनर के पश्चिमी प्रदेशों पर प्रथम विजय प्राप्त करने का क्षेय फारस के हरवामनी वंश के सम्राट साइरस को हैं साइरस ने 558-29 ई०पू०) बैक्ट्रिया और काबूल से पश्चिम तक लीडिया तथा एशिया माइनर के यूनानी उपनिवेशों को जीत लिया और अपने साम्राज्य में मिला लिया। यहां अपने (satrap) क्षत्रप को सार्डिस में स्थित कर इन जीते हुए प्रांतों का प्रशासन सौंप दिया। परन्तु फारसी शासन के अर्न्तगत ये राज्य स्वायत रहे तथा 50 वर्ष तक इसी प्रकार का शासन चलता रहा। परन्तु इन आयोनियन यूनानियों को अन्य यूनानी राज्यों से सहायता मिलती रहती थी। इसी बीच 506 ई०पू० में एंथेंस के पूर्व टायरेण्ट हिप्पियास ने एथेंस से निष्काशित होने पर सार्डिस में शरण ली थी।

499 ई०पू० जब यूनानी नगर राज्य Miletus (मिलीटुस) ने विद्रोह कर दिया तब यूनान पर फारसी आक्रमण हो गया। मिलीटुस ने एशिया माइनर के यूनानी नगर राज्यों का नेत त्व कर शक्तिशाली फारसी साम्राज्य का सामना किया। फिर उन्होंने यूनान से सहायता मांगी तो एथेंस ने 20 तथा एरिट्रिया ने 5 युद्ध पोत भेजे। परन्तु युद्ध में पहले तो वे सार्डिस को हराने में सफल हो गए परन्तु 493 ई०पू० में उन्हें पराजय का सामना करना पडा। फारसियों ने मिलीटुस को पूर्णतः विध्वंस्त कर दिया इसी बीच थ्रंस और मेसीडान स्वतंत्र हो गए इस पर डेरियस इतना क्रुद्ध हुआ कि उसने यूनानियों से बदला लेने की ठानी। हेरोडोटस के अनुसार एथेंस की इस कार्यवाही से वह इतना क्षुब्ध हो गया कि उसने अपने एक नौकर को आदेश दिया कि वह रोज उसके सामने "मालिक, एथेंस वालों को स्मरण रखें" दोहराए।

मैराथन का युद्ध :-
(The War of Marathan)

डेरियस ने 490 ई०पू० में एचियन समुद्र पार कर यूनानियों को सबक सिखाने के लिए एक विशल जलबेडा और स्थल सेना भेजी। सर्वप्रथम उसने थ्रेस, थेसोस तथा मेसीडोस को दोबारा जीता तब उसने सभी यूनानी नगर राज्यो को उसकी अधीनता स्वीकारने का संदेश भेजा, जब फारसी सेना मैराथन पहुंची तो एंथेंस ने दूसरे नगर राज्यों से मदद मांगी। थीब्ज, आर्गोज तथा ईजिना ने तटस्थ रहना उचित समझा। स्पार्टा की सेनांए भी समय पर नहीं पहुंच सकी परन्तु प्लेटाई ने 1000 सैनिक भेज दिए। एंथेंस के सैनिकों ने अपने से कई गुणा सेना का मुकाबला मिल्टियाडिज के नेत त्व में किया तथा निर्णायक रूप से विजय प्राप्त की। हेरोडोटस लिखता है कि फारस की सेना के 6400 सैनिक तथा एंथेस के कुल 192 सैनिक मरे। लेकिन यह सत्य प्रतीत नही होता। एक जनश्रुति के अनुसार एथेंस की सेना के एक धावक को इस विजय की सूचना देने को कहा गया तो उसने 42 किलोमीटर की यह दूरी दौड़ कर पूरी की और एथेंस में यह सूचना दी "खुशी मनाओं हम जीत गए" और थकान के कारण वही उसकी म त्यु हो गई। आज भी एथलेटिकस में सबसे लंबी दौड़ का नाम मैराथन है।

एथेंस वासी मैराथन की विजय को अपने इतिहास की एक स्वर्णिम घड़ी मानते है। तथा उन्होंने अपने वीरगति प्राप्त योद्धाओं के नाम एथेंस के केन्द्रिय बाजार में एक पत्थर का स्मारक स्थापित किया। एथेंस के नेता थीमीस्टोक्लेज ने असैम्बली को एक बड़ा समुद्री बेड़ा बनाने के लिए राजी किया। जिससे फारस का मुकाबला किया जा सके साथ ही व्यापार में भी उसका प्रयोग किया जा सके।

डेरियस की म त्यु के बाद उसका पुत्र जरजीडा (xerxes) गद्दी पर बैठा और उसने एंथेस से बदला लेने के लिए एक बड़ी सेना और नौ सेना का गठन किया। ऐसा कहा जाता है कि इससे पूर्व इतनी विशाल सेना जिसमें 26 लाख, 31 हजार सैनिक, इतनी संख्या में इंजीनियर, व्यापारी, सेवक और वैश्याएं थी। भिन्न-2 प्रदेशों से इसमें सैनिक शामिल थे।

यूनान में अपनी सेना उतारकर जरजीज ने यूनानी नगर राज्यों को आत्मसम्पर्ण करने को कहा। काफी यूनानी राज्यों ने डर के कारण आत्मसर्म्पण कर दिया। परन्तु एथेंस ने 481 ई०पू० में फारस का प्रतिरोध करने के लिए स्पार्टा में अपने सहयोगी राज्यों की सभा कौरींथ में बुलाई। यूनानी राज्यों ने स्पार्टा के नेत त्व में लडाई करने की योजना बनाई। जब 480 ई०पू० में इरानी/फारसी यूनान में पहुंचे तो स्पार्टा से एक छोटी टुकड़ी Leonides के नेत त्व में थर्मोपाइली दर्रे पर विशाल इरानी सेना को रोकने पहुंची। इस सेना में 10,000 सैनिक थे, जिन्होंने लाखों की संख्या वाली फारसी सेना का मुकाबला किया। हेरोडोटस के अनुसार इस युद्ध में स्पार्टा के सैनिक इतनी वीरता से लड़े लेकिन लडाई में उनका जनरल मारा गया इसके बाद इन्होंने फारसी सेना को 4 बार पीछे धकेला। 10 हजार सैनिकों में से केवल 2 ही जीवित बचे, इनमे से एक ने बाद में आत्महत्या कर ली।

थर्मोपाइली की सम्मानजनक पराजय से यूनानियों की प्रतिष्ठा बढ़ गई। स्थल युद्ध के समान यूनानी आर्तेमिजयम के समुद्री युद्ध में सफलता हासिल नही कर सके। फारसी सेना आगे बढ़ती रही और एथेंस वासियों को अपने शहर खाली करने पड़े तथा उन्होंने Salamis (सलामीज) के द्वीप में शरण ली। फारसी सेना ने एंथेस शहर को नष्ट करके जला दिया, घरों को लूट लिया तथा गढ़ी पर बने मंदिरो को ध्वस्त कर दिया।

इसी समय एक सोची समझी चाल के अनुसार Themistocles (थेमिस्टोक्लेज) ने फारसी समुद्री बेड़े को सलामीज के छिछले पानी में युद्ध मे उलझा दिया। जरजीस को आसान विजय की उम्मीद थी लेकिन उसके बड़े युद्ध पोत पानी में उलझ गए तथ एथेंस सेना के छोटे युद्ध पोतों ने फारसी सेना को नष्ट कर दिया। युद्ध में हारे, जरजीस को एशिया माइनर जाना पड़ा। अगले वर्ष यूनानियों ने उनके बचे हुए सैनिको को प्लाटिया (Plataea) के युद्ध में हरा दिया। इस निर्णायक युद्ध के बाद कभी भी फारसी सेना ने यूनानी क्षेत्रों पर आक्रमण नही किया यद्यपि वे लालच के जरिए यूनानी नगर राज्यों में फूट डालने का कार्य करते रहे।

प्लाटिया युद्ध के बाद माइसेन के युद्ध में जीत के बाद स्पार्टा ने यह सुझाव रखा कि आयोमियनों को यूनानी धरती पर बसाया जाए परन्तु आयोनियन अपनी उपजाऊ भूमि छोड़ने को तैयार नही थे परन्तु एथेंस के विरोध के बाद यह योजना छोड़नी पड़ी। एथेंस चाहता था कि Sestor (सेस्टोज) पर आक्रमण किया जाए परन्तु स्पार्टा तथा उनके सहयोगी Peloponnerian League के सदस्य वापिस घर जाना चाहते थे। सेस्टोस की घेराबंदी कर उसे आत्मसर्म्पण पर मजबूर कर दिया गया तथा यह क्षेत्र एथेंस के अधिकार में आ गया। इसके बाद स्पार्टा के राजा पौसमियास (Pausanias) को सता संभाल फारसी बची हुई सेना को खत्म करने का कार्य सौंपा गया।

एथेंस साम्राज्य
(Athanian Empire)

फारसी यूनानी युद्धों के बाद एथेंस की सेनाओं के कंमाडर Aristides (एरिस्टाइडीस) को आयोनियाई (Ionian) नगर राज्यों ने इनकी संयुक्त सेना की कंमाड संभाली। क्योंकि ये नगर राज्य एंथेंस को अपनी मात राज्य मानते थे। दूसरे स्पार्टा समुद्र पार के अभियानों के लिए उपर्युक्त नही था। 478-77 ई०पू० आरिस्ट्राइडस ने लेस्बोस (Lesbos) चीयोज (Chios) और समोस (Samos) से मिलकर नई लीग के गठन के बारे में विचार-विमर्श किया और सभी यूनानी नगर राज्यों को प्रारभिक बैठक में Delos (डेलोस) के द्वीप पर 477 ई०पू० आंमत्रित किया, वहां पर उपस्थित नगर राज्यों ने शपथ ली कि आगे से उनके दोस्त और दूश्मन एक समान होंगे। इदस डेलियन लीग का नेता एंथेंस तथा इसमें अधिकतर आयोनियाई नगर राज्य, साइक्लाडस (Cyclades), आयोलियन (Aeolian) तट के नगर राज्य, रोडस (Rhodes) कोस (Cos) तथा स्नाइडस (Cnidus) इत्यादि, प्रारंभ में ही इसके सदस्य बन गए। बाद में Tharacian, Euboea, Andras प्रदेश भी शामिल हो गए। प्रारंभ मे इस लीग का गठन ईरानी सेनाओं का मुकाबला करने के लिए किया गया था। परन्तु 466 ई०पू० में जब एंथेंस के साइमन ने एरीमिडोन नदी पर अंतिम जीत हासिल की तो एंथेस ने इस लीग को धीरे-धीरे एथेंस साम्राज्य में बदलना शुरू कर दिया।

सभी सदस्य नगरों को सामूहिक जल बेड़े के लिए युद्धपोत तथा वार्षिक धन देना होता था। इसको निश्चित करने की जिम्मेवारी Aristides को सौंपी गई उसने यह कार्य बेखुबी निभाया।

दूसरी तरफ एंथेंस ने धीर-धीरे अपना प्रभुत्व बढ़ाना शुरू किया। 472 ई०पू० में Carystus जो लिग का सदस्य नहीं था, को सैनिक कार्यवाही कर सदस्य बनने पर मजबूर किया। कांलातर में जब एक सदस्य Maxos न संघ छोड़ना चाहा तो इसकी घेराबन्दी कर दी गई। 465 ईसा पू० में जब Thasos ने विद्रोह किया तो उसे आत्मस्मपर्ण करना पड़ा इसके अतिरिक्त यहां की खानों में खनन का अधिकार भी एथेंस ने प्राप्त कर लिया। अतः थेमोस ने विद्रोह करते स्पार्टा से मदद की अपील की तो स्पार्टा को एरगोज तथा टेजीया के संघ का मुकाबला करना पड़ा तथा उनके क्षेत्र में हेलोट विद्रोह हो गया इस पर उन्हें अपने ईरान युद्ध के सहयोगियों से मदद लेनी पड़ी जिनमें एथेंस भी एक था। एथेंस की असेम्बली में साइमन ने स्पार्टा की सहायता की वकालत की। परन्तु विरोध के बावजूद साइमन की बात मानी गई और एक शक्तिशाली सेना के साथ स्पार्टा की सहायता को पहुंच गया। परन्तु स्पार्टा को एथेंस पर शक हो गया। इसीलिए उन्होंने उसे वहां से वापिस भेज दिया हालांकि साइमन एथेंस और स्पार्टा की मित्रता का समर्थक था जबकि पेरिक्लिज इसका घोर विरोधी था अन्त में 461 ईसा पू० में साइमन को देश निकाला दे दिया गया।

450-446 ईसा पूर्व के बची एथेंस में लागू हुई कई नीतियों के कारण कुछ बदलाव हुए जिनके कारण एथेंस इस लीग को साम्राज्य में बदलने में कामयाब हो गया इसके अतिरिक्त एथेंस ने दो ऐसे आदेश जारी किए जो राजशाही तरीके के थे। पहले आदेश के अनुसार सभी सदस्य राज्यों को एथेंस के सिक्कों और माप तोल प्रणाली का प्रयोग करना होगा तथा चांदी के खनन् पर प्रतिबंध लगा दिया गया अब खजाने पर एथेंस का अधिकार हो जाने के कारण इसे यहीं पर खर्च किया जाने लगा प्रत्येक 4 वर्ष में एकबार सभी सदस्य राज्यों को एथेंस के एक समारोह मे आना जरूरी था इसके अतिरिक्त एथेना नामक देवी की पूजा पर अधिक बल दिया।

446 ईसा पूर्व में एथेंस के जनरल Talmides को बाइयोसिया में हराकर पीछे हटना पड़ा तो विद्रोह अधिक फैल गया दूसरी और स्पार्टा से की गई पांच साल की संधि का समय भी समाप्त हो रहा था। पेरीक्लिज जब सेना के साथ विद्रोह दबाने पहुँचा तो उसे सूचना मिली की मेगरा की सेना ने एथेंस के सैनिकों को मार दिया। और पेलोपोनेशियन लीग की सेनाएं एट्टीका की ओर बढ़ रही है। तो उसने अपनी सेनाऐं वापिस बुला कर स्पार्टा को वापिस जाने के लिए बात शुरू की। इस प्रकार स्पार्टा से तीस वर्षो की सन्धि की गई। सन्धि के अनुसार नीसिया (Nisaea), ट्रोजन-(Troezen) तथा ऐचियन (Achean) को एंथेंस छोड़ना पड़ा। एजीना को एथेंस के प्रभाव से छुटकारा मिला परन्तु एंथेंस को स्पार्टा से एथेंस के साम्राज्य की मान्यता प्राप्त हुई।

पेरीक्लीज का काल :-
(The Age of Parincles)

पेरीक्लीज एथेंस के एक धनी परिवार से संबधित था। इसकी माता प्रसिद्ध सुधारक क्लीस्थनीज की पौत्री थी तथा पिता एथेंस के भूतपूर्व जल सेनापति था। अपने जीवन के प्रांरभिक वर्षो में उसने डेमोनिडिज तथा पाइथोक्लीडिज से शिक्षा प्राप्त की तथा अपने दार्शनिक मित्र एनेक्जेगोरस से विज्ञान चिन्तन करना सीखा। वह एक कुशल वक्ता था तथा भाषा पर उसका अधिकार था। एक योग्य सेनानायक के रूप में 461 ई०पू० में उसे एथेंस का सेनापति चुना गया। इसके अतिरिक्त वह एक महान शासक भी था। तथा 440 ई०पू० तक वह एथेंस को सबसे महत्वपूर्ण राजनैतिज्ञ बन गया था। अपने प्रांरभिक राज्य काल में उसने राज्य की सेवा के लिए वेतन का प्रावधान किया। प्रथम जुररों को, बाद में नगर परिषद बाऊल (Boule) के लिए भी तथा तत्पश्चात् सभी प्रशासनिक पदों के लिए भी वह ही डेलियन संघ को साम्राज्य में बदलने का जिम्मेदार था तथा उसी ने इरानी साम्राज्य के विरूद्ध युद्ध बन्द किए।

पेरीक्लीज का विचार था कि साम्राज्य के लिए एक कर देने वाले राज्यों की जरूरत थी तथा उसने अपने इन साम्राज्यवादी विचारों के साथ यूनान में लोकतंत्र तथा यहां की संस्क ति को सम द्ध किया। सर्वप्रथम उसने डेलियन संघ के अतिरिक्त पैसे से एथेंस में सार्वजनिक भवनों का निर्माण शुरू किया तथा पहले के चूने के पत्थर के स्थान पर Mt. Pentelicus पैन्टीलिकस पर्वत से निकाले संगमरमर से मन्दिरों का निर्माण किया। जिनमें नई इमारत पारथेनोन थी जिसमें सोने तथा हाथी पांत की

ऐथना Athena की प्रतिमा लगवाई थी। गढ़ी (Acropolis) पर पश्चिमी क्षेत्र में भी बड़े-बड़े भवन तथा मन्दिर बनवाए। एक बड़स Concerty Hall जो कि टैन्टनुमा था बनवाया। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक जिमनेजियमों तथा स्नानागारों का निर्माण करवाया।

वह एक योग्य शासक था तथा लोगों से अधिक मिलता जुलता नही था। परन्तु एक अच्छा वक्ता था। जिस कारण वह अपना पक्ष असैम्बली में बेखूबी प्रस्तुत कर मनवा लेता था। तथ इसी बल पर वह 15 वर्षो तक नेता चुना जाता रहा। थूसीडाइडस ने 431 ई०पू० मे स्पार्टा से युद्ध के पहले वर्ष में म त सैनिकों को दी गई श्रं दाजलि के भाषाण को उसकी व्यक्तिगत सता का प्रतीक माना गया है उसने लोकतंत्र की मुख्य विशेषताओं का भी जिक्र किया।

पेराक्लीज लोकतंत्र की विशेषताएंः-
(Characterstics of Democratic Perincles)

स्पार्टा संविधान के विरूद्ध एथेंस दुनिया से काफी खुला और धुला मिला था। एथेंस की नागरिकता को पैरीक्लीज ने काफी कठिन बना दिया था, इसके लिए माता-पिता दोनों का ही एथेंस नागरिक होना अनिवार्य था। इसने एथेंस वासियों और विदेशियों के विवाह संबंधों पर रोक लगा दी। इसके अलावा उसने विदेशियों को भी एथेंस यापीरइयूस (Priraeus) में बसने को प्रोत्साहित किया और उनसे अच्छे व्यवहार का आश्वासन दिया। इसने प्रशिक्षित और अप्रशिक्षित दोनों वर्गो के कारीगरों को एथेंस के व्यापार सेवा कुछ गिने-चूने लोगों तक ही सीमित नही थी बल्कि इसे सभी नागरिकों का एक कर्तव्य बना दिया गया। उच्च और निम्न वर्ग से इसके सदस्य चुने जाते थे। Boule बाऊल के 500 सदस्य प्रतिवर्ष इसी तरह चुने जाते थे। तथा इस तरह वह लोकतंत्र को उच्च स्तर तक ले गया। तथा सभी नागरिक कभी ना कभी इसके सदस्य बन जाते थे। यह संस्था थी। जिसमें सभी सदस्यों को समान वोट का अधिकार था। यहां पर नीति-निर्धारण किया जाता था। तथा debate द्वारा फैसलें किए जाते थे। स्वतंत्र वोट, सभी के असैम्बली के संबोधन के अधिकर तथा वही लिए फैसलो के कारण सही मायनों में लोकतंत्र की स्थापना की गई थी।लेकिन इससे भी महत्वपूर्ण था इसके लिए सभापति का लाटरी द्वारा चुना जाना। और बाऊल के किसी सदस्यों में से ही चुना जाता था। असैम्बली की मीटिंग एक खुले स्थान पर होती थी तथा इसका Quorum कोरम 6000 था। थूसीडाडस का कहना है कि कहने को तो पेरीक्लीज का लोकतंत्र का नाम का ही था, क्योंकि इसमें एक ही व्यक्ति का राज्य चलता ह। परनतु फिर भी अनुसार यह पैरीक्लीज का स्वर्णिम युग था। स्वयं पेरीक्लीज का भी उसी प्रकार से अपना चुनाव करवाना होता था जैसे अन्यों को असैम्बली में यद्यपि वह अपनापक्ष मनवा लेता था। परन्तु वहां वह नकारा भी जा सकता था।

विदेश नीति :-
(Foreign Policy)

पेरीक्लीज ने एथेंस के साम्राज्य का विस्तार कर उसके प्रभाव को बढ़ाया। इसके लिए उसे स्पार्टा के साथ संघर्ष से बच उसे प्रभावहीन करना था। इसने साइमन की स्पार्टा से मैंत्री नीति का विरोध किया। स्पार्टा के शत्रुओं से थेलसी एवम् अर्गोस से मित्रता थी। मेगारा को कोरिंथ के आक्रमण से बचा कर एथेंस की स्थिति मजबूत की। बायोंसिया में थिब्स के अरिरिक्त बस नगर राज्यों मे जनतांत्रिक व्यवस्था लागू कर दी। फयोसिस को अपना मित्र बनाया तथा इरान से केलियस की संधि कर 449 ई०में युद्ध समाप्त कर दिया तथा इरानी सम्राट ने एथेंस पर आक्रमण न करने का वचन दिया। उसने डेलियस संघ के सदस्यों की प्रभुसता को धीरे-धीरे समाप्त कर सम्राज्य का अंग बना लिया। डेलियन वार्षिक चंदे का रूप वार्षिक कर में बदल गया। इसके अतिरिक्त संघ के सदस्य राज्यों के गंभीर मामलों की सुनवाई एथेंस में करने के प्रावधान तथा अंत मे एथेंस के सिक्के, नाप-तौल सभी नगरों मे लागू करन से संघ संघ ना रहकर साम्राज्य का अंग बना गया। इसी बीच 445 में उसने स्पार्टा से तीस वर्ष की संधि कर शांति युग की शुरूआत की। तथा अपना सारा ध्यान व्यापार और आर्थिक सम द्धि की ओर दिया।

एंथेंस लोकतंत्र में लोगों की सम द्धि साम्राज्य की शक्ति पर निर्भर थी। एथेंस के धन को यही पर खर्च किया जाने लगा। इसके अतिरिक्त सरकारी सेवा के लिए वेतन देने तथा बड़ा समुद्री बेडा रखने के लिए काफी धन खर्च होता था। इसके लिए सहयोगी नगर राज्यों का उनकी सुरक्षा के लिए दिए जाने वाले चन्दे को बढ़ाया गया। इस कारण अर्थव्यवस्था की स्थिति में सुधार हुआ। पैराक्यूज उस काल की एक प्रमुख बन्दरगाह बन गई जहां औक्सीन, फ्यूनिशिया, मिश्र कार्थेज तथा यूनान के सभी नगर राज्यों से सामान आता था। यह व्यापार इरानी युद्ध के खतरों की समाप्ती से और भी बढ़ गया। इससे न केवल ऐथेंस मे ही सम द्धि आई बल्कि उसके सहयोगी नगरों की भी अर्थव्यवस्था का विकास हुआ। लेकिन इसके बदले उन्हें अपनी स्वतंत्रता खोनी पड़ी क्योंकि वे अब एथेंस के सहयोगी नही बल्कि उनकी प्रजा बन गए थे।

प्रशासनिक सुधार :-
(Administrative Reforms)

इस काल में हुई जनसंख्या व द्धि के कारण प्रशासन को सभालने के लिए अनेक कर्मचारी नियुक्त किए गए जिन्हें Archont आर्केन्टस कहा जाता था। कभी-कभी ये अकेले या फिर पांच भी नियुक्त किए जाते थे। इनके साथ सुरक्षा कर्मी तैनात होते थे तथा इन्हें नगरों की गढ़ी पर नियुक्त किया जाता था। ताकि किसी भी अप्रिय घटना को रोका जा सके। नगर मे विद्रोह को संभालने के लिए सेना भेजी जाती थी। इसके अतिरिक्त नगर मे एक कमिशनर एपिस्कोपाई (Epikskopai) भी भेजे जाते थे। नगरों में या वही पर अपनी उपस्थिति देते तथा एथेंस को सूचित करते थे। इसके अरिरिक्त एथेंस को कानूनी न्यायलयों को म त्युदण्ड, देश निकाला, संपति हथियाना तथा नागरिकता समाप्ती हेतु सभी मामलों का अधिकार दिया गया।

इस प्रकार पैरीकलीज काल में लोकतन्त्र अपने शिखर पर था प्रशासन पूर्णतः जनतांत्रिक हो गया था। देश में शांति और आर्थिक सम द्धि का काल था। सार्वजनिक भवन, मन्दिर तथा बड़े -बड़े हाल इत्यादि का निर्माण किया गया। एंथना की पूजा का विकास हुआ कला, स्थापत्य का विकास हुआ। विज्ञान में भी कई प्रसिद्ध वैज्ञानिक आविष्कार इस काल में हुए। साहित्य, नाटक, रंगमंच और काव्य में भी काफी सम द्धि हुई।

पेलोपानिशियन युद्ध अथवा एथैंस में लोकतन्त्र की समाप्ती
(Peloponasian Wars and End of Athanian Democarcy)

एथेंस और स्पार्टा नगर राज्यों में दो अलग-अलग विचारों और जातियों के लोग निवास करते थे। एथेंस में आयोनियन निवासी थे तथा स्पार्टा में डोरियन निवासी थे। इन नगरों पर जब बाहरी आक्रमण होता तो ये संयुक्त रूप से उनका मुकाबला करते अन्यथा ये आपसी संघर्ष मे उलझे रहते थे। एथेंस अधिक तथा नौसैनिक शक्ति के बल पर एक बड़ा साम्राज्य बना रहा था वहीं स्पार्टा से उसका संघर्ष निशचित था।

Samos (समोस) के आम्मसम्पर्ण के पांच वर्ष पश्चात् उतर-पश्चिम में कई ऐसी घटनाएँ घटित हुई जिसके कारण स्पार्टा के नेत त्व वाले पैलेपोनशियाई संघ तथा एथेंस के डेलिन संघ में युद्ध शुरू हो गया। एथेंस साम्राज्य विस्वार कर रहा था जिससे स्पार्टा को ईष्या और खतरा होना स्वाभाविक था। 436 ई० पू० में एथेंस Ennea Hodoi (एन्निया होडोइ) में अपनी बड़ी कालोनी स्थापित करने में सफल हो गया तथा उसने इसे Emphipolis एम्फिपोलिस का नाम दिया। इसके बाद पेराक्लीज ने स्वयं Euxime एइयूक्षीम के विरूद्ध अभियान का नेत त्व कर अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया तथा Sinope -सीनोप के अत्याचारी शासक को हटा दिया। 435 में जब कौंरिथ तथा कोरसीयरा के मध्य युद्ध शुरू हुआ तो युद्ध के बढ़ने का खतरा बना। समुद्री युद्ध में कोरिंथ को अपमानजनक हार के पश्चात् उसके एक बड़ा बेडा कोरसीयरा, जो किसी के भी पक्ष में नही था, इसने एथेंस से सहायता की अपील की एथेंस ने उसे यह विश्वास दिलाया कि यदि वह हार की स्थिति में हुआ तो एथेंस उसे मदद करेगा। जब साइबोटा (Sybota) के युद्ध में कोरसीरिया की हार का खतरा बना तो एथेंस के समुद्री बेड़े मेंदखल किया जिस कारण कोंरिथ को वापिस जाना पड़ा। इसके बाद एथेंस में Postidaean पोटीडियन में विद्रोह प्रारम्भ किया तथा एथेंस ने Megara मेगारा पर यह आरोप लगया कि वह उसके भागे दासों को शरण दे रहा है ओर पेरीक्लीज ने एक आदेश जारी मेंगारा के निवासियों को अपने बन्दगाहों और बाजारों से निकल जाने को कहा।

432 ई० मे जब एथेंस की सेनाएं पोरडीयां की फेराबंदी कर रही थी तब कौंरिथ तथा पैलोपोनिशियन संघ के दूसरे सदस्यों ने स्पार्टा पर युद्ध करने का दबाव डाला। स्पार्टा के राजा आर्कीडेमस ने कुछ स्थिति की समीक्षा की और सलाह दी परन्तु अधिकतर सदस्य युद्ध चाहते थे। इसलिए 432 ई० के अंत में युद्ध का निर्णय लिया गया, स्पार्टा और एंथेस के बीच हुए युद्ध को पैलोपोनिशियन युद्धो के नाम से जाना जाता है। यह युद्ध 431 ई०पू० से 404 ई०पू० तक चला। एथेंस का नेत त्व पेरीक्लीज ने किया तथा 300 जहाजी बेड़ों और सैनिकों ने इस युद्ध में भाग लिया। पेराक्लीज की नीति थी कि स्पार्टा से आमने सामने युद्ध न हो, एट्टीका को खाली करके वहां शरण ली जाए। एथेंस जहां समुद्री शक्ति से शक्तिशाली था वहीं दूसरी ओर स्पार्टा की यही कमजोरी थी। परन्तु एथेंस के 13000 सैनिकों के मुकाबले पैलोपोनशियाई संघ के 30000 सैनिक थे। प्रथम वर्ष में स्पार्टा के राजा आर्कीडेमस ने एट्टिका पर युद्ध कर उसे ध्वस्त कर दिया तथा एथेंस उसे देखता रहा। इसी बीच एथेंस के 100 जहाजों के समुद्री बेड़े ने पेलोपानेशिया केचारो ओर चक्कर लगागर कुछ ही स्थलों पर धावे बोले। इसी बीच एथेंस मे Plague प्लेग फैल गया जिस कारण इनकी 1/4 जनसंख्या की मौत हो गई। इस कारण एथेंस का मनोबल टूट गया और उन्होनें

स्पार्टा से सन्धि करनी चाहिए। एथेंस ने पेरीक्लीज को नेत त्व से हटा दिया परन्तु वह पुनः चुन लिया गया तथा 429 ई०पू० में उसकी म त्यु हो गई।

इसके बाद Cleon क्लेयीन का एथेंस मे उदय हुआ। एथेंस के एक बेड़े ने सीसली तथा मेसीमिया में सैनिक तैनात किए ताकि वे स्पार्टा के हेलोटों को विद्रोह के लिए उकसाएं। तब स्पार्टा ने अपनी फौज से एट्टिका पर आक्रमण कर दिया। लेकिन एथेंस की फौज ने स्पार्टा को आत्मसम्पर्ण करने पर मजबूर कर दिया। इसके बाद युद्ध काफी घमासान हो गया। 424 ई०पू० मे कांरिथ पर आक्रमण करके एथेंस ने लकोनिया पर अधिकर कर लिया। इसके बाद डेलियम के युद्ध ने ऐथेंस की हार हुई। स्पार्टा के जनरल Brasidas ने एम्फोयोंलिस Amphopolis पर अधिकार कर लिया। परन्तु 422 ई०पू० में Cleon मे एथेंस की सेना का नेत त्व किया। परन्तु युद्ध मे ंवह मारा गया इसके बाद एथेंस तथा स्पार्टा में सन्धि हुई जिसके अनुसार दोनों एक दूसरे के युद्ध बेदी छोड़ देगे। स्पार्टा को पारलोस तथा एथेंस को एम्फीपोलिस पुनः प्राप्त हुए। इस सन्धि को Nicias नीसियस की सन्धि कहा जाता है। जिसके स्पार्टा ने अपने सहयोगी कोंरिथ के सोलुयम तथा एनाक्टोरियम एथेंस से वापिस नही दिलवाएं। इस बात से नाराज होकर कोंरिथ ने तीसरा संघ बनाने की सोची। तथा आर्गोस और पेलोपोनेशयन संघ के अन्य सदस्यों को अपने साथ मिलाने की सोची। 420 ई०पू० Alcibides - अलसीबिडेज ने को स्पार्टा के दो सहयोगियों Mantinea तथा Elis को डेलियस संघ में सम्मिलित करने को कहा। इस प्रकार दोनो रेवमों की सेनाएं एक दूसरे के सामने आई 418 ई०पू० में । परन्तु अपनी इस नीति में असफल होकर एथेस ने 416 ई०पू० में जब मेलोज को एथेंस ने अपने संघ में आने को कहा तो उसने जबाब दे दिया। इस पर उसे सैनिक कार्यवाही कर आत्म सम्पर्ण करने पर मजबूर किया। 415 ई०पू० में एथेंस ने सिसली पर पुनः अधिकार जमाने की कोशिश की इस बार एथेंस का बेडा पूरी तरह नष्ट हो गया तथा सेना हार गई। स्पार्टा अपनी सेना अब एट्टिका तक ले आया और एथेंस से 12 मिल दूर Decelea में डेरा डाल लिया। एथेंस के 20,000 दासों मे एटिका छोडकर स्पार्टा की शरण ली। यहां चांदी की खानों का खनन कार्य बंद होने के कारण आर्थिक तंगी हुई। साथियों के विद्रोह के बावजूद भी एथेंस में लडाई चलती रही। 411 ई०पू० में स्पार्टा को विजयें मिली। जब स्पार्टा का बेड़ा पंहुचा तो वहां एथैस की सेना कुछ ना कर सकी और Euboea ने विद्रोह कर दिया। इसके बाद एथेंस बेडे ने एक लडाई मे ंस्पार्टा के बेडे को Cyzicus मे हरा दिया तथा हैलिस्पोंट तथा प्रोपोन्टीज नगरों को दोबारा जीत लिया।

407 ई०पू० एलसीबियाडीज पुनः एथेंस पहुंचा तथा उसने स्पार्टा की कमान संभाली लेकिन वह हार गया। तथा चेरसोनीस के किले में शरण ली जहां से वह एथेंस की बर्बादी देखता रहा। 406 ई०पू० में स्पार्टा के सबसे बहादुर जनरल Lysandor ने नोट्रियम का युद्ध जीत लिया। इसके बाद 404 ई०पू० में एथेंस की घेराबदी की गई तथा धीरे-धीरे एथेंस के सभी साथी केवल Samos को छोड़कर आत्मसम्पर्ण कर गए। जब घेराबंदी के कारण भूखा मरने की नौबत आ गई तो Theramenes को स्पार्टा से संघि के लिए भेजा गया। इस प्रकार युद्ध समाप्त हुआ। परन्तु संधि की शर्ते एथेंस के लिए अपमानजनक थी। एथेंस मे 30 सदस्यों का एक कमीशन गठित हुआ जिसमे दस लाइन्डर मनोनीत थे, जिससे नई सरकार का गठन हुआ और जनतंत्र समाप्त हो गया।

इस युद्ध की समाप्ती के बाद भी युनान के नगर राज्य आपस में संघर्षरत रहे। स्पार्टा की प्रतिष्ठा काफी बढ़ गई थी यद्यपि एथेंस यूनान के सांस्क तिक केन्द्र के रूप मे ंकाफी प्रतिष्ठीत था। लेकिन राजनैतिक तौर पर शक्तिशाली नही बन पाया। 359 ई०पू०तक आपसी युद्धों के कारण प्रमुख यूनानी नगर राज्यों का क्षय शुरू हो गया। विजय के बाद स्पार्टा ने यूनानी नगर राज्यों को अपने अधीन कर लिया और अनकी लोकतानत्रिक सरकारों की समाप्ती कर उन्हे भारी कर देने पर बाध्य किया। यूनानी नगर राज्यों को लगभग तीन दशका तक स्पार्टा का अधिपत्यं सहना पडा। 371 ई०पू० मे थीएस ने ल्यूक्टा के युद्ध में स्पार्टा को हरा थीएस पर प्रभूत्व कर लिया जो काफी अलोकप्रिय रहां 362 में इनक राजा एपामिनोडास की मेन्टीमिया के युद्ध में मुत्यु के बाद कीतिज का प्रभूत्व समाप्त हो गया इसी बीच मैंसे डोमिया के फिलिप II 359-36 की सेना न इलादिया तथा थ्रेस को जी 338 ई०पू० में ऐथेंस ओर थब्स की संयुक्त सेना को केरोनिया युद्ध में हरा दिया। केवल स्पार्टा ही बच सका। 336 ई०पू० में फिलिप काफ्रा एलैग्जैंडर राजा बना। इसी समय थीएल ने विद्रोह कर दिया जिसे एलेग्जैंडर ने हरा 335 ई०पू० में पूर्णतः नष्ट कर दिया। उसके बाद उसने पश्चिमी एशिया तथ इरानी को विजित किया। 331 ई०पू० मे उसने बेबीलोन, सूसा, पेसरगंडाई तथा पीसेपालिस को जीत लिया। 330 ई०पू० में पूर्वी इरान, 328 ई०पू० सीस्तान, एराकोसिया, बैक्ट्रिया को जीता। उसके बाद सोग्डियाना को जीता, 326 ई. में सिन्धु नदी को पार किया तथा उसके बाद वह व्यास नदी के तट पर पहुंचा।इसके बाद अपनी सेना के साथ वापिस यूनान चल दिया। लेकिन रास्ते में ही बेवीलोमिया मे उसकी म त्यु हो गई। उसके पश्चात् सैल्यूकस हो इरान, मैसोपोटामिया तथा सीरिया मिलाकर टालमी को मिश्र फिलीसतीन तथा फयूनीशिय मिला। टाल्मी ने एल्क्जेडि या -Alexzendria में एक क्यूज्यिम Meseum बनवाया। यहां एक वैद्य शाला तथा पुस्तकालय बनवाया और अपने साम्राज्य में आने वाली प्रत्येक पुस्तक की एक प्रति यहां भिजवानें का आदेश दिया।

इसी बीच यूनानी नगर राज्यों ने पुनः स्वतंत्र होना प्रारम्भ कर दिया। परन्तु द्वितीय शताब्दी ई.पू. में रोम के साम्राज्य विस्तार पूर्व की ओर होना शुरू हुआ तथा 30 ई०पू० तक सारा यूनान रोम का हिस्सा बन गया।

यूनान की देन
(Legacy of Greece)

यूनानियों ने इतिहास में एक नए द ष्टिकोण की शुरूआत की। यूनान में इतिहास लेखन से अभिप्रायः केवल राजाओं के कार्य, विजयें और तिथियां इत्यादि नही था बल्कि वे यह जानना चाहते थे कि वे ऐसा क्यों करते है। उनके अनुसार इतिहास मानव व्यवहार का अध्ययन है। यूनान में Herodotus हेरोडोटस को इतिहास का संस्थापक माना जाता है क्योंकि इसी ने सर्वप्रथम तथ्यों को इक्कठा कर उन ऐतिहासिक तथ्यों का विश्लेषण किया। इसने यूनान पर्शियन युद्धों का विस्त त वर्णन लिखा है। एक अन्य इतिहासकार Theory dides - थूसीडाइडेस ने हेरोडटस के इस इतिहास लेखन तरीके में सुधार करके अपनी क ति पेलोपोनिशियन युद्धों के इतिहास में उन्हीं तथ्यों को रखा जिन्हें वह प्रमाणित कर सकता था। उसने बिना पक्षपात के इन युद्धों का विस्त त विवरण दिया है। इस प्रकार उसने बाद के इतिहासकारों के सम्मुख पक्षपात रहित इतिहास लेखन का उदाहरण प्रस्तुत किया।

यूनानी दर्शन :-
(Sleek Philosophy)

यूनान में ज्यादातर नागरिक क षक थे लेकिन कुछ नगर-राज्यों विशेषकार एंथेस में व्यापार काफी उन्नत था। यूनानी नगरों में एक तो गढ़ी का क्षेत्र था जो चारों ओर से सुरक्षित था बाकि शहर छोटी-2 गलियों के आसपास बसे होते थे लेकिन इनमें व्यवस्था की कमी थी। पेलोपोनिशियन युद्धों के दौरान यहां गदंगी फैली होने के कारण भंयकर प्लेग फैल गई थी। राज्य की 1/4 जनसंख्या की मौत हो गई थी। शहर का जीवन बाजार के आसपास केन्द्रित था।

यूनानी अच्छी जलवायु होने के कारण ज्यादातर समय बाहर ही व्यतीत करते थे। लोग बाजारों में प्रतिदिन मिलते थे और वहीं आसपास की दुनियां के बारे में विचार-विर्मश करते थे। ये वर्तमान जीवन में दिलचस्पी रखते थे ना कि म त्युपरांत जीवन में। इन सार्वजनिक विचार-विमर्शो के कारण यूनान में राजनीति तथा दर्शन की एक प्रथा की शुरूआत हुई। यूनानी लोग दुनियां और उसके लोगों के बारे में जानने को उत्सुक रहते थे।

इनके अनुसार Reason - तर्क द्वारा महत्वपूर्ण सच की खोज की जा सकती है। एक युनानी विद्वान Protagoras- प्रोटोगोरस ने कहा था कि मनुष्य ही सभी चीजों का मापदण्ड है। उनका मानव की योग्यता में विश्वास था। इसी कारण वे दुनिया के स्वरूप के बारे में प्रश्न उठा सके। 7 वीं श० ई०पू० में कुछ यूनानी दार्शनिकों ने परम्परागत व्याख्याओं से हटकर सोचना शुरू किया। जैसे चीजें कैसे घटित होती है। उनके घटित होने के नए कारण देने शुरू किए। ये लोग मानते थे कि प्रत्येक घटना के पिछे देवी-देवताओं का हाथ नही होता। घटनाएं प्राक तिक तरीके से घटती है। यूनान में इस प्रकार के विचारकों को Seekers of Wisdom या दार्शनिक कहा जाता था। परम्पराओं के अनुसार Thales- थेलीज पहला यूनानी दार्शनिक था जिसका समय 600 ई०पू० के आस-पास था। उसने यह मत रखा था कि पानी ही जीवन का आधार है तथा धरती पानी से बनी है और पानी के ही अलग-2 रूप हवा, सूर्य, सितारें तथा ग्रह हैं हांलाकि उसका सिंद्धात तर्क संगत नही था लेकिन उसने लोगों का ध्यान इस विचार से हटा दिया कि दुनिया देवी-देवताओं से बनती है। इस प्रकार यूनान में एक वैज्ञानिक द ष्टिकोण का प्रांरभ हुआ। यूनानी दार्शनिक मानव ज्ञान के सभी पहलुओं जैसेः भौतिकी, ज्योतिष, संगीत और कला इत्यादि का अध्ययन करते थे।

पाइथागोरसय एक संगीतज्ञ, गणितज्ञ और ज्योतिष था। तब उसने ज्यामितिय के अध्ययन के साथ-2 सूर्य, चन्द्रमा और ग्रहों की गति पर भी विचार दिए। यहां के दार्शनिकों द्वारा किए गए तर्क और अध्ययन के कारण मैडिकल विज्ञान में भी उन्नति हुई। यूनानी चिकित्सकों ने बिमारियों के लक्षण तथा उसकी विभिन्न अवस्थाओं का अध्ययन करके यह बताया कि बिमारियों के प्राक तिक कारण होते है, बुरी आत्माओं का प्रकोप नही। Hippocrates हिप्पोक्रेटस ने चिकित्सकों को ऊंचे नैतिक स्तर बनाए रखने पर जोर दिया। आज भी चिकित्सक उसकी शपथ लेते है.... "मैं बिमार के लिए उपचार अपनी योग्यता और न्याय से करूंगा जो कि बीमार के लिए लाभप्रद हो। मैं कोई गलत दवाई नही दूंगा"..... इत्यादि।

पेलोपोनेशियन युद्धों के बाद सोफिस्ट नामक नया दार्शनिक स्कूल प्रारंभ हुआ। जिसका मुख्य ध्येय राजनैतिक तथा सामाजिक सफलता प्राप्त करना था। इन्होंने सार्वजनिक भाषणों की कला, वाद-विवाद और समझौता इत्यादि लोगों को सिखाया। सुकरात ने तर्क का प्रतिपादन किया था वह एक प्रश्नोतरी दार्शनिक के रूप में जाना जाता है। इसके अनुसार मुनष्य तर्क द्वारा ही ज्ञान और सच्चाई प्राप्त कर सकता है। इसके पश्चात् इसके शिष्य Plato- प्लेटों ने अपनी एकादमी शुरू की जो 900 वर्षो तक चलती रही तथा प्राचीन विश्व में ज्ञान का एक महत्वपूर्ण केन्द्र रही अपनी पुस्तक The Republic में उसने एक आदर्श राज्य का सिंद्धात प्रतिपादित करके दार्शनिक राजा को उचित ठहराया। प्लेटों की इस एकादमी का सबसे प्रसिद्ध दार्शनिक एरिस्टोटल-Ariestotal था जिसे मैसेडोनिया के फिलिप II ने सिकंदर को पढ़ाने के लिए बुलाया था। सिकंदर ने उसे काफी धन दिया जिससे उसने एथैंस में एक स्कूल Lyceuam- लीसीयम स्थापित किया। यह विश्व की प्रथम वैज्ञानिक संस्था बनी। अरस्तु का विचार था कि तर्क सर्वोच्च सच है। उसने आत्म केन्द्रित गुणों की प्रंशसा की। वह न केवल एक तर्कशास्त्री था अपितु राजनैतिज्ञ, दार्शनिक, बायोलाजिस्ट तथा कलाकार भी था।

साहित्य तथ ड्रामा :-
(Literature and drama)

प्राचीन यूनान में धर्म, ड्रामा तथा कविता आपस में नजदीकी तौर पर संबधित थे। उदाहरण के तौर पर Dionysus डायनिसस की वेदिका के चारों और मन्त्रों के उच्चारण की प्रथा से ड्रामा, कविता का विकास हुआ। ऐसा माना जाता है कि एथेंस के कवि थेसपीस-Thespis ने दुनिया का पहला ड्रामा बनाया जब उसने समारोह में अलग-2 पात्रों को अलग-2 बोलने के हिस्से दिए। 5 वीं सदी ई०पू० में एथेंस के ड्रामा लेखक प्रतिवर्ष डायोनिसस के समारोह में इनामी प्रतियोगिता में भाग लेने लगे। यूनान के ये ड्रामें बाहरी थियेटरों में पेश किए जाते थे।

दुखांत नाटक :-
(Tragedies)

प्रारंभिक यूनानी नाटक दुंखात थे इनका अंत सुखी नही होता था। ५ वीं सदी ई०पू में तीन महान दुंखत नाटककार हुए इनमें ।मेबीलसने प्रमुख था। वह साहित्यकार के अलावा कुशल योद्धा भी था जिसने मेराथन, सलामीज तथा प्लेटाई युद्धों में भाग लिया। इसके ८० नाटकों में से ७ उपलब्ध है। इनमें से 'प्रोमेथियस बाउण्ड' प्रमुख है, इसके नाटकों में लोगों तथा देवताअें के बीच संबध, हत्या बदला तथा दैवीय न्याय का मेल है।

सोफोक्लेज दूसरा प्रमुख नाटककार था। ओडीयस नाटक में इसने दिखाया कि किस प्रकार तकदीर व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करती है। इसके नाटक निराशावादी थे।

यूरीपीडेस तीसरा प्रमुख नाटककार था। इसने देश की धार्मिक कुरूतियों, परम्पराओं तथा स्त्रियों की दयनीय अवस्था, दासों पर अत्याचार और युद्धों की घोर अलोचना की। इसकी क तियों में स्त्रियों के प्रति सहानूभूति थी।

सुखांत नाटक :-
(Comedies)

दुःखान्त नाटकों की भांति इनका प्रचलन भी एथेंस द्वारा डायोनिसस के सम्मान में दिए जाने वाले समारोह में हुआ। आरिस्टोफेनस प्रमुख सुखान्त नाटककार था जिसने अपने नाटकों The Birds, The Clouds, The Frogs में यूनानी जीवन, राजनैतिज्ञों, दार्शनिकों, कवियों यहां तक की दर्शकों का भी मजाक बनाया।

कविता :-
(Poetry)

पेरीक्लीज युग का प्रमुख कवि पिण्डार था। इसने odes लिखी तथा इनमें से कुछ में इसने ओलम्पिक के एंथेस की प्रंशसा की। Sappho- सेफोह नामक कवियित्री ने गीत के रूप में कवितांए लिखी।

धार्मिक उत्सव एवम् विश्वास :-
(Faith & Religion Ceremony)

यूनानियों ने अपने देवी-देवताओं के बारे में काफी मिथ्या कहानियां जोड़ी हुई थी। उनके 12 शक्तिशाली देव थे जिन्हें अेसमपियन देवों के नाम से जानते है। इनमें प्रमुख देव Zeus जीयस विश्व पर राज्य करता था तथा पोसीडान समुद्र देव था,

हडेज पाताल देव थे ये दोनों जीयस के भाई माने जाते थे। इनकी बहन हेस्तिया-Hestia अग्नि की देवी थी। जीयस की पत्नी हेरा विवाह की देवी थी, एथेना, एथेंस की देवी थी जो उनकी रक्षा करती थी। Artemis, जंगलों और लकड़ी की देवी, Hermes हारमीज देवताओं का दूत था। इसके अलावा डायोनिशस (शराब का देव) की पूजा से ही यूनानी ड्रामा और साहित्य का विकास हुआ।

ओल्मिपक खेल :-
(Olympic Game)

यूनानियों का एक महत्वपूर्ण देव अपोलो था, जो सूर्य देव था। इसे भविष्यवाणी का देव भी मानते थे। एथेंस के बहुत से धार्मिक समारोह में खेलों के भी कार्यक्रम होते थे। प्रत्येक चार वर्ष में वे एक बार ओल्मपिया में जीयस के सम्मान में इक्कठे होते थे जहां खेलों की प्रतियोगयतांए होती थी। जिनमें सभी यूनानी नगर राज्यों के लोग भाग लेते थे तथा इनके कारण वे आपसी युद्ध भी रोक देते थे। जीत का काफी महत्व था इससे उसके नगर का सम्मान बढ़ता था। होमर ने कहा है कि हमेशा प्रथम रहो तथा दूसरों से आगे बढ़ो इन ओल्मपिक खेलों में व्यक्तिगत खिलाडी र्स्पधाएं थी ना कि टीम र्स्पधा। स्त्रियां अलग खेलों में हिस्सा लेती थी, जिन्हें हेरेका कहा जाता थ।

प्राचीन ओल्मिपक खेलों का प्रारंभ 776 ई०पू० में हुआ था तथा 394 ई० तक चलते रहे जबकि रोमन सम्राट ने इन्हें बंद करवा दिया। 1896 ई० में इनका प्रारंभ एक फ्रांसीसी पेरी द कुर्बीटन ने करवाया। आज भी प्रति चतुर्थ वर्ष इन खेलों को आयोजन होता है।

वास्तुकला :-
(Architecture)

यूनान के मंदिरों के स्तंभों को तीन प्रकार के अंलक त नमूने से सजाया जाता था। एक था डोरिक, दूसरा आयोमिक तथा तीसरा कोरिम्थिन। डोरिक नमूने में स्तम्भ साधारण तथा भारी थे जबकि आयोनिक में स्तम्भों का आधार अलंक त था तथा ऊपरी भाग सींग की भांति था जबकि कोरिन्था के नमूने में ऊपरी भाग पर बेल-बूटियां बनी थी।

यूनानी काफी सुन्दर मूर्तिया बनाते थे, जो भावपूर्ण होती थी। प्राचीन काल के कौरोई में सामान्यतः यूनानी देव अपालों की मूर्तियां बनाई जाती थी। इन मूर्तियों में गतिशीलता थी मानों ये चल रही हो।

इन्होंने अपने बर्तनों पर बहुत सुंदर चित्रकारी की होती थी। एक अग्रेंज कवि इनकी चित्रकारी से इतना प्रभावित हआ कि उसने एक कविता ode on a gracian Orn लिखी। इसके अलावा Zeuyis तथा Parrhasius 5 वीं सदी ई०पू० के दो प्रसिद्ध चित्रकार थे जिनके बारे में रोमन इतिहासकार टिलनी ने काफी लिखा है। यूनान की कलाक तियों की बाद में रोमन चित्रकरों ने नकल की।

विज्ञान :-
(Science)

इस क्षेत्र में भी इन्हांने काफी उन्नति की। इनके लिए विज्ञान और दर्शन एक समान थे। बहुत से दार्शनिक अच्छे वैज्ञानिक भी थे। गणित, और विशेषकर ज्यामितिय में इनका योगदान अभूतपूर्व था। आज भी Euclid इयूक्लिड तथा पाइथागोरस के कार्य विज्ञान के विषयों के पढ़ाए जाते है। इसके अतिरिक्त आर्किमिडीज का सिंद्धात भौतिकी में आज भीउतना ही ठीक है जितना उस काल में था। इसके सिंद्धातों पर ही Law of Gravity गुरूत्वाकर्षण के सिद्धांत का विकास हुआ। उसने ही सापेक्षिक घनत्व-Specific gravity का सिद्धांत प्रतिपादित किया। सिकन्दरीया के Heron- हैरान ने कई मशीन, पानी निकालने का पम्प तथा कई प्रकार के वाद्य यंत्र बनाए और भाप इंजन भी इसी ने बनाया। ज्योतिष और खगोलशास्त्र मे भी काफी उन्नति हुई। थेलिस ने सर्वप्रथम सूर्यग्रहण के बारे में बताया। अरिस्टाकर्स ने बताया कि सूर्य स्थिर है और अन्य नक्षत्र इसके चारों ओर घूमते है। उसने प थ्वी से चन्द्रमा की दूरी का सही अन्दाजा लगाया। इसी ने बताया कि यूरोप से भारत कैसे पश्चिम की ओर समुद्र में से कैसे पंहुचा जा सकता है। कोलम्बस ने इसी के आधार पर मानचित्र बनाए।

चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में आज भी हिप्पोक्रेटीज को ही Father of Medicine माना जाता है। इसी ने आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की नींव रखी। Herophilus- हैरोफिलस ने दिमाग का ज्ञान दिया तथा मानव शरीर में धमनियों द्वारा खून के प्रवाह का भी सर्वप्रथम उसी ने ज्ञान दिया। इसके अलावा चिकित्सा शास्त्री गैलन की पुस्तकों का प्रयोग हाल तक होता रहा है। वनस्पति शास्त्र में थियोफ्रेटस की देने उल्लेखनीय है। उसने 600 पेड़-पौधों का अध्ययन कर नए तथ्य प्रकाश में लाए थे।

अध्याय-2
रोमन सभ्यता
(Roman Civilization)

प्राचीन धारणाओं के अनुसार रोम की स्थापना रोमुलस तथा रमेस नामक दो जुडवां भाइयों ने की थी। रोमन कवि विरजिल (virgil) ने भी इससे मिलती-जुलती कहानी अपनी कविता इनीउहद (Aeneid) में बताई है कि ट्रोजन का नायक जब ट्राय (Troy) से विध्वंश होने के बाद अपने पिता को अपनी पीठ पर उठा कर ले गया तथा उसके बाद वह कई स्थानों पर गया और विजयें भी प्राप्त की। इसने इटली में एक कॉलोनी की स्थापना की जहां पर रोमुल्स तथा रेमस पैदा हुए। इनके ही नाम पर रोम का नामकरण हुआ। इउहद ने रोम को यूनानी तथा एशिया माइनर की सभ्यता से संबधित बताते हुए रोमनों को आश्वस्त किया कि वे भूमध्यसागरीय क्षेत्र में बाहर से आए हुए नही है।

जब यूनान में एंथेस पूरी तरह विकसित हो चुका था तब रोम इटली के पश्चिमी किनारे पर एक छोटा सा कस्बा था। 323 ई०पू० में एलक्जैंडर के साम्राज्य विजय के समय में रोम एक शक्तिशाली नगर राज्य के रूप में उभर रहा था।

यूनान में 2000 ई०पू० में जब ऐचियन लोग आ रहे थे तभी अन्य इण्डों-यूरोपियनो ने इटली पर आक्रमण किया। इन में लातिनी टाइबर नदी के दक्षिणी क्षेत्र में बस गए तथा 750 ई०पू० में इन्होंने पशुपालन जीवन का त्याग कर क षि करना शुरू कर दिया और अपने छोटे-छोटे गांव बसाए जो बाद में बढ़कर रोम के शहरों में परिवर्तित हो गए।

रोम की भौगोलिक स्थिति :-
(The Geographic Condition of Rome)

रोम प्रायद्वीप भूमध्यसागर में एक बूट के आकार का दिखाई देता है जिसकी नोक सिसली के द्वीप में प्रतीत होती है। इस बूटनुमा क्षेत्र के ऊपर अल्पस् पर्वत है, जो (Po) पो नामक नदी का पानी यहां के उतरी क्षेत्रों के क षकों को सिचांई के लिए देता है तथा (Apennines) एपैनीन्ज पर्वत श्रंखला समस्त इटली में फैली है। इन पर्वतों के कारण यह युनान के नगर राज्यों से प थक होता है। इटली के पूर्वी क्षेत्र की जमीन उपजाऊ नही थी और ना ही अच्छी बन्दरगाहें थी। इस कारण यहां कम जनसंख्या थी। पश्चिमी क्षेत्र में बन्दरगाहों एवम् लंबी-2 नदियों के कारण एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना आसान था इसलिए यहां जनसंख्या अधिक थी। रोम ने इसी समुद्र और नदियों के सहारे व्यापार और अनेक विजयों में उपलब्धियां हासिल की। रोम इटली के पश्चिम के उपजाऊ प्रदेश में स्थित है तथा यहां पर स्थित सात पहाड़ों से प्राचीन रोमन निवासी अपने शत्रुओं को दूर से देखकर सुरक्षा का प्रबंध कर सकते थे। रोम समुद्र 25 किलोमीटर दूर था, इस कारण भी समुद्र के रास्ते इस पर इतनी आसानी से आक्रमण नही हो सकता था टाइबर नदी इन्हें भोजन तथा यातायात में सहायक थी तथा इस के मुख पर रोमनों में (Ostia) ओस्टिया नामक बन्दरगाह स्थापित की।

प्राचीन रोम :-
(Ancient Rome)

जिन Latin (लातिनी) लोगों ने रोम की स्थापना की वे क षक और पशुपालक थे। प्रारंभ में ये कबीलाई लोग आपस में तथा अपने पडोसियों से लड़ते रहते थे। उनके इसी जीवन के लिए संघर्ष के प्राचीन काल से ही यहां के लोगों में कर्त्तव्य और अनुशासन तथा देशभक्ति की भावना उजागर हो गई। साथ ही दूसरे लोगों के सम्पर्क से रोमन संस्क ति का विकास हुआ। रोमनों ने फ्यूनिशिया तथा यूनान की उत्कर्ष सभ्यताओं से बहुत से नए विचार ग्रहण किए तथा सिसली और इटली में अपनी बस्तियां स्थापित की। यूनानियो ंसे इन्होंने किले बंद शहर बनाने सीखे, अंगूर और अंजीर की क षि का ज्ञान प्राप्त किया।

एशिया माइनर से इटली आने वाले (Etruscans) इट्रुस्केन लोगों ने भी रोमनों पर अपना प्रभाव छोड़ा। 600 ई०पू० के आसपास

इन्होने टाइबर नदी को पार कर रोम पर अपना अधिपत्य जमा लिया तथा अगले 100 वर्षो तक इन्हीं विजेताओं से रोम के लोगों ने बहुत कुछ सीखा। Alphabat वर्णमाला सीखी, इनके कला के नमूनों की नकल की तथा अपने देवों के अलावा उनके देवताओं की पूजा भी शुरू की। इन हमलावारों से इन्होंने वास्तुकला में मेहराब बनाना सीखा इसके अलावा दलदली भूमि को क षि योग्य बनाना भी इन्हीं से सीखा। छठी शताब्दी ई०पू० में इन विदेशियों की शक्ति सर्वोच्य पर थी, जब इन्होंने कार्थेज से समझौता किया ओर कोरसिका से ऐनानज को बाहर खेदड़ दिया। 535 ई०पू० में (Alalia) एललिए पर भी इन्होंने विजय प्राप्त की।

एट्रस्केनों की हार :-

रोम चूंकि पहाड़ियों पर स्थित गांवो का समूह था। यहां के लोगों को एट्रस्केनों के आक्रमण और आधिपत्य को झेलना पड़ा। इन विदेशियों ने यद्यपि रेाम में काफी विकास किया लेकिन रोमन इन्हें पंसद नही करते थे इसलिए इन्होंने संगठित होकर इनके विरूद्ध विद्रोह कर दिया। विद्रोह के कारण एट्रस्केनों यह क्षेत्र छोड़ कर भाग गए। इनके जाने के बाद रोम में गणराज्य की स्थापना की गई।

रोम का प्रारंभिक गणराज्य :-
(Early Republican Rome)

509 ई०पू० में रोमनों ने एट्रस्केनो को हरा कर गणराज्य की स्थापना की। इसके बाद सम्पूर्ण इटली पर अपना आधिपत्य जमा लिया। 509 से 133 ई०पू० के बीच रोम ने बहुत से युद्ध करके अपने राज्य का विस्तार किया। 390 ई०पू० में gauls - गाल्ज ने रोम पर आक्रमण किया और यहां अधिकार कर लिया। रोमनों ने इन विजेताओं को भारी हर्जाना दे कर शांति खरीदनी पडी। इस हार के बाद रोमनों ने अपने शहरों की किलेबन्दी कर दी और अपनी सेना को संगठित किया। सेना को बढिया अस्त्र-शस्त्र मुहैया करवाए गए जिसमें लंबी तलवारें, भाले प्रमुख थे। सेना की प्रत्येक लीजनज में 3000 सैनिक थे। इन्हें छोटी-छोटी टुकडियों में बांटा गया था ताकि आपातकाल में शीघ्रता से इन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजा जा सके। ये सैनिक इक्कठें तथा अलग-अलग यूनिटों में भी युद्ध करते थे।

सैमनाइटों पर विजय :-

चतुर्थ शताब्दी ई०पू० में रोम का राज्य अजैनानज पर्वतों तक फैल चुका था तथा साथ ही उसने अपने पुराने सहयोगियों पर भी वर्चस्व स्थापित कर लिया था। इसी समय उन्हें (Campania) कैम्पानिया में रह रहे सैम्नाइटों से संघर्ष करना पडा। 340-290 ई०पू० के बीच रोमनों को उनसे तीन युद्ध करने पडे और रोम ने विजयी होकर समस्त इटली क्षेत्र को अपने अधीन कर लिया तथा विदेशियों के विरूद्ध इटलियाई संघर्ष का नेता होने के कारण रोम सारे देश की एक छत्र ताकत बन गया था। उसने सारे इटली का रामनीकरण की प्रक्रिया शुरू कर दी। इसके लिए उसने इटली के विभिन्न राज्यों मं आपसी फूट डलवा कर अपना प्रभुत्व कर लिया लेकिन उनके अंदरूनी मामलें में हस्तक्षेप नही किया। जिस राज्य ने रोम के प्रति द्वेष नही रखा उनसे अच्छा व्यवहार किया तथा धीरे-धीरे सभी राज्य रोम के प्रति वफादार हो गए।

राजनैतिक व्यवस्था :-
(Political System)

रोमवासियों को अपने पुराने अत्याचारी शासकों से नफरत थी इसलिए उन्होंने राजतंत्र के स्थान पर गणतंत्र सरकार की स्थापना की तथा सभी प्रकार की सावधानी रखी गई ताकि राज्य सत्ता एक व्यक्ति के हाथों में केन्द्रित न हो सके। यद्यपि सता अभी भी (Patricians) पेट्रिशियन (यानि कुलीन वर्ग) के ही हाथों में केन्द्रित थी। लेकिन सभी नागरिकों को वोट से अपना नेता चुनने का अधिकार था। ये चुने हुए नेता लोगों का प्रतिनिधित्व करते थे, तथा उनके नाम पर राज्य करते थे। रोम में 500 वर्षो तक गणतंत्र कायम रहा, इस बीच रोम विश्व शक्ति बन गया।

प्रारंभिक सरकार :-
(Earlier Government)

प्रांरभिक गणतंत्र काल में (Patricians) कुलीन वर्ग के लोग सेनेट के द्वारा सरकार को चलाते थे। सेनेट के 300 पेट्रिशियन सदस्य थे जो उम्र भर इसके सदस्य रहते थे। ये गणतंत्र की आन्तरिक तथा विदेशी नीतियों का निर्धारण करते थे। प्रतिवर्ष सीनेट

दो काउंसिलों (Consuls) का चुनाव करती थी। इसके दोनों सदस्य पेट्रिशियन वर्ग के ही होते थे। ये Counsul राज्य के सह शासक थे। इनका चुनाव एक वर्ष के लिए किया जाता था। ये कभी भी अधिक शक्तिशाली नही हो सकते थे। अपने एक वर्ष के कार्यकाल में ये राज्य के प्राशसनिक कार्य संभालते थे और युद्धों के दौरान सेना का नेत त्व भी करते थे। दोनों Consuls को बराबर की शक्तियां एवम् अधिकार प्राप्त थे। दोनों Consuls एक-दूसरे के किसी भी काम को (Veto) वीटो भी कर सकते थे। यदि दोनो में इस तरह का कोई मतभेद हो जाता तो मामला सीनेट को सौंपा जाता था तथा कभी-कभी (Pro-Consuls) भी इनकी सहायता के लिए नियुक्त किए जाते थे। आपातकाल के दौरान इन Consuls के स्थान पर सीनेट (Dictator) (डिक्टेटर) की नियुक्ति भी कर सकती थी। इसे असीम शक्तियाँ प्राप्त थी। आपातकाल समाप्त होने पर यह 6 महीन की अवधि तक अपने पद पर रह सकता था। प्रत्येक Consul अपना कार्यकाल समाप्त होने पर सीनेट का सदस्य बन जाता था।

असैम्बली :-

(Assembly)

सीनेट के अतिरिक्त एक प्रसिद्ध असैम्बली भी थी जिसमें प्लेबियन (आम लोग) चुनते थे। असैम्बली Consuls की नियुक्ति को स्वीक ति देती थी। परन्तु प्रारम्भिक रोमन गणतंत्र में असैम्बली को अधिक अधिकार प्राप्त नही थे और नला ही यह सीनेट के किसी फैसले को चुनौती दे सकती थी।

सरकार में परिवर्तन :-
(Changes in the Government)

परन्तु 509 ई०पू० से 133 ई०पू० तक रोम की सरकार को साम्राज्य विस्तार के कारण बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। सर्वप्रथम तो एक बडे गणतंत्र का कार्य चलाने के लिए अधिक संख्या में अधिकारियों की आवश्यकता थी। दूसरे, Plebians (आम लोग) जिन्हें प्रारंभिक गणतंत्र में कोई अधिकार प्राप्त नही थे और ना ही वे किसी उच्च सरकारी पद प्राप्त कर सकते थे। इस काल में उन्होने रोम की सुरक्षा की अहम भूमिका निभानी शुरू कर दी और बाद में उन्हें सेना में भी भर्ती किया जाने लगा। इस प्रकार उन्होने भी सरकार में अपनी अधिक भागीदारी के लिए अधिकार मांगने शुरू किए। इन चुनौतियों के कारण रोमन सरकार में धीरे-धीरे परिवर्तन करने शुरू किए। यद्यपि सीनेट की अपनी शक्ति और प्रतिष्ठा कायम रही लेकिन असैम्बली के स्थान पर एक असैम्बली ऑफ सेन्चुरी तथा असैम्बली ऑफ ट्राइब्ज (Assembly of Centuries and Assembly of Tribes) का गठन हुआ। इनका गठन होनक के बाद प्लेबियन वर्ग के लोगों को भी राजनैतिक अधिकार प्राप्त होने लगे।

Assembly of Centuries :-

इस असैम्ब्ली में सारी रोमन सेना शामिल होती थी। साम्राज्य विस्तार के कारण बढ़ी हुई जरूरतों को पूरा करने के लिए सेना में प्लेबियन (आम लोगों) को भी भर्ती किया जाने लगा। इस प्रकार अब सेना में पेट्रिशियन (कुलीन वर्ग) के अतिरिक्त प्लेबियन (आम वर्ग) लोग भी शामिल होने लगे। यह असैम्बली कानून बनाती थी। तथा Consuls का चुनाव भी करती थी, जिन्हें पहले सीनेट चुनती थी। इसके अतिरिक्त यह अन्य अधिकारियों जैसे Praetors या जजों का भी चुनाव करती थी जो कानूनी मामलों का निपटारा करते थे। इसके अतिरिक्त censor को भी नियुक्त करती थी जिसका मुख्य कार्य टैक्स निर्धारण तथा वोट के लिए जनगणना करना होता था। इसके अलावा censor, moral code को भी लागू करता था। ये सभी अधिकारी पेट्रीशियन वर्ग के थे और इनका पद काल एक वर्ष के लिए होता था। बाद में ये सीनेट के सदस्य बन जाते थे।

Assembly of Tribes :-

प्लेबियन वर्ग के लोग इस असैम्बली के सदस्य होते थे। ये 10 Tribunes की नियुक्ति करते थे जो आम लोगों के हितों का ध्यान रखते थे। प्रारंभ में इन Tribunes की सरकार में कोई भूमिका नहीं थी। परन्तु जब प्लेबियन वर्ग के लोगों ने अपने अधिकार मांगने के लिए रोम के लिए युद्ध में भाग ना लेने की धमकी दी तो सीनेट ने इनकी कुछ मांगों पर विचार किया। इनमें इन Tribunes की law code (कानून संग्रह) की मांग थी जिसे स्वीकार किया गया। इसके लिए सीनेट ने रोम के कानूनों को लिखने के लिए एक आयोग की स्थापना की। इस प्रकार 451 ई०पू० में 12 पत्थर की तख्तियों (Tablets) पर रोम की विधि संहिता लिखी गई जिसे Law of Twelve Tablets कहा जाता है। परन्तु इस विधि संहिता में भी पेट्रिशियन और प्लेबियन वर्ग के बीच काफी दूरी रखी गई। इसके अनुसार प्लेबियन ना तो Consuls हो सकते थे और ना ही सीनेट के सदस्य बन सकते

थे और पेट्रिशयनों से शादी नहीं कर सकते थे। लेकिन इन सबके बावजूद सभी कानूनों, तथा उनकी अवहेलना पर सजा इत्यादि के प्रावधान लिखकर सभी नागरिकों को अनुचित व्यवहार से इन्होंने सुरक्षा प्रदान की। लेकिन प्लेबियन वर्ग का संघर्ष अभी समाप्त नहीं हुआ था। वे अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करते रहे।

परिणामस्वरूप सर्वप्रथम पेट्रिशियन और प्लेबियन के बीच विवाह निषेध हटा दिए गए तथा कर्ज के बदले कर्जदार को दी जाने वाली सजा का प्रावधान ढीला कर दिया गया। Tribunes को उन सभी कानूनों को निषेध करने (veto) का अधिकार मिल गया जो आम लोगों के यानि प्लेबियन के विरूद्ध थे। इसके अतिरिक्त Assembly of Tribes को कानून बनाने का अधिकार मिल गया जिसे सीनेट से मंजूरी लेनी पड़ती थी लेकिन बाद में वह स्वतंत्र होकर कानून बनाने लगी। 367 ई०पू० में दो Consules में से एक प्लेबिनयन वर्ग से लेना आवश्यक हो गया। प्लेबियनों के संघर्ष के परिणास्वरूप उन्हें काफी राजनैतिक अधिकार प्राप्त हुए तथा उच्च सरकारी पद प्राप्त किए एवम् उन्हें सीनेट की सदस्यता का भी अधिकार प्राप्त हो गया। लेकिन इतना होने के बाद भी सभी नागरिकों को समान अधिकार प्राप्त नही हो सके। केवल Tribunes ही आम लोगों के लिए आवाज उठाते थे।

सामाजिक जीवन :-
(Social Life)

प्रारंभिक गणराज्य में रोम का समाज 2 वर्गो में बंटा हुआ था। प्रथम कुलीन वर्ग (Patricians) तथा दूसरा आम लोग (Plebians) थे।

कुलीन वर्ग :-
(Patricians)

इस वर्ग के सदस्यों की संख्या अपेक्षाक त कम थी। परन्तु सीनेट और सरकार पर इसी वर्ग का नियंत्रण था। इस वर्ग में अल्पतंत्र, अमीर क षक तथा उच्च वर्ग के लोग शामिल थे। इसी वर्ग से जुड़े लोग सीनेट के सदस्य तथा Consuls बन सकते थे। प्रारंभ में रोम की सेना भी इसी वर्ग के सदस्य थे। परन्तु 390 ई०पू० में Gauls ने जब रोम पर आक्रमण किया तब सीनेट ने रोम की सुरक्षा के लिए सभी नागरिकों को सेना और सुरक्षा का कार्य सौंपा। Patricians बिना वेतन के सैनिक गतिविधियों में हिस्सा लेते थे।

आम वर्ग :-
(Plebians)

इस वर्ग में समाज के आम लोग जैसेः क षक, व्यापारी, कारीगर और शिल्पी इत्यादि शामिल थे इन्हें प्लेबियन कहा जाता था। इन्हें कोई भी सरकारी पद प्राप्त नही था और ना ही ये सीनेट के सदस्य बन सकते थे। यद्यपि ये जमीन के मालिक हो सकते थे। प्रारंभ में इन्हें कोई राजनैतिक अधिकार प्राप्त नही था लेकिन बाद में इन्होंने संघर्ष करके कुछ अधिकार प्राप्त किए।

दास :-
(Slave)

रोमन समाज में सबसे निम्न स्थान दासों का था। दास अधिकतर युद्ध बंदी होते थे। लेकिन कर्ज अदा ना कर पाने के कारण भी बहुत से Plebians दास बना लिए गए थे। ये पेट्रिशयनों के खेतों में काम करते थे और उसके घरों में नौकरों की जगह कार्य करते थे। इन्हें ना तो रोम की नागरिकता प्राप्त थी एवम् ना कोई अधिकार इसलिए इनकी स्थिति काफी दयनीय थी।

आर्थिक जीवन :-
(Economic Life)

प्रांरभिक रोमन गणराज्य में आर्थिक विभिन्नता अधिक नही थी। पेट्रिशियन वर्ग के लोग भी सामान्यतः क षि कर्म ही करते थे। यद्यपि उनके फार्म काफी बड़े-बड़े थे। इसका सबसे बड़ा उदाहरण लूसियस क्युन्करियस सिनसिनाटस (Lucius Quinctius Cincinnatus) के उदाहरण से मिलता है। जो प्रांरभिक गणराज्य का ख्याति प्राप्त नायक था। रोमवासी उसे कर्म, कठिन परिश्रम, सादगी और निश्चल गणराज्य सेवा का प्रतीक मानते थे। 458 ई०पू० में जब दुश्मनों ने रोमन के Consul तथा उसकी

सेना को घेर लिया। तब 5 रोमन सैनिक छुप कर भागे और रोम वासियों को इसकी सूचना दी। इस पर सीनेट ने आपातकालीन मीटिंग की और 6 महीने के लिए एक डिक्टेटर नियुक्त किया। एक दूत जब सीनेट में डिक्टेटर की नियुक्ति का संदेश लेकर सिनसिनकास में पास गया तो वह रोमन सेना की मदद के लिए तुरंत पहुंचा और युद्ध में विजयी रहा और पुनः रोम पहुंचा। केवल 16 दिन तक डिक्टेटर के पद पर रहने के बाद उसने वह पद छोड़ दिया।

रोम की आर्थिकता का मुख्य आधार क षि था। इस काल में बड़े-बड़े जमीदार पेट्रिशयन वर्ग के थे, जिनकी समाज में काफी प्रतिष्ठा थी। क षकों के अतिरिक्त बुनकर, लुहार, बढई और मोची इत्यादि कुशलता से अपना कार्य करते थे और उसमें निपुण भी थे।

इस काल में व्यापार अधिक उन्नत नही था तथा व्यापार विनिमय प्रणाली (वस्तुओं का आदान-प्रदान) पर आधारित था। इसके साथ ही मुद्रा प्रणाली भी अस्तित्व में आई।

धर्म :-

प्रारंभ में रोमन बहुदेववादी थे। वे अपने अनेक देवी-देवताओं की पूजा व्यक्तिगत रूप से तथा सामाजिक समारोह के दौरान करते थे। प्रत्येक घर में एक मन्दिर होता था और इनका देवता इनके घर और खेतों का रक्षक होता था। प्रत्येक घर में चूल्हें की देवी वेस्ता की पूजा की जाती थी। प्रत्येक सार्वजनिक या धार्मिक समारोह किसी देव या देवी को अर्पित होता था। जैसे किसी भी समारोह की शुरूआत उनके जनुस (Janus) देवता से होती थी, इसकी पूजा वे प्रत्येक महीने और साल के प्रारंभ में करते थे। यही से साल के प्रथम महीने का नाम जनवरी पड़ा। इसके अतिरिक्त वे जूपिटर (रोम का रक्षक), जीनों (स्त्रियों का रक्षक), मिनर्वा (ज्ञान की देवी), मार्स (युद्ध का देव), लारेस (अपने पूर्वजों की आत्मा का देवता)। इत्यादि की पूजा करते थे। इनके अतिरिक्त रोमवासी यूनानी, इस्ट्रस्कनों इत्यादि के देवों की भी पूजा करते थे।

गणराज्यकाल में रोम का उत्कर्ष
(Rise of Rome During Republican Period)

चतुर्थ शताब्दी ई०पू० तक रोम ने न केवल समस्त इटली पर अपना एकाधिकार स्थापित कर लिया बल्कि रोम विश्व शक्ति के रूप में भी उभर कर सामने आया।

प्रांरभिक गणराज्य की स्थापना के 200 वर्षो के अन्दर रोम ने मध्य इटली तथा दूसरे लातिनी (Latin) शहरों पर अपना वर्चस्व स्थापित कर सेमनाइटों तथा इट्रस्कबों को पराजित करके 290 ई०पू० में रोम इटली का प्रमुख राज्य बन गया था। परन्तु जब दक्षिण इटली के यूनानी शहरों को रोम से खतरा लगने लगा तो उन्होंने एपीरस (Epirus) के राजा पिहरूहस (Pyrrhus) की सहायता से रोमनों को दो युद्धों में हरा दिया। लेकिन इस युद्ध में उन्हें स्वंय काफी नुकसान भी झेलना पड़ा। Phrrhus ने स्वयं युद्ध के बाद घोषणा की थी कि एक और ऐसी विजय से वह हार जाएगा। 264 ई०पू० तक रोम का समस्त इटली पर अधिकार कायम हो गया। उन्होंने लातिनी लोगों को रोम की नागरिकता भी प्रदान कर दी। इसके अलावा इन्हें वोट का भी अधिकार दिया गया। इस काल में सभी नगरों को रोम से जोड़ा गया जो कि सेना तथा व्यापार के लिए उपयोगी होने के साथ-2 इटली के लोगों के एकीकरण में भी सहायक हुई। नए विजित क्षेत्रों में रोमन सैनिकों एवम् किसानों को भूमि दी गई इस प्रकार रोम ने अपने तौर तरीके इन नए क्षेत्रों में फैलाए।

प्रथम प्यूनिक युद्ध :-
(First Punic war - 264-241)

कार्थेज अफ्रीका के उतरी किनारे पर स्थित है तथा ये लोग अच्छे नाविक थे तथा अटंलाटिक तथा भूमध्यसागर पर इनका एकाधिकार कायम था। इनके स्पेन, पुर्तगाल और सार्दमिया (Sardmia) द्वीपों से अच्छे संबध थे। रोम के विस्तार के कारण रोमन तथा कार्थेज का आपस में युद्ध शुरू हो गया। युद्ध का मुख्य कारण सिसली प्रदेश था। उधर रोम इसे अपने अधीन करना चाहता था। जब रोम ने दक्षिणी इटली के यूनानी नगरों को जीत लिया तो उनके और कार्थेज के व्यापारिक संबधं टकरा गए। इस प्रकार पश्चिमी भूमध्यसागरीय क्षेत्र पर अधिकार के लिए दोनों में युद्ध हुए जो 264-146 ई०पू० के बीच चले। प्रांरभिक दोनों युद्धों में माइली का युद्ध 260 ई०पू० तथा एक्नोमिस के युद्ध में रोम ने कार्थेज को हराया तथा सिसली में पर्लेमा (Palerma)

को जीत लिया और बाद में कार्थेज पर सीधा हमला कर दिया। लेकिन कार्थेज ने स्पार्टा के जनरल की सहायता से रोम को हरा दिया। लेकिन शीघ्र ही रोम ने अपना अधिपत्य स्थापित कर लिया। 241 ई०पू० में रोम की सेना ने कार्थेज को ऐजियन (Aegean) द्वीप की लडाई में हरा दिया और सिसली में लिलीबकम पर अधिकार कर लिया तब कार्थेज ने सन्धि का प्रस्ताव रखा और सारे सिसली पर रोम का अधिकार मान लिया गया। इस तरह सिसली, सरदीमिया, तथा कोरसिका पर रोम का अधिकार हो गया और रोम एक शक्तिशाली समुद्री शक्ति बन गया। इसके बावजूद कार्थेज अभी भी काफी शक्तिशाली बना रहा।

द्वितीय प्यूमिक युद्ध :
(Second Punic War - 219-202)

प्रथम प्यूमिक युद्ध में अपने कई क्षेत्रें को हारने के बाद अब कार्थेज ने स्पेन पर अपना आधिपत्य बढ़ाना शुरू कर दिया। प्रथम प्यूमिक युद्ध के जनरल हमिल्कर तथा उसके बेटे हन्निबल ने यह कार्य पूर्ण किया और स्पेन को कार्थेज के अ अधीन कर लिया फिर उन्होंने रोम से पहली हार का बदला लेने की सोची। इसकी शुरूआत करते हुए कार्थेज ने स्पेन में रोम के सहायक नगर को जीत लिया इस तरह दोनों के बीच शुरू हुआ जो द्वितीय प्यूमिक युद्ध का कारण बना।

218 ई०पू० में हन्निबल ने अल्पस पर्वत को पार करके अल्पाइन कबीलों को हराकर अपने 26000 सैनिकों के साथ इटली में प्रवेश किया। इसने दो युद्धों में रोमनों को हराया तथा रोम नगर को घेर लिया तथा 217 ई०पू० में टामिसेन झील के समीप युद्ध में उन्हें हराया। कार्थेज जनरल ने मदान के राजा फिलिप से सन्धि कर ली लेकिन इसके बाद भी रोमन अगले 9 वर्षो तक उन्हें तंग करते रहे। रोमनों ने 212 ई०पू० में Syracuse, 211 ई०पू० में Capua, तथा 209 ई०पू० Arenthian का जीत लिया। 208 ई०पू० में हनीबल ने रोम को हराकर कोन्सुल मारस्लिुस (Consul Marcelles) को मार दिया, इसी बीच कार्थेज में हस्ड्रबल (Hasdrubal) को सेना के साथ सहायता के लिए भेजा। लेकिन इसकी सेना को रोमन नायक गौस क्लाडियस नीरों ने हरा दिया, जब यह समाचार दक्षिणी इटली में हनीबल के पास पहुंचा, तो इसी बीच रेाम ने उतरी अफ्रीका में स्वयं कार्थेज पर हमला कर दिया तो हनीबल को इटली छोड़कर वापिस कार्थेज की सुरक्षा के लिए आना पड़ा। 202 ई०पू० में उसे रोम ने नायक सिपिओं (Scipio) ने हरा दिया। बाद में हनीबल ने आत्महत्या कर ली। कार्थेज ने रोम से सन्धि कर ली और स्पेन रोम को दे दिया इसके अलावा काफी धन भी हर्जानें के तौर पर दिया। यह भी तय हुआ कि कार्थेज रोम की अनुमति के बिना किसी युद्ध में हिस्सा नही लेगा। 150 ई०पू० में कार्थेज ने संधि की अवहेलना करते हुए रोम की आज्ञा के बगैर नूमिडिया (Numidia) को युद्ध में हरा दिया, तो सीनेट ने कार्थेज युद्ध की घोषणा कर दी।

तीसरा प्यूनिक युद्ध केवल 3 साल तक चला (149-146 ई०पू०) यद्यपि कार्थेज की सेना बहादुरी से लड़ी, लेकिन हार गई। रोम ने कार्थेज पर अधिकार कर लिया और उसके शहरों को नष्ट कर दिया। इस क्षेत्र के ज्यादातर निवासी या तो मार दिए गए या दास बना लिए गए। इस तरह उतरी अफ्रीका का यह क्षेत्र रोमन साम्राज्य का हिस्सा बन गया।

कार्थेज की जीत के बाद रोम ने यूनानी नगर राज्यों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। मैसेत्रेन के फिलिप पंचम जिसने हनिबल का रोमनों के खिलाफ साथ दिया था। उसे सबक सिखाने का मौका तलाश किया गया। इसके लिए 146 ई०पू० में राम ने कौरिन्थ को हराया और अगले 100 वर्षो में सभी यूनानी नगर राज्यों को रोमन साम्राज्य में मिला लिया। फिलिप को हराने के बाद बाकि यूनानी राज्यों को भी रोम में मिला लिया जैसे : क्रेट को 67 ई०पू०, फिलिसिया को 64 ई०पू०, साइप्रस को 58 ई०पू० तथा मिस्र को 30 ई०पू० में जीत कर पूरे पश्चिमी यूरोप, एशिया मानइर, सीरिया इत्यादि को रोम साम्राज्य में मिला लिया गया।

प्यूनिक युद्धों का आर्थिक एवम् सामाजिक क्षेत्र पर प्रभाव :-
(The impact of Payunik Wars on Economic & Social Area)

इन युद्धों के कारण रोम ने विश्व में साम्राज्य की स्थापना की। इसके साथ ही वे यूनानी सभ्यता के सम्पर्क में आए जिससे रोम ने काफी कुछ ग्रहण किया। विजय के पश्चात् इनकी आर्थिक स्थिति मजबूत हुई जिस कारण सड़कों और नौसेना का विकास संभव हुआ इससे व्यापार और वाणिज्य को काफी बढ़ावा मिला। रोम के अमीर वर्ग विजित क्षेत्रों से काफी विलासिता की सामग्री आयात करवाने लगे। युद्धों के कारण नए क्षेत्रों से अनाज का आयात हुआ, काफी धन युद्ध की लूट तथा हर्जाने

के रूप में रोम को प्राप्त हुआ। अनेक युद्ध बंदी दास के रूप में रोम लाए गए। इन तीनों चीजों के कारण रोम में अनेक परिवर्तन हुए। विजित क्षेत्रों से जबरन कर के रूप में अनाज को रोम लाया गया जिससे रोम में फालतू अनाज होने से उसकी कीमत गिर गई इस कारण छोटे किसानों को काफी नुकसान हुआ और वे कर्जदार बन गए। कर्ज चुकाने के लिए उन्हें अपनी जमीनें तक बेचनी पड़ी। इन युद्धों के कारण रोम में एक नए वर्ग का उदय हुआ। व्यापार का विस्तार होने से ये काफी धनी हो गए और इन्होंने छोटे-छोटे किसानों की भूमि खरीद कर बड़ी-बड़ी Estate स्थापित कर ली। इस भूमि पर दासों को, जो युद्ध बंदी रोम लाए गए थे। खेती के कार्य में लगाया गया। इस प्रकार सस्ते श्रम के कारण बड़े जमीदारों से छोटे किसान मुकाबला नही कर सके और इन्हें क षि में नुकसान होने लगा। इस प्रकार हानि के कारण अधिकतर क षक अपनी जमीन बेचने पर विवश हो गए। अधिकतर बेजमीन किसान रोम में बस गए तथा राज्य की ओर से इन्हें अनाज देना पड़ा। इस प्रकार समाज में अनेक समस्यांए पैदा हो गई क्योंकि अमीर और गरीब में दूरी बढ़ जाने से समाज में द्वेष फैल गया।

रोम गणराज्य का ह्रास :-
(Decline of The Roman Republic)

साम्राज्य प्रसार के कारण रोम में जो कठिनाइयां पैदा हुई उनके कारण 133-44 ई०पू० के बीच रोम में संघर्ष शुरू हो गया। परिणामस्वरूप सीनेट एक शक्तिशाली संस्था के रूप में उभरी। दूसरी और सीनेट के सदस्य राज्य की समस्याओं से निपटने की अपेक्षा स्वयं में अधिक व्यस्त थे। इन परिस्थितियों में रोम के प्रसिद्ध नेताओं ने रोम में सुधार शुरूआत कर भूमिरहित गरीबों की सहायता की। 133 ई०पू० में टाइबेरियस ग्राक्कस ने सर्वप्रथम प्लेबियनों के अधिकारों की बात कहीं क्योंकि रोम में पेट्रिशयन वर्ग ने क षकों की भूमि पर अधिकार कर लिया था। टाबेरियसक ने जमीनों का आकार सीमित कर उन्हें बेरोजगार किसानों में बांटना शुरू किया, इससे रोम को अधिक सैनिक भी प्राप्त हुए क्योंकि इस काल में भूमि के स्वामी ही रोम की सेना में भर्ती हो सकते थे। 123 ई०पू० में टाइबेरियस को ट्रिब्यून चुना गया तो उसने भूमिहीन क षकों को दक्षिणी इटली तथा उतरी अफ्रीका में बसाने के लिए कदम उठाए और गरीबों को कम कीमत पर अनाज उपलब्ध करवाया। और उसने सभी इटली वासियों को रोम का नागरिक बना दिया। परन्तु इसे भी इसके 3000 साथियों के साथ मार दिया गया। अंत में सीनेट ने कुछ भूमि सुधार किए और अनाज की कीमत कम रखी। लेकिन फिर भी बैरोजगार सैनिकों तथा भूमिहीन किसानों की संख्या बढ़ती चली गई। अगले 100 वर्षो में सीनेट के अधिकतर सदस्य सुधारों के विरूद्ध थे। कुछ सदस्य ऐसे भी थे जो प्लेबियन वर्ग की मांगों को समर्थन करते थे।

रोम में 73 ई०पू० में 70,000 दासों ने स्पार्टकस (Spartacus) के नेत त्व में विद्रोह कर दिया इसे दबाने में रोम की सेना को एक वर्ष का समय लगा। इस दास विद्रोह के बाद पौम्पी तथा जूलियस सीजर में युद्ध शुरू हो गया था। पौम्पी को उसके दुश्मनों ने मिस्र में मार दिया तथा सीजर कुछ समय मिस्र में रहा जहां वह वहां की रानी कलियोपेट्रा के मोंह में फंस गया। 46 ई०पू० में वह रोम आया तथा स्वयं को वहां का तानाशाह घोषित कर दिया। वह स्वयं शासक बनना चाहता था परन्तु 44 ई०पू० में उसे मार दिया गया इसकी म त्यु के बाद सत्ता मार्क एंथेनी के हाथों में आ गई तथा उन्होंने ब्रूटस, कैसिमस को पकड़ कर मार दिया। 37 ई०पू० में Octavian रोम का सबसे शक्तिशाली व्यक्ति बन गया।

सीजर के सुधार :-
(Reforms of Cizer)

जूलियस सीजर केवल एक अच्छा जनरल ही नहीं अपितु, एक अच्छा सुधारक और प्रशासक भी था। उसने रोमन समाज की विभिन्न कठिनाइयों को वास्तव में सुधारने की चेष्टा की और अपने सुधारों में उसने सभी का सहयोग लेने की भी चेष्टा की। सर्वप्रथम उसने आर्थिक समस्याओं की ओर ध्यान दिया। बेरोजगारी समाप्त करने के लिए उसने बहुत से सार्वजनिक कार्यो की शुरूआत की। जिनमें रोम को नालियों से पानी देने की सुविधा भी थी। इसने गरीबों को मुक्त तथा कम दरों पर अनाज दिया। टैक्स प्रणाली को व्यवस्थित किया। इसके अलावा रोम में नई कलोनियों को बसाने की आज्ञा दी।

सीजर ने रोमन साम्राज्य में राजनैतिक स्थिरता लाने का भी प्रयास किया। उसने राज्यों में स्वतंत्र कमांड को समाप्त किया तथा उनकों (Legates) लगेटस द्वारा प्रबन्ध करना शुरू कर दिया जो उसके प्रति वफादार थे। उसने प्रांतों के गर्वनरों, की शक्तियां कम की इसके अतिरिक्त प्रांतों का स्तर भी बढाया और बाहर के लोगों को भी वहां की नागरिकता प्रदान की। सीजर

ने सीनेट में Gauls को भी भर्ती किया। उसने शहरों का भी सुधार किया। उसने सभी नगरों में समान प्रशासन व्यवस्था लागू की और रोम की तरह ही वहां सीनेट की स्थापना कर मजिस्ट्रेटों की नियुक्ति की। उसने छोटे से छोटे इटालियन नगर को भी राजनैतिक स्तर पर रोम के नागरिक के समकक्ष कर दिया।

सीजर ने कैलंडर में भी सुधार किया। इसके द्वारा बनाया गया कलैंडर 1522 तक यूरोप में तथा 1917 तक रूस में चलता रहा।

रोमन गणराज्य में सामाजिक स्थिति :-
(Social Condition of Roman Republic)

प्रांरभिक गणराज्य में जब रोम काफी छोटा था उस समय समाज के दोनों वर्गो प्लेबियन और पेट्रिशियन के बीच काफी अंतर नही था। क्योंकि दोनों वर्गो के पास जमीन थी। लेकिन पेट्रिशियन वर्ग आम वर्ग से थोड़ा अभिजात वर्ग था। लेकिन बाद में स्थिति बदल गई। जैसे रोम एक विश्व शक्ति बन गया तथा सीनेट के सदस्यों के स्तर में व द्धि हुई। वे अब बड़ी-2 जमीनों के मालिक बन गए और उस जमीन पर अनेक दास उनके लिए कार्य करते थे। सीनेट के सदस्य काफी सम द्धशाली थे। इनके बच्चों को पढ़ाने के लिए यूनानी अध्यापक नियुक्त किए जाते थे। दूसरी तरफ प्लेबियन वर्ग के लोगों की स्थिति काफी निम्न होती गई। पहले दो प्यूनिक युद्धों मे हनीबल की सेना ने उन्हें लूट कर बर्बाद कर दिया। दूसरे जब किसी नागरिक क षक को युद्धों के दौरान विदेश भेजा जाता था तो वह जाते समय अपनी जमीन बेच जाता था। युद्ध समाप्ती के बाद वापिसी पर वह अपने शहर में बेरोजगारों की श्रेणी में शामिल होता और उसे बाकि जीवन राज्य से प्राप्त होने वाले अनाज पर निर्भर रहना पड़ता। इस प्रकार रोमन गणराज्य में बहुत से नागरिकों को सरकार की और से आर्थिक मदद की जाती थी। रोम में इस तरह के लोगों की संख्या लाखों में थी।

स्त्रियों की स्थिति :-
(Condition of Women)

रोमन समाज की सम द्धि के कारण स्त्रियों की स्थिति में सुधार हुआ। घरों में काम करने के लिए अनेक दास होते थे, उनके बच्चों को यूनानी अध्यापक पढ़ाते थे। रोम की औरतें काफी फैशन करती थी रोम में दूर-दराज के क्षेत्रों से विलासिता की वस्तुंए मगंवाई जाती थी। जैसे भारत तथा चीन से रेशमी वस्त्र आयात होते थे। घरों में खाना बनाने के लिए रसोइए रखे जाते थे। इनके घरों में भोजन ग्रीक बर्तनों या ग्रीक शहरों से लूटे चांदी के बर्तनों में परोसा जाता था। इस काल में घरों में लोग पुरानी वस्तुएं भी सजावट के तौर पर इस्तेमाल करने लगे थे।

दास :-
(Slave)

इस काल में रोम में दासों की बड़ी संख्या रोम में लाई गई। रोम में दासों का आपस में युद्ध करवा कर रोमवासी अपना मंनोरजन करते थे। इनके लिए रोम में अनेक अखाड़े बनाए गए। दासों से अनेक कार्य करवाए गए जैसे क षि, सड़के,, नदियों और खानें इत्यादि खोदने का कार्य करवाया जाता था और उनसे अच्छा व्यवहार नही किया जाता था। इस कारण दास हमेशा विद्रोह के लिए तैयार रहते थे। 73 ई०पू० में 70,000 दासों में Spartacus के नेत त्व में विद्रोह भी कर दिया।

आर्थिक स्थिति :-
(Economic Condition)

क षि :-

प्रारंभिक गणराज्य में क षि लोगों का मुख्य व्यवसाय था। यद्यपि उन्होंने क षि के तरीके और तकनीकी विकास में कुछ भी नया नही किया था। उनके औजार इत्यादि काफी प्राचीन विकास थे इनकी फसल काटने की दरातियां भी ठीक नही थी। अनाज को फर्शो पर कूट कर निकालते थे। परन्तु उन्होंने क षि की फसलों को बदल-बदल कर बीज बोना शुरू कर दिया। क षि में अधिकतर जौ, ज्वार, बाजरा और गेंहू की खेती करते थे। रोम में पेट्रिशियन वर्ग के लोग अपने घरों में बड़े-बड़े बगीचों का निर्माण करते थे। उनमें फलदार पौधे लगाए जाते थे। रोम वासियों ने यूनानी लोगों से अंगूर, अंजीर और सरसों की खेती करते थे। क षि के लिए विजित क्षेत्रों को आबाद किया गया, जहां से कर के

रूप में अनाज रोम में लाया जाता था। जो कि दासों द्वारा क षि करने के कारण सस्ता था, इस कारण रोम में भी अन्न के भाव गिरने से क षि लाभप्रद नहीं रही। किसानों ने खेतों में फसल बोने की अपेक्षा चारागाह बना दिया कुछ क षकों ने अपना कर्ज उतारने के लिए अपनी भूमि बेच दी। इस प्रकार अमीर लोगों ने उनसे जमीनें खरीदकर Estates स्थापित कर लिए।

व्यापार :-

प्रारंभिक रोम गणराज्य में व्यापार उन्नत नहीं था। परन्तु बाद में साम्राज्य विस्तार के कारण रोम की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ और व्यापार में तेजी आई। जिस कारण रोम में एक मध्य वर्ग का उदय हुआ जो काफी अमीर था। इस काल में सीनेट के सदस्यों की स्थिति में सुधार हुआ। उन्होंने अपने लिए विलासिता पूर्ण वस्तुएं मंगवानी शुरू की। इस काल में सिक्कों के प्रचलन के कारण व्यापार को पहल की अपेक्षा बढ़ावा मिला। रोम द्वारा सिसली पर आद्धिपत्य स्थापित करने के पश्चात् समुद्री व्यापार में काफी व द्धि हुई और व्यापारिक गतिविधियाँ रोम के उपनिवेशों और भारत में भी होने लगी तथा रोम राज्य को अपने उपनिवेशों तथा युद्ध में पराजित प्रदेशों से हर्जाने के तौर पर कर एवं अन्न की काफी प्राप्ति होती थी। जिस कारण रेाम की आय में व द्धि हुई।

प्रान्तीय प्रशासन :-

गणतंत्र काल में रोम ने अनेक नए क्षेत्रों को विजित कर अपने साम्राज्य में मिलाया जिनमें स्पेन, उत्तरी अफ्रीका तथा यूनानी राज्य प्रमुख थे। इन प्रान्तों का प्रशासन सुचारू रूप से चलाने के लिए Consuls सीनेट की स्वीक ति से गर्वनरों की नियुक्ति करते थे इनकी नियुक्ति एक वर्ष के लिए की जाती थी। लेकिन बाद में इनकी अवधि तीन वर्ष कर दी गई अवधि बढ़ाने के पीछे प्रान्तों की स्थिति को सुव्यवस्थित करना था। लेकिन वास्तव में गर्वनरों ने प्रान्तों की स्थिति सुधारने की अपेक्षा इन्हें धन अर्जित का साधन बना लिया। गर्वनर केवल इस बात का ध्यान रखते थे कि प्रान्तों में आपसी लडाई से शान्ति भंग न हो। इस काल में बड़े प्रान्तों के गर्वनरों ने रोम राज्य को कर के रूप में पैसा और अनाज भी दिया बल्कि सैनिक सेवांए बन्द कर दी। गर्वनरो को कर इक्कठा करने की एवज में उसका एक भाग मिलता था। प्रजा भी इन्हें भेंट के रूप में पैसा या विभिन्न चीजें देती थी। इसके अतिरिक्त इन्हें कानूनी मुकदमों से भी आय होती है।

रोमगणराज्य का प्रशासन :-
(Administration of Roman Republic)

सीनेट :-

इस काल में भी सीनेट सबसे महत्वपूर्ण संस्था थी। पेट्रिशियन वर्ग के लोग इसके सदस्य होते थे। सीनेट का मुख्य उतरदायित्व था गणराज्य के लिए Consuls की नियुक्ति करना, मजिस्ट्रेट की नियुक्ति, सलाह देना इसके अलावा वित प्रबन्धन का कार्य भी सीनेट का था। साम्राज्य विस्तार के बाद प्रांतों के गर्वनरों की नियुक्ति, जनरलों की नियुक्ति करने के अधिकार भी इनके कार्यक्षेत्र में आ गए। इस कारण सीनेट तथा कॉन्सल में टकराव की स्थिति आ गई। इस काल में कई Consul को जैसे टिबेरियस और ग्रक्कस आदि ने इस संघर्ष में अपनी जान भी गवानी पड़ी। जनरल मारियस ने अपनी सेना के बल पर सीनेट में अपना प्रभुत्व जमाया। लेकिन बाद के जनरलो ने सीनेट को एक व्यर्थ की संस्था कहा। जैसे जूल्यिस सीजर ने कहा लेकिन सीनेट के सदस्यों ने उसकी हत्या करवा दी।

असैम्बली :-

जब राम गणराज्य का क्षेत्र काफी छोटा था तब नागरिक तथा असैम्बली का महत्व था। परन्तु साम्राज्य विस्तार के बाद इनके महत्व में कमी आई। पहले मजिस्ट्रेटों की नियुक्ति लोगों की असैम्बली करती थी लेकिन अब यह कार्य सीनेट करने लगी। मजिस्ट्रेट अपने कार्यकाल के बाद सीनेट के सदस्य बन जाते थे। मजिस्ट्रेटों के अतिरिक्त Tribune का कार्य भी Consuls पर नियंत्रण रखना और आम लोगों के हितों का ख्याल रखना था।

प्रांतीय गर्वनरों और अन्य उच्च अधिकारियों के कारण वहां भ्रष्टाचार फैलना शुरू हो गया। सिसली के गर्वनर Verrace ने 73 ई०पू० में भ्रष्टाचार से काफी धन कमाया जिसका 2/3 हिस्सा उसने रोम में जजों और वकीलों को खरीदने में

खर्च किया। क्योंकि यदि उसे पद से हटाने की प्रक्रिया चले तो वे उसकी सहायता करें। इस तरह अन्य गर्वनर भी जूरी के सदस्यों को पैसे से प्रभावित करते थे।

नगर प्रबंधः-

रोम ने यूनानी विजित प्रदेशों से सद्व्यवहार किया। प्रत्येक यूनानी नगर राज्य को उनकी प्रशासनिक स्वतंत्रता प्रदान की गई। केवल अपने नियंत्रण वाले क्षेत्रों में विदेशी नीति संबधी कार्य रखें। प्रत्येक नगर का अपना न्यायालय और मजिस्ट्रेट था। इस काल में विभिन्न नगर प्रसिद्धी के केन्द्र बने जैसे एफसिस और डायना देवताओं की पूजा को केन्द्र, और एंथेस ज्ञान का केन्द्र बना और प्राचीन विश्वविधालय का रूप लिया।

सैनिक प्रबंध :-

द्वितीय प्यूनिक युद्ध से पूर्व रोम की सेना स्वतंत्र क षकों से बनी थी। जो अपने स्तर के आधार पर युद्धों में हिस्सा लेते थे। इस प्रकार की सेना प्रारंभिक गणराज्य के लिए तो उचित थी। लेकिन बाद में जब रोम ने अपने प्रदेशों का विस्तार कर स्पेन, उतरी अफ्रीका यूनानी प्रदेशों में जाकर युद्ध किया तो स्वतंत्र नागरिकों की संख्या कम हो गई। Consul मारियस ने वेतन वाले सैनिकों की भर्ती शुरू कर दी। पहले स्वतंत्र नागरिक रोम की रक्षा अवैतनिक और अपने गौरव के लिए करते थे। लेकिन इस काल में सैनिकों को वतेन के अलावा उन्हें ट्रेनिंग भी दी जाने लगी। सैनिकों को सीनेट के प्रति वफादारी की शपथ लेनी पड़ती थी। परन्तु जनरलों द्वारा उन्हें सेना में भर्ती किए जाने के बाद वे उनकी शपथ लेने लगे। सैनिक अब युद्ध अधिकतर जनरलों के लिए करने लगे। इस प्रकार अलग-2 जनरलों ने अपने Legions की मदद से रोम गणराज्य में अपना प्रभुत्व फैलाने की कोशिश की। जिसका परिणाम यह हुआ कि जनरल आपस में ही युद्ध करने लगे जैसे पौम्पी और सीजर इत्यादि। विभिन्न जनरलों के आपसी युद्धों के कारण ही रोमन गणराज्य का अंत हुआ और एक साम्राज्य की स्थापना हुई।

रोमन साम्राज्य
Roman Empire

सीजर ने अपनी म त्यु से पूर्व अपने 18 वर्षीय भतीजे आक्टेवियन को अपना उतराधिकारी नियुक्त किया। इसकी म त्यु के बाद रोम में 13 वर्ष तक अराजकता की स्थिति बनी रही। आक्टेवियन ने सीजर के दो सहोगियों मार्क ऍन्थनी तथा मार्क्स लेपिडस के सहयोग से रोम का प्रशासन संभाला। इसने सर्वप्रथम विद्रोहीयों और षड़यंत्रकारियों के विरूद्ध कार्यवाही शुरू की और विद्रोहीयों के नेता ब्रटूस तथा कैसियस को मौत के घाट उतार दिया गया। परन्तु शीघ्र ही एन्थनी और आक्टेवियन के बीच संघर्ष शुरू हो गया। एन्थनी ने मिश्र की रानी केलियोपेट्रो से संधि कर ली। इस बात पर आक्टेवियन ने उनके विरूद्ध युद्ध छेड़ दिया और 31 ई०पू० में इन दौनों की संयुक्त सेना को नौसैनिक युद्ध में एक्टियम (Actium) नामक स्थान पर हरा दिया। एन्थनी और क्लियोपेट्रा मिश्र भाग गए जब आक्टेवियन की सेना वहां पहुंची तो उन्होनें आत्महत्या कर ली। अगले वर्ष मिश्र को भी रोमन साम्राज्य का हिस्सा बना लिया गया।

रोम वापिस पंहुचने पर ऑक्टेवियन ने घोषणा की कि वह गणतन्त्र को पुनः स्थापित करेगा। लेकिन उसने इटली के आधे साम्राज्य पर सीनेट को प्रशासनिक भार सौंपा तथा आधे साम्राज्य पर स्वयं शासन करने लगा। उसने स्वयं को प्रिंसेप अथवा राज्य का प्रथम नागरिक घोषित किया। इस काल से 284 ई० तक का युग प्रिंसिपेट के नाम से भी जाना जाता है।

ॲगस्तस का कालः

ॲगस्तस ने रोम पर 40 वर्षो तक शासन किया। इसके एवम् इसके उतराधिकारियों के काल में रोम विध्वंसकारी युद्धों से छुटकारा पाकर शक्ति के युग में आ गया जिसे Pay Romane या रोमन शक्ति कहा जाता है। इसके शासनकाल मे रोम गणतन्त्र से निकल कर साम्राज्य बन गया। सीनेट ने इसे Imperator (एम्पीरेटर) की उपाधि दी या रोम की सेना का सेनापति। उसने यद्यपि सीनेट, जो कि गणतंत्र प्रणाली का एक अंग थी उसे उसी स्वरूप में रखा लेकिन उसकी शक्तियों को कम कर दिया तथा स्वयं एक सम्राट की तरह शासन करने लगा। इसने 27 ई०पू० से 14 ई०पू० तक राज्य किया तथा रोमन साम्राज्य मे अनेक सुधार कर उसे सद ढ़ता प्रदान की।

सैनिक सुधार :
(Military Reform)

सर्वप्रथम इसने रोम की सेना में सुधार किए। रोमन सेना को इसने अनुशासित और व्यवहारिक बना दिया जो सम्राट के प्रति वफादार रहे। इसने भूतपूर्व सैनिकों को प्रान्तों में बसाने की प्रक्रिया शुरू की ताकि स्थानीय सुरक्षा मजबूत हो सके। इसके अतिरिक्त इसने सेना के पूर्व सैनिकों को रोम की नागरिकता प्रदान की। इसकी स्थाई सेना मे तीन लाख सैनिक थे। जिन्हें साम्राज्य के महत्वपूर्ण स्थानों पर तैनात किया।

प्रान्तों का संगठनः
(Orginasation of Regions)

आगस्तस्य ने रोमन साम्राज्य की प्रान्तीय शासन प्रणाली को संगठित किया और उन पर केन्द्र का नियन्त्रण कठोर कर दिया। सीजर की भाँति इसने भी प्रांतों के नागरिको को रोम की नागरिकता प्रदान की ताकि वे रोम साम्राज्य का हिस्सा समझ सके। इसके अलावा उन्हें सरकारी पद प्राप्त करने का अधिकार प्रदान किया। कर वसूलने की प्रणाली में भी सुधार किया गया एवम् इन्हें वसूलने के लिय योग्य अधिरियों की नियुक्ति की गई। इस प्रकार अराजकता को समाप्त करने की कोशिश की गई। इन सुधारों से रोम में राष्ट्रीयता और एकता की भावना का संचार हुआ।

अन्य सुधारः

इसमें अतिरिक्त अॅगस्तस ने प्रशासन के लिए एक सुव्यवस्थित सिविल सेवा का गठन किया। राज्य के महत्वपूर्ण पद केवल योग्य व्यक्तियों को दिए गए। कर्मचारियों को राज्य की ओर से वेतन मिलता था। इसने रोम मे जनगणना की शुरूआत की ताकि कर निर्धारित करने में सुविधा हो तथा कर उचित लगाए जा सके। इसने सामाजिक स्थिति सुधारने के लिए अनेक कानून बनाए जिन्हें जुलियन कानून (Julian Laws) के नाम से जाना जाता है। ये कानून सदाचार, शालीनता, वैवाहिक जीवन, शुद्र व्यवहार और निष्ठा पर जोर देते थे। समाज के विकास के लिए उसने शिक्षा प्रसार पर बल दिया। इसके काल में नई अदालतों की स्थापना हुई तथा न्यायिक व्यवस्था में सुधार किया गया। इसने डाक प्रणाली की शुरूआत करके प्रांतों तथा रोम के बीच सीधा संपर्क स्थापित किया।

आर्थिक सुधारः-
(Economic Reforms)

देश में हुए विभिन्न प्रशासनिक सुधारों के कारण शांति कायम हुई, और व्यापार में बढ़ोतरी हुई, जिस कारण साम्राज्य में आर्थिक प्रगति हुई। व्यापार की प्रगति के लिए अॅगस्तस ने भूमध्य सागरीय समुद्री लुटेरों से व्यापारियों की सुरक्षा के लिए सैनिक सुरक्षा सख्त कर दी। स्थल मार्ग पर भी सैनिक व्यापारियों की सुरक्षा करते थे। इस काल में साम्राज्य की ओर से व्यापारियों को दूर-दराज के देशों से व्यापारिक संबंध स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था। इसने रोमन सिक्कों मे भी सुधार किया जिस कारण व्यापार में व द्धि हुई।

अॅगस्तस के काल में रोम एक अन्तर्राष्ट्रीय नगर बन गया। इसने रोम को सुन्दर बनाने के लिए विशेष कार्य सम्पन्न किए। इसने स्वयं कहा है कि रोम पहले धूप में सूखी इंटों से बना था मैनें इसे संगमरमर के कपड़े पहना दिए है।

अॅगस्तस के उतराधिकारीः-
(The Successor of Augustan)

अॅगस्तस ने सम्राट के पद को वंशानुगत बनाने की चेष्टा की। चूंकि इसका स्वयं कोई पुत्र नहीं था। इसलिए इसने परिवार के सदस्यों को वरीयता के अनुसार अपना उतराधिकारी नियुक्त किया। लेकिन उसका प्रिय भतीजा और दामाद जल्दी मर गए तथा तब उसने अपनी पुत्री के बच्चों को अपना उतराधिकारी बनाया। परन्तु अंत में उसे अपने Stepson (Tiberius)-टिबेरियस को अपना उतराधिकारी नियुक्त किया जो 14-37 ई० तक राज्य करता रहा। वह एक अत्याचारी शासक था। इसके बाद कलिगुला शासक बना उसे पागल कहा जाता था फिर Claudius (क्लाडियस) था जिसने ब्रिटेन को विजित किया इसके बाद नीरो शासक बना जो सनकी शासक के रूप में प्रसिद्ध हुआ। इसने सर्वप्रथम अपने योग्य सलाहकारों को हटा दिया, अपनी

माता की हत्या कर दी और अपने सभी रिश्तेदारों को मरवा दिया जिनसे उसे प्रतिद्वंदी होने का खतरा था। इस प्रकार उसने अपने वंश को ही समाप्त कर दिया। इसने राज्य का सारा धन व्यक्तिगत कार्यो पर खर्च कर दिया। इसलिए वह रोम की प्रजा में बहुत अलोकप्रिय हो गया। 64 ई० मे जब रोम आग में झुलस रहा था तो नीरो आराम से शराब पी रहा था। इस कारण रोम मे अराजकता की स्थिति फैल गई। Gaul (गॉल) तथा स्पेन में रोमन सैनिकों ने विद्रोह कर दिया। 68 ई० में नीरो को आत्म हत्या करनी पड़ी। इसके बाद रोम सैनिकों में स्पेन, प्रक्टोरियन गाडर्ज तथा राइन क्षेत्र मे भी ग ह युद्ध शुरू हो गया। इस प्रकार इस अराजकता की स्थिति में रोम मे एक वर्ष में 4 शासक हुए। अंत में Vespassian (वेस्पस्यिन) योग्य शासक सिद्ध हुआ। इसने रोम की खोई प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित किया। लेकिन इसका छोटा भाई डोनिश्यिन दूसरा नीरो सिद्ध हुआ और उसकी म त्यु के पश्चात् इस पूरे राजवंश का अंत हो गया।

सीनेट द्वारा नियुक्त सम्राट :-

डोमिश्यिन की म त्यु के बाद सम्राट का चुनाव जनता ने रोमन सीनेट पर छोड़ दिया। सीनेट द्वारा शासकों की नियुक्ति 180 ई० तक चली। प्रथम शासक ने केवल 2 वर्ष तक राज्य किया इसके पश्चात् 98 ई० में Trajan (ट्राजन) सम्राट बना जो कि एक स्पैनिश सैनिक था तथा राइन सेनाओं का कंमाडर था। इसी के काल मे रोम साम्राज्यसबसे विशाल था। Hadrian (हैड्रियन) 117-137 ई० तक शासक बना रहा। इसके काल में उतरी आयरलैंड तथा इंग्लैंड के बीच एक दिवार बनाई गई जिसे हैड्रियन दिवार कहते है। इसके अवशेष आज भी बचे हुए है। इसने रोम में कानूनों का निर्माण कराकर स्त्रियों और बच्चों को सुरक्षा दी और दासों से बुरा बर्ताव बन्द करवाया। प्रत्येक प्रांत में वहीं के नागरिकों को सेना में भर्ती किया गया ताकि वे अपनी मात भूमि की रक्षाकर सके।

Marcus Auralius (मार्क्स आरेलियस) ने 161-180 ई० तक राज्य किया वह एक दार्शनिक राजा था। परन्तु उसे जर्मनी कबीलों से पूर्वी सीमा पर लड़ना पड़ा। अंत में उसने जर्मनों को अपने यहां बसने की आज्ञा दे दी। म त्यु से पूर्व उसने अपने पुत्र (Commodus) कोमोडस को अपना उतराधिकारी नियुक्त किया। उनके काल से ही रोम का पतन आरंभ हो गया।

रोम का शांति काल :-
(Pax Romona)

27 ई०पू० तथा 180 ई० के बीच के काल में एक स्थाई स्थिर सरकार के कारण रोम में शांति का काल था, तो रोमन साम्राज्य का विस्तार भी हुआ। इसके अतिरिक्त सम द्धि के साथ-साथ रोम विश्व शक्ति बन गया। रोमनवासी रोम को ही सभ्य मानते थे। उनका यह भी विचार था कि रोम अमर है या सदा ही रहेगा।

इस काल में विशेषकर ॲगस्तस ने रोम का न केवल विस्तार किया बल्कि रोम शहर को बहुत सुंदर बनाया। इस काल में इसकी जनसंख्या दस लाख तक पंहुच गई थी, न केवल रोम के प्रांतों से बल्कि बाहर के देशों से लोग यहाँ व्यापार, शिक्षा, मनोरंजन के लिए आते थे तथा उनके साथ ही उनके विचारो का भी यहां आगमन हुआ। यूनानी सभ्यता और संस्क ति से स्वंय रोम की संस्क ति का भी विकास हुआ। रोम इस काल का अकेला ऐसा शहर था, जहां पक्की मिट्टी की पाइयों से शहर में आजकल जैसी पानी की व्यवस्था की गई थी। रोम की विभिन्न प्रांतों और अन्य शहरों से जोड़ा गया, यहीं से एक कहावत बनी कि (All the roads lead to Rome) सभी सड़के रोम को जाती है।

इस काल में दूर प्रदेशों से व्यापारिक संबंध स्थापित किए गए। विभिन्न प्रदेशों के व्यापारी यहां की मण्डियों में अपना सामान बेचने लगे। व्यापार के विस्तार के कारण रोमवासियों का जीवन स्तर काफी ऊंचा हो गया था। लेकिन रोम में एक ओर जहां लोग सम द्धशाली जीवन व्यतीत कर रहे थे वहीं दूसरी ओर निम्न वर्ग की दशा दयनीय थी। रोम में बेरोजगार भी बड़ी संख्या में थे जिनकी संख्या लाखों में थी।

सामाजिक स्थितिः-
(Social Conditions)

रोम में हुई सम द्धि का असर सभी नागरिको पर नहीं पड़ा इसलिए धन/सम द्धि के आधार पर रोम में वर्ग विभाजित समाज बन गया। जैसे गणतंत्र काल मे रोम में अल्पतंत्र (Aristocracy) का प्रभुत्व था लेकिन बाद में व्यापारिक उन्नति के कारण एक

नए प्रभावशाली व्यापारी वर्ग का उदय हुआ। शासकों ने इन्हीं अमीर व्यापारी वर्ग के लोगों को उच्च पदों पर नियुक्त किया। दूसरी ओर निम्न वर्ग में गरीब नागरिक, दुकानदार और बाजारों में कार्य करके जीवन जी रहे थे। इस काल में बहुत से बेरोजगार थे, जो सरकार पर आश्रित थे। इसी प्रकार की व्यवस्था रोम के प्रांतों में भी लागू थी। शहरों से बाहर अधिकतर छोटे क षक थे, जो दूसरों की जमीन पर खेती करते थे। बड़े-2 जमींदारों ने अपनी Estates स्थापित कर ली थी जिन्हें (Latifundia) कहा जाता था जिन पर अधिकतर दास खेती करते थे। ये अपने मालिक की सम्पति माने जाते थे। कुछ पढ़े लिखे दास अमीरों के बच्चों को शिक्षा देने का भी कार्य करते थे। यद्यपि युद्धों के कारण इस काल में दासों की संख्या में कमी हुई लेकिन दासता उसी प्रकार चलती रही। दास-प्रथा के कारण छोटे कारीगर और व्यापारियों को नुकसान हुआ क्योंकि अब इनके स्थान पर दासों से काम लिया जाने लगा। इस काल में लोगों ने विलासिता पूर्ण जीवन व्यतीत करना शुरू किया तथा मेहनत का कार्य `वल दासों के जिम्मे ही रह गया।

रोम शान्ति (Pax Romania) के काल की सम द्धि के कारण कुछ समय के लिए कठिनाईयाँ दूर हो गई। जबकि युद्धों के कारण तथा लूट और हर्जाने से मिलने वाला पैसा बन्द हो गया तो सरकार को कर बढ़ाने पड़े। राज्य का खर्च कम करने के लिए शासकों ने सैनिकों की संख्या में कटोती कर दी जिससे सुरक्षा पर प्रतिकूल असर पड़ा और रोमन सुरक्षा प्रणाली कमजोर होने लगी। इस काल में व्यापार में हुई व द्धि का राम पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा क्योंकि रोम में अधिकतर आयात की जाने वाली वस्तुएं विलासिता पूर्ण थी। जिस कारण रोम का बहुत सा धन बाहर देशों में जा रहा था। इस व्यवस्था से दुखी होकर एक रोमन लेखक ने रोम से बाहर जाने वाले धन पर रोष व्यक्त किया था। इस काल में होने वाले व्यापार का सन्तुलन रोम के पक्ष में नहीं था क्योंकि बहुत सा सोना था सोने के सिक्के भारत तथा अन्य दूसरे देशों में जा रहा था। इस कारण रोम में सोने के सिक्कों की कमी हो गई। इसकी पूर्ति के लिए नए सिक्कों की ढलाई की गई जिसमें सोने में मिलावट की गई। इसे व्यापारी सोने के सिक्कों के बराबर नहीं मानते थे। इस प्रकार एक वस्तु के लिए पहले की अपेक्षा अब ज्यादा सिक्के देने पड़े जिससे मुद्रा स्फीति बढ़ गई तथा यह रोम के लिए भारी समस्या बन गई।

साम्राज्य का हास्यः-
(Decline of Empire)

रोम में उत्तराधिकार सम्बन्धि कोई नियम नहीं था। सामान्यतः सम्राट अपने पुत्र या दत्तक पुत्र को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करता था। जिसे सिनेट स्वीक ति देती थी। परन्तु मार्क्स ओरिलियस की म त्यु के पश्चात उत्तराधिकार का यह नियम भी समाप्त हो गया। इस काल में सत्ता प्राप्ति के लिए राम के जनरलों के बीच ग ह युद्ध शुरू हो गया। तथा 234-284 ई० के बीच 50 वर्षो में यहाँ 26 शासकों ने शासन किया। इनमें से कुछ शासक तो केवल कुछ महीने ही राज्य कर पाए। इस काल में सभी सम्राटों का अन्त हिंसक हुआ। इस प्रकार रोम की प्रभुसत्ता का हास्य होना शुरू हुआ जिसे राज्य में अराजकता बढ़ी। जिसका सरकारी और प्रशासनिक कुशलता पर बुरा प्रभाव पड़ा। राज्य में शुरू हुए विभिन्न ग ह युद्धों के कारण व्यापार और वाणिज्य पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ा। इस कारण राज्य की आय में कमी आई। इस कमी को पूरा करने के लिए शासकों ने अधिकतर तांबे पर चढे सोने के पानी वाले सिक्के चलाए। जिस कारण वेतन और कीमतें बढ गई तथा मुद्रा स्फीति भी बढ़ गई। रोम में इन बदली हुई परिस्थितियों के कारण शहरों का भी विनाश हुआ। रोम पर विदेशियों ने आक्रमण करने शुरू कर दिए। इसी लिए बहुत से किसानों ने अपनी जमीनें अमीरों को बेच दी। हालांकि छोटे क षक या (Coloni) अपने खेतों पर खेती करते रहे। सीमान्त प्रदेशों में भी अमीर लोगों ने अपनी बड़ी-बड़ी Estates बना ली।

जनरल डायक्लेशिप को 284 ई० में सेना ने अपना सम्राट घोषित किया। इसमें सेना में सद ढ़ता प्रदान करने के लिए अनेक कठोर कदम बनाए। जिसके तहत इसने केन्द्रीयकरण प्रशासनिक एकरूपता के अलावा प्रांतों में शक्ति उपविभाजन जैसे कदम उठाए। इसने राजनैतिक और सैनिक का विभाजन किया और समाज में स्त्रीकरण निर्धारित कर समाज में अनुशासन की स्थापना की इसने नगरों तथा गांवों दोनों पर कर लगाए। जिस कारण गांव के गरीब लोग सर्फ बन कर रह गए। जबकि शहरी कारीगर और शिल्पियों ने स्वयं को संगंठित कर लिया। इसने न्यायालयों में नई व्यवस्था प्रारम्भ की तथा इसने दैतीय सिद्धान्तों पर आधारित साम्राज्य की स्थापना की। राज्य को इसने बड़े नौकरशाही ढांचे में लाने की कोशिश की।

साम्राज्य विभाजन

अपनी प्रशासनिक नीतियों को लागू करने के बाद डायक्लेशियन ने महसूस किया कि अलग-अलग प्रान्तों की सुरक्षा की जिम्मेदारी एक व्यक्ति द्वारा पूरी नहीं की जा सकती है। इसीलिए इसने साम्राज्य को दो भागों में बांट दिया जिसमें एक में

सम्राट शासन करने लगे दूसरे में (Maximianus) मैक्सिमायनस। इसने इन दोनों की सहायता दो युवक करेंगे जिन्हें सीजर कहा गया। जब राजा को 20 वर्ष बाद त्याग पत्र देगा तो ये युवक उनके उत्तराधिकारी के रूप में राज्य करेंगे। को 305 ई० में डायक्लेशियन को बीमारी के कारण सत्ता छोड़नी पड़ी जिस कारण राज्य में दोबारा ग ह युद्ध छिड़ गया। 312 को इस युद्ध में विजयी को Constantine शासक बना। उसने पूर्वी और पश्चिमी दोनों भागों को अपने नियंत्रण में कर लिया तथा (Byzantium) को अपनी राजधानी बनाया। इस कारण रोम शहर का महत्व कम हो गया।

सुधार :-
(Reforms)

कान्सनटाइन एक महान प्रशासक था। इसने अपने साम्राज्य के वित्तिय प्रबन्धन में मूलभूत परिवर्तन किए। इस काल में बड़े-2 जमीदारों को कर संग्रह कर्ता और भर्ती अधिकारी के रूप में कार्य करने पड़े। इस काल में क षक अपनी भूमि से बंध गए। स्वतन्त्र व्यापारिक श्रेणियों को वंशानुगत जातियों में परिवर्तित कर दिया गया। इनकी भी राज्य के प्रति कई जिम्मेदारियाँ थी।

सम्राट द्वारा राजधानी परिवर्तन करने का एक कारण यह भी था कि रोम में अधिकतर Pagans (पगन) या गैर ईसाई रहते थे। इसीलिए उसने एक नए ईसाई शहर को अपनी राजधानी बनाया और खुद भी ईसाई बन गया।

कान्सनटाइन के उत्तराधिकारी :-

337 ई० में अपनी म त्यु से पूर्व इसने राज्य को अपने तीनों पुत्रों में बॉट दिया। अचानक इसी समय Gauls ने रोम पर आक्रमण कर दिया । परन्तु जुलियन ने उन्हें हरा दिया और खुद सम्राट बन गया। इसने दोबारा गैर ईसाई धर्म शुरू किया। लेकिन वह उसे कियान्वित करने से पूर्व ही मर गया। इसके पुत्र ने सन्धि के तहत पर्सिया को वे सभी क्षेत्र लौटा दिये जिन्हें रोमनों ने जीता था। 364 ई० में पुनः साम्राज्य को उसके दो भाईयों में बांट दिया गया। एक रोम में तथा दूसरा कान्सन्टेतपोल में राज्य करने लगा।

रोम का पतनः-
(Decline of Rome)

370 ई० के पश्चात रोम के पतन की शुरूआत हो गई और इस काल में अनेक विदेशी आक्रमणकारियों ने रोम पर आक्रमण करने शुरू कर दिए। सर्वप्रथम Goths (गोथों) ने 378 ई० में रोमनों को एडरियनपोल में हरा कर सम्राट Valus को मार दिया। लेकिन रोम के पूर्वी क्षेत्र को सम्राट थियोडोस्थिस ने आक्रमणकारियों से बचा लिया। लेकिन 395 ई०में इसकी म त्यु के पश्चात इसका अल्पव्यस्क पुत्र इसका सम्राट बना। 410 ई० में गोत नेता Alaric ने रोम पर आक्रमण कर इसे तहस-नहस कर दिया।

451 ई० में हुणों ने एट्टिला के नेत त्व में रोम पर आक्रमण कर दिया। प्रारम्भ में तो रोमनो ने इन्हें फ्रांस में Chalonoas में रोक दिया। परन्तु अगले ही वर्ष हूणों ने समस्त इटली पर अधिकार कर उसे तहस-नहस कर दिया

रोम पर आक्रमण करने वाले Vandals वंडाल आखरी आक्रमणकारी थे, इन्होने रोम पर आक्रमण करके लूटपाट की और प्रदेशों को तहस-नहस कर दिया। 430 ई० में इन्होने कार्थेज तक को नष्ट कर दिया। उनके इन्ही कारनामों के कारण ही अंग्रेजी शब्द Vandalism का नामकरण हुआ। पश्चिमी रोम के आखरी शासक Romulous Angustulus को Odovacar ने हरा कर रोम साम्राज का अंत कर दिया।

दास-प्रथा :

रोमन साम्राज्य की सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था दास-प्रथा थी, जिसने इस साम्राज्य को बनाने में काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा रोम साम्राज्य के पतन में भी इसका काफी योगदान रहा। रोम में अनेक युद्धबंदियों को दास कार्यो में लगाया गया। सम्राट ऑगस्त के शासन काल में शांति व्यवस्था के कारण दासों की संख्या में कमी आई क्योंकि शांति के कारण कम युद्ध हुए और कम संख्या में दास रोम आए, न ही इस काल में दास क्रय-विक्रय द्वारा रोम लाए गए।

रोमन साम्राज्य मे दास प्रथा का काफी महत्व रहा। रोम के अतिरिक्त अन्य सभ्यताओं और संस्क तियों में भी यह प्रथा प्रचलित थी। यूनानी दार्शनिकों एवम् लोगों ने प्रत्येक संभव विषय के बारे में प्रश्न उठाए है लेकिन दास प्रथा नजरअंदाज किया गया।

अरस्तु ने भी इस प्रथा का विरोध नही किया, उसके अनुसार दास को अपने मालिक की आज्ञा माननी चाहिए यही उसके हित में है। यहां तक कि दासों ने स्वयं भी जो विद्रोह किए वे इस प्रथा के विरोध में नहीं बल्कि स्वयं की आजादी मात्र के लिए। रोम के प्रसिद्ध कानूनविदों के अनुसार प्राक तिक कानून के तहत सभी स्वतंत्र पैदा हुए है लेकिन इसके साथ इस बात का भी समर्थन किया कि दासता राष्ट्र के कानून के हित में है। रोमन दार्शनिकों ने भी दासों की स्थिति के लिए स्वयं उन्हें जिम्मेदार ठहराया। ईसाइयत के अनुसार भी दास राज्य धर्म था, उसने भी इसे समाप्त करने की कोशिश नही की। बल्कि स्वयं चर्च ने अपने लिए अनेक दास रखे। साम्राज्य के क्षय होने के साथ-साथ दासता में भी कमी आने लगी क्योंकि आर्थिक कारणों से बहुत से स्वतंत्र नागरिक भी दास बनने पर मजबूर हो गए।

इस काल में दास माता से पैदा हुआ शिशु भी दासता अपनाने के लिए विवश था। इनके अलावा युद्धों में हारे सैनिक, अपहृर्त नागरिक तथा स्वतंत्र नागरिक भी दास बनाए जा सकते थे। त तीय शताब्दी के मध्य में रोम के दूसरे देशों से हुए अनेक युद्धों के कारण बहुत से युद्ध बंदी दास बनाए गए। 167 ई.पू० के एक अभियान में रोम में 1,50,000 (डेढ लाख) युद्ध बंदियों को ऐपिरस (Epirus) में दास बनाया। क्रय-विक्रय द्वारा भी दासों को रोम लाया गया। इस काल में दासों की सबसे बड़ी मंडी डलोस (Delos) थी, यहाँ पर कई बार तो मात्र एक दिन में 20,000 (बीस हजार) दासों तक का क्रय-विक्रय (व्यापार) होता था। सिसिरों के समय रोम में दास काफी सस्ते थे और इस काल में साम्राज्य की आर्थिकता इन्हीं पर निर्भर थी। नीरो के शासनकाल में सीनेट के एक सदस्य के घर 400 दास कार्यरत थे और इतने ही दास उसके खेतों में कार्य करते थे। अगस्तस ने एक सूचना जारी कर दासों की अधिकतम संख्या 100 निर्धारित कर दी थी इसलिए उसके काल में प्रति स्वतन्त्र नागरिक की तुलना में तीन दास थे।

रोमन साम्राज्य में दूसरे देशों के भी अनेक दास थे। इनमें उतर के सेल्ट तथा जर्मन तथा पूर्व के एशियन थे। इसके अतिरिक्त रोमन साम्राज्य के विभिन्न प्रांतों के भी दास थे। इन्हें ना केवल कठिन कार्यो में लगाया जाता था। बल्कि इन्हें बेड़ियों से भी बाँधा जाता था ताकि वे भाग ना सके। इसी कारण बहुत से दास कम उम्र में ही लंगड़े हो जाते थे। इस काल में कई मालिकों ने अपने दासों को ट्रेंनिग देकर सक्रेटरी, अंकाउटेंट तथा डाक्टर तक बना लिया था। इसी प्रकार के एक शिक्षित दास ने Atticus के छापेखाने में सिसरों के कार्यो की नकल की तथा Arretium (ऐरेटियम) के सुन्दर म दभांडों का निमार्ण दासों द्वारा किया जाता था। ये म दभांड विदेशों में निर्यात किए जाते थे। इसके अलावा बहुत से दास स्वर्णकार के रूप में गहने बनाते थे। लैम्प, पाइप तथा कांच से निर्मित अनेक वस्तुएँ बनाते थे। इन्हीं में से अधिकतर दास तो अपने मालिकों को पैसे देकर अपनी स्वतंत्रता भी खरीद लेते थे।

रोमन कानून के अनुसार दास मालिक की सम्पति थे। वेरो (Varro) ने दासों को क षि उपकरणों के समक्ष रखा था उसके अनुसार ये उपकरण (articulate) बोलने वाले, (Inarticulali) ना बोलने वाले तथा (Mute) थे। दास को खरीदा, बेचा तथा किराए पर दिया जा सकता है। उसकी सम्पति तथा कमाई पर मालिक का हक था। दास माता की सन्तान भी मालिक की ही सम्पति होती थी। दास को मालिक की इच्छानुसार कपड़ा, खाना तथा सजा दी जाती थी।

अपराधिक मामलों में दास को स्वतंत्र नागरिक की अपेक्षा कठोर दण्ड का प्रावधान था। यदि वह किसी अपराध का गवाह है तो उसे प्रमाण देने होते थे। यदि दास राज्य के विरूद्ध, विद्रोह करने वाले के विरूद्ध कार्य करता तो राज्य उसे स्वतंत्र कर देता था। मालिक भी दासों को स्वतंत्र कर सकते थे। दास को वस्त्र और भोजन उपलब्ध करवाना मालिक का कर्तव्य था। सेटो (Ceto) ने उन्हें उतनी गेहूँ देने को कहा जितनी एक सैनिक को दी जाती थी। इसके अतिरिक्त उस थोड़ी शराब, तेल, मछली, नमक देने के अलावा वर्ष में एक बार पैंट, कमीज, जूते तथ कम्बल भी दिए जाते थे। हांलाकि मालिक दास को म त्युदंड भी दे सकता था, परन्तु कोई भी मालिक अपनी सम्पति स्वयं बरबाद नही करता था। वेरो (Vero) का कहना है कि मालिक को दास को मारने की बजाय उपर्युक्त गालियों से ही काम चलाना चाहिए। कई मालिक दासों को वेतन भी देते थे। यदि कोई मालिक बिना उतराधिकारी के मर जाए या वह अपनी वसीयत में दास को स्वतंत्र करने की बात लिखे तो दास स्वतत्र हो सकता था। मालिक अपनी मर्जी से खुश होकर भी दास को स्वतंत्रता दे देता था। इसके अलावा यदि दास अपने मालिक की जान बचाए या कोई दासी अपने मालिक से पुत्र को जन्म दे तो मालिक उसे स्वतंत्र कर सकता था।

सामान्यतः वही दास स्वतंत्र होते थे जो मालिक के घर या नजदीक कार्य करते थे। खेतों में कार्य करने वाले दास अधिकतर बेड़ियों मे ही जकड़े रहते थे। इन फार्मो के मालिक दासों से अपेक्षाक त अधिक कार्य करवाते थे। रोम मे प्रथम शताब्दी मे यह

कानून बना कि अकारण यदि कोई मालिक दास को मार दे तो वह अपराध है, यदि किसी दास को भूखा रखा जाता है तो वह सम्राट से शरण ले सकता था तथा उसका यह अधिकार है कि वह दूसरे मालिक को बेच दिया जाए। परन्तु वास्तव में दास वध करने वाले मालिक को सजा नहीं होती थी। केवल मानवता ही दासों से अच्छे व्यवहार का कारण नही थी, परन्तु जैसे एन्टोनिनस पीयुस (Antoninus Pius) ने कहा है कि यह स्वयं मालिक के हित में है ताकि दास विद्रोह ना करे।

प्रदेश में दास हमेशा विद्रोह करने के लिए तैयार रहते थे। Posidonius (पोसीडोनुस) नामक दार्शनिक ने लिखा है कि सिसली में 134-32 ई०पू० में जो दास विद्रोह हुआ, उसका मुख्य कारण उनसे दुर्व्यवहार था। इसके अतिरिक्त रोम मे अनेक दास विद्रोह हुए जिनमें प्रमुख था प्रथम शताब्दी का विद्रोह। इस विद्रोह में 70,000 दासो ने Spartacus (स्पार्टाकस) के नेत त्व में विद्रोह किया तथा इस विद्रोह को दबाने के लिए रोमन सेना को पूरा एक वर्ष लगा।

Principate (प्रिंसीपेट) काल में दासों से पहले काल की अपेक्षा सद्व्यवहार किया जाता था। दासों द्वारा किए गए अनेक विद्रोहों के कारण ही एक रोमन कहावत है कि सभी दास दुश्मन हैं। दास अपने मालिक की हत्या करने के लिए हमेशा तत्पर रहते थे। अगस्तस के काम मे बनाए गए एक कानून के अनुसार यदि मालिक की हत्या हो गई तो उसके घर में रहने वाले सभी दासों को म त्युदण्ड दिया जाता था। एक बार एक दास लड़की की मालकिन की हत्या हुई तो वह इतनी भयभीत थी कि शोर नहीं मचा सकी इस पर Hardirian (हडरियन) ने आज्ञा दी कि उसे म त्युदण्ड दिया जाए। क्योंकि उसने मालकिन की रक्षा के लिए शोर नहीं मचाया।

रोम में दास स्वयं को स्वतंत्र भी करा सकते थे। वास्तव में दासता रोम साम्राज्य का अभिन्न अंग थी। लेकिन दासों के अधिकार काफी सीमित थे। दास को सैनिक गतिविधियों में हिस्सा लेने का अधिकार नही था न ही वह राज्य या नगरपरिषद् के कार्य करने के लिए स्वंत्रत था। बाद के काल में अनेक दास आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो कर अमीर बन गए थे। दास राज्य और राजनैतिक गतिविधियों में हिस्सा ना ले पाने के कारण व्यापारिक गतिविधियों में हिस्सा लेने लगे। इससे बहुत से स्वतंत्र हुए दास अमीर बन गए। कुछ दास तो शिक्षा ग्रहण करके काफी तरक्की कर गए तथा अपने बच्चों को भी अच्छी शिक्षा प्रदान करने में सक्षम बने। इस काल मे रोम का प्रसिद्ध कवि (Horace) होंरेस इसी तरीके से स्वतंत्र हुए एक दास का पुत्र था। बाद में नीरों के काल में तो यहाँ तक आक्षेप लगाया जाने लगा कि अधिकतर सेनेटरों की रगों में दासों का खून बह रहा है, लगभग एक शताब्दी बाद ऐसे ही एक दास मार्क्स हेल्वियस पैट्रि नैक्स (Marcus Helivivs Pertinax) ने सैनिक और प्रशासनिक योग्यता के कारण 193 ई. में स्वयं को रोम का सम्राट घोषित कर दिया था।

कुछ दास एवम् स्वतंत्रता प्राप्त दास शासकों के काफी करीब भी थे और अच्छा जीवन व्यतीत करते थे। Tiberias (ताइबेरियस) के काल मे एक दास जो कि Gaul (गॉल) में कर वसूली के बाद रोम वापिस आया तो अपने साथ 16 दास और लाया था। इनमें से दो दास उसकी तश्तरी उठाने वाले थे। ये रोम के दासों की सुद ढ़ आर्थिक स्थिति को दर्शाता है। कुछ स्वतंत्र हुए दास काफी धनाढ़य थे, तथा रोम में वास्तविक राज्य कर रहे थें इनमें Felix नामक दास मुख्य था जो पहले एक प्रांत का गवर्नर भी रह चुका था।

हांलाकि रोमन साम्राज्य के निर्माण में दासों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। इसके बावजूद रोमन साम्राज्य के तकनीकी विकास में ये बाघा सिद्ध हुए। दासता के कारण रोमवासी आलसी हो गए और प्रत्येक कार्य के लिए वे उन्हीं पर निर्भर हो गए। इसलिए कोई नया अविष्कार नही हो पाया जिस कारण रोम वैज्ञानिक और तकनीकी क्षेत्र में पिछड़ गया जो बाद मे रोम साम्राज्य के पतन का एक मुख्य कारण भी बना।

रोम का पतन
(Decline of Rome)

रोम एक बहुत बडा साम्राज्य था जिसमें इंग्लैड, स्पेन पुर्तगाल, जमर्नी, ग्रीस, एशिया, माइनर, मिश्र तथा उत्तरी अफ्रीका का बडा क्षेत्र जिसमें कार्थेज इत्यादि थे यह साम्राज्य एक ही दिन में बन कर खडा नही हो गया तथा न ही इसका पतन एक ही दिन में हुआ बल्कि इसके पतन में एक लम्बी अवधि लगी न ही कोई एक कारण ऐसा है जिसे हम इसके पतन का जिम्मेवार ठहरा सके निम्नलिखित कारणों के सामुहिक प्रभाव के कारण इतने बड़े साम्राज्य का पतन हुआ।

विदेशी आक्रमण :-
(Foreign Invention)

पैम्स रोमाना (Pax Romana) जो रोमन शान्ति के काल में रोमन की सेनाओं को अक्सर जर्मन कबीलों से जूझना पडा था जो कि राइन (Rhine) तथा डेन्यूब (Denube) नदियों के उत्तर में रहते थे इनके भिन्न-2 कबीलें थे जिनके बारे में रोमन इतिहासकार टैसीटस Tacitus ने काफी व तान्त दिया था इन की बढती हुए आबादी के कारण नए क्षेत्रों पर कब्जा करने के लिए ये रोग की ओर आकर्षित हुए यहां की सम द्धि तथा सुहाना गर्म मौसम भी उन्हें भा गया। उघर रोम अपने आन्तरिक युद्धों के कारण काफी कमजोर हो चुका था तथा रोम की सीमान्त सेनांए इन्हें रोकने में असमर्थ हो गई।

जब जर्मन के बालर्र रोम में पहुँचने लगे उसी समय चतुर्थ सदी में हुणों में मध्य ऐशिया से आकार पूर्वी यूरोप में जर्मन कबीलों पर आक्रमण कर दिया तथा काले सागर के उत्तर में रहने वाले ओस्ट्रोगोथ (Ostrogoth) कबीले को हरा दिया हारके डर से एक अन्य कबीलें विसीगोथ (Visigoth) ने रोमन साम्राज्य में शरण ली। 376 ई० में इन्हें डेन्युब नदी पार कर उनके साम्राज्य में आने की आज्ञा दी। परन्तु दो वर्ष बाद ही रोम की सेना को इन विसीगोथों के विरूद्ध अभियान करना पड़ा। परन्तु रोम की सेनाओं को इन्होंने एड्रियनपोल के युद्ध में हरा दिया इस युद्ध के बाद हर्मन लोग हूणों से बचने के लिए रोम में घुस आए तथा उन्होंने रोमन शहरों में लूटपाट मचा दी। 410 ई० में विसीगोथ जनरल एलारिक (Alaric) ने इसी पर आक्रमण कर रोम को जीत लिया। रोमनों ने उन से सन्धि कर उन्हें दक्षिणी गाल (Gaul) तथा स्पेन दे दिया।

इसी बीच हूणों ने पूर्वी यूरोप के क्षेत्र जीत लिए जिनमें आज रोमानिया, हंगरी, पोलैंड, चैकोस्लोवाकिया इत्यादि है जब उन्होंने अपने नेता एट्टिला के नेत त्व में राइन नदी पार कर ली तो रोम ने कुछ जर्मन कबीलों के साथ एक संध बना 451 में ट्रोयेज (Troyes) की लडाई में हूणों को वापिस होने पर मजबूर किया। इस युद्ध के कुछ वर्ष बाद हूण नेता की म त्यु हो गई तब कभी जाकर बचा खुचा रोमन साम्राज्य चैन ले सका। परन्तु 412 ई में दूसरी ओर एक अन्य जर्मन कबीला वन्डाल (Vandal) गाल (Gaul) होते हुए स्पने पहुँच गया उसके बाद 430 ई० में उसने कार्थेज पर आक्रमण कर दिया उसके बाद 455 ई में रोम को तहस नहस कर दिया दूसरी ओर रोम की सीमान्त सेनाए बरगुण्डरीयनों (Burgun drians), फ्रैकों (Franks) तथा बाद में लोम्बार्डों (Lombards) को पश्चिमी यूरोप के रोमन साम्राज्य के नगरों को जीतने से नही रोक सकी। 476 ई० में एक मामूली से जर्मन नेता ओडोसर (odocer) में रोम पर कब्जा कर अपने आप को इटली का राजा घोषित कर दिया।

राजनैतिक कारण :-
(Political Causes)

रोम के पतन में बहुत से राजनैतिक कारणों का भी हाथ है रोम के नागरिकों में धीरे-2 सरकार के प्रति जिम्मेवारी की भावना समाप्त होने लगी। वे यह सोचने लगे एक सम्राट ही उनकी जरूरतों की देखमाल करें तथा सरकार चलाना उसी का काम है रोम के 65 सम्राटों में कुछ एक को छोड कर अधिकतर क्रूर तथा अत्याचारी थे राज्य में उतराधिकार का कोई पक्का नियम नहीं था अगस्तस न वंशानुगत प्रणाली स्थापित करने की चेष्टा की परन्तु चार ही राजाओं के बाद वीरों के काल में आन्तरिक कलह के कारण जब उसे आत्महत्या करनी पड़ी तो सेना की सहायता से राजाओं की नियुक्ति होने लगी 117 ई० में सीनेट द्वारा ट्रामन की नियुक्ति के बाद इसी द्वारा 193 ई० तक साम्राटों की नियुक्ति होती रही। उसके बाद अपने सेनाओं के बल पर साम्राट बने जिनमें कई सम्राट काफी क्रूर थे इस तरह के राजाओं के होने के कारण जनता में रोष उत्पन्न हो गया तथा विद्रोह होने लगे। साम्राज्य मे विभिन्न राष्ट्रीयताओं एवं जातियों के लोग मौका पड़ते विद्रोह करने लगे। रिबेरियस के काल में ब्रिटेन तथा स्पेन में विद्रोह हो गए। इससे साम्राज्य ने विकेन्द्रीयकरण के तत्व मजबूत होते चले गए तथा साम्राज्य कमजोर होता चला गया।

प्राशसनिक दोषों के कारण भी साम्राज्य कमजोर हो गया। शासन तन्त्र काफी खर्चीला हो गया तथा अधिकारी भ्रष्ट अयोग्य तथा घूसखोर हो गए। लगान वसूली में वे क षकों को तंग करने लगे इस कारण जन विरोध उतपन्न हो गया प्रान्तिय शासकों की महत्वाकांक्षा एवं स्वतन्त्रता के प्रति आकर्षण ने उन्हें साम्राज्य के प्रति निष्ठारवान नही होने दिया तथा वे आपसी झगड़े एवं साम्राज्य को कमजोर कर विद्रोह करने लगे।

साम्राज्य की विशालता भी पतन का एक कारण बनी क्योंकि इतने बड़े साम्राज्य का एकजुट रखना कठिन था। यद्यपि अगस्तस तथा मार्कस ओरियस हेडरियन इत्यादि सम्राट इसे सुरक्षित रखने में सफल हुए परन्तु कमजोर एवं अयोग्य शासक यह काम

नहीं कर सके। जब सम्राट थिओडीयस न रोमन साम्राज्य का विभाजन अपने दो पुत्रों के बीच कर पूर्वी तथा पश्चिम रोम साम्राज्य बनाए तो यह भी सम्राज्य के विघटन का कारण बना। सम्राट कान्सटेटाइन ने जब रोम की राजधानी बनाई तो यह भी साम्राजय के विघटन का कारण बना। सम्राट कान्सटेटाइन ने जब रोम की राजधानी बनाई तो पश्चिमी रोमन क्षेत्र असुरक्षित हो गए तथा वहां बबर्र जातियों के आक्रमण शुरू हो गए। जब 476 ई० में पश्चिमी रोमन साम्राज्य का अन्त हो गयां सेना के संगठन में कमी तथा नौ सेना का आभाव भी रोम की शक्ति को दुर्बल करने में उत्तरदायी रहे रोमन सेना में विभिन्न राष्ट्रीयताओं के सैनिक होने से उनकी रोम के प्रति निष्ठा की कमी थी दूसरी ओर बर्बर जातियां अपने जनरल के प्रति वफादार तथा उस की जीत के लिए लड़ती थी इसलिए वे विजयी रहे।

आर्थिक कारण :
(Economic Causes)

इतने बड़े रोमन साम्राज्य को चलाने के लिए बहुत धन की आवश्यकता थी जिसका अधिक हिस्सा पूर्व क्षेत्रों से आता था जब पूर्वी रोमन साम्राज्य अलग हो गया तो वहां से पैसा आना बन्द हो गया इसी ओर रोमन सेनाओं ने लूट कर धन रोम लाना बन्द कर दिया। आन्तरिक युद्धों तथा बाहरी आक्रमणों के कारण व्यापार तथा क षि को क्षति पहुँची जिससे कर संग्रह में कठिनाई आई राजकोष की पूर्ति के लिए प्रजा पर अनुचित कर लगाने पड़े तथा कर की वसूली के लिए ठेका प्रणाली अपनाने से गरिबों पर अत्याचार होने लगे, जिससे लोगों की राज्य के प्रति निष्ठा नहीं रही जनसमर्थन तथा सहयोग के आभाव में कोई साम्राज्य टिक नही सकता इसके अतिरिक्त राज्य ने सिक्को के प्रचलन को अधिक करने के लिए सिक्को में मिलावट कर अधिक सिक्के चलाए, जिसके कारण मुद्रास्फीति बढ़ गई जो कीमतों में व द्धि का कारण बनी जिनसे रोम की जनता पर भार बढ गया। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में रोम के अधिक सिक्कों को भुगतान करना पड़ा तथा व्यापार में क्षति हो गई इससे न केवल सम द्धि पर फर्क पड़ा बल्कि बेरोजगारी भी बढ़ी रोम में लाखों बेरोजगारों को राज्य की ओर से अनाज तथा अन्य सहायता देनी पड़ी जिससे रोम के संसाधनों में भारी कमी आ गई तथा साम्राज्य स्थिर नही रह सका।

सामाजिक कारण :
(Social Causes)

रोम के तत्कालीन इतिहासकारों का कथन है कि नागरिकों की रोम के प्रति निष्ठा तथा रोम के नागरिक होने की प्रतिष्ठा, जो एक समय में रोम को एकीक त रखने का एक महत्वपूर्ण कारण बनी उसमे धीरे-धीरे कमी आने लगी। अब बहुत से लोग ये समझने लगे कि उनके रोम के प्रति कोई कर्त्तव्य नही हैं तथा न ही सरकार में उनकी कोई भागीदारी है। क्योंकि अब उसमें रोमनों के अतिरिक्त अन्य राष्ट्रीयताओं एवं जातियों के लोग भी थे जिनकी रोम के प्रति निष्ठा नही थी। यही हाल रोम के सैनिकों का भी रहा। रोम के नागरिक काफी आलसी तथा रोम के प्रति वैराग्य की भावना आ गई, मेहनत करना व केवल दासों का ही काम मानने लगे। सभी कामों के लिए वे दासों पर ही आश्रित रहने लगे तथा स्वयं अपना समय खेल तमाशों एवं उत्सवो में ही गुजारने लगे। दासों की लड़ाईयों, दासों के जंगली जानवरो से मुकाबले करवाने, दासो से बढ़ते अत्याचारों के कारण दास विद्रोह पर उतारू होने लगे तथा रोमन सेनाओं को इनका दमन करना पड़ा। जिस तरह रोम को बनाने मे दासों का महत्वपूर्ण योगदान रहा उसी प्रकार दासों के कारण ही साम्राज्य का क्षय होना भी प्रारम्भ हो गया। इस तरह हम देखते है कि किसी एक कारण से रोम का अन्त नहीं हुआ बल्कि बहुत से कारणों के इकठठे होने के कारण धीर-धीरे रोम के साम्राज्य पतन हुआ परन्तु इतना सब कुछ हाने के बावजूद भी यह साम्राज्य एक लंबे काल तक चलता रहा। इसके पतन के तत्कालीन कारण बने बर्बर जातियों के रोम पर आक्रमण जिससे रोमन साम्राज्य धाराशायी हो गया।

भाग-III

अध्याय-1
वैदिक सभ्यता
(Vedic Society)

वेदों से प्राप्त समाज एवं उनकी आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्क तिक जीवन को हम दो प्रमुख भागों में बांट सकते है। प्रथम ऋग्वैदिक संस्क ति का भाग है प्रारिम्भक वैदिक संस्क ति, जिसकों जानने का स्त्रोत ऋग्वेद है जोकि आर्यो का प्राचीनतम ग्रंथ है। उतरवैदिक संस्क ति का ज्ञान हमें यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद इत्यादि से होता है। परन्तु सर्वप्रथम हमें यह जान लेना आवश्यक है कि क्या आर्य भारत के ही मूल निवासी थे या कहीं दूसरे देश से प्रस्थान कर भारत में बस गए थे। इस विवाद की शुरूआत तब हुई जब कलोरेंस के एक व्यापारी ने, जोकि गोआ में 5 वर्ष तक निवास कर (1583-88), वापिस जाते समय यह खोज कर सका कि संस्क त तथा यूरोप की महत्वपूर्ण भाषाओं में कोई सम्बन्ध है। 1786 ई० में सर विलियंम जोनस ने सुझाव दिया कि संस्क त तथा यूरोप की महत्वपूर्ण भाषाओं में संबध का कारण है कि इन भाषाओं को बोलने वाले कभी एक समय में इक्कठें रहे होगें। उन्होनें ग्रीक, लैटिन, गोथिक, सेल्टिक, संस्क त पर्शियन आदि भाषाओं का उद्‌गम केन्द्र एक ही माना तथा इन भाषाओं को इण्ड्रों यूरोपियन नाम दिया।

आर्यो के मूल देश के बारे में विभिन्न के मत है। कुछ विद्वान आर्यो को भारत का मूल निवासी मानते है तो कुछ इन्हें विदेशी मानते है जो मूलतः दूसरे देश से आकर भारत में बस गए। अविनाश चन्द्र दास आर्यो को सप्त सैन्धव प्रदेश, महामहोपाध्याय गंगावाभ का इन्हें ब्रह्मर्षि देश, राजबली पांड़े के विचारों अनुसार मध्य देश, श्री एल.डी. कब्ला आर्यो को कश्मीर या हिमाचल प्रदेश, श्री डी एस त्रिवेदी के मतानुसार देविका प्रदेश आदि का मूलनिवासी मानते हैं गाइलण महोदय के मतानुसार आर्यो का मूल निवास स्थान हंगरी श्री बालगंगाधर तिलक आर्यो का आदि देश उतरी ध्रुव मानते हैं। पेंका नामक विद्वान के विचारों से इनका मूल निवास जर्मनी है, डॉ० मच के अनुसार पश्चिमी बल्टिक क्षेत्र, नेहरिंग के अनुसार रूस आर्यो का मूल निवास स्थान मानते है। परन्तु अधिकांश विद्वानों का मत है कि आर्य मध्य एशिया से भारत आए है। क्योंकि इसी क्षेत्र से हमें आर्यो के देवताओं इन्द्र, वरूण, मित्र तथा नस्त्य इत्यादि के प्रमाण एलअमरणा तथा बोगाणकोई नामक स्थलों से मिलते है। इसके अलावा आर्यो के अधिकतर धार्मिक कर्मकाण्डों के प्रमाण भी इसी जगह से मिलते है। जैसे - म तकों का दाहसंस्कार, अश्व केन्द्रित अल्पतंत्र, अग्नि पूजा, रथगाड़ी, छोड़ों का प्रथम प्रयोग इत्यादि का प्रमाण मध्य एशिया के स्थलों पर देखने को मिलता है। गांधार श्वाधान संस्क ति के घूसर म दभांडों पर आर्य म दभांडों की छाप मिलती है।

आर्य भारत में सर्वप्रथम सरस्वती नदी एवं तथा उसके आस-पास के क्षेत्र तक सीमित थे। इस काल में ये अपने मवेशियों के साथ विभिन्न कबिलों में बंटे हुए थे और इन्हें पूर्वी भारत के बारे में अधिक जानकारी नहीं थी क्योंकि ऋग्वेद में सरयु, गंगा, नदियों का उल्लेख मात्र एक या दो बा हुआ है। इस काल में पुरू, युद्ध और तुर्वसु आदि महत्वपूर्ण कबिले थे। लेकिन उतरवैदिक काल में आर्यो ने गंगा-यमुना दोआब के क्षेत्र में अपना प्रसार किया और बड़े-2 नगरों एवं जनपदों की स्थापना की।

ऋग्वैदिक कालीन राज्य सरंचना :-
(Rigvedic State Structure)

इस काल में हमें राज्य की सरंचना का अधिक ज्ञान, साक्ष्यों के अभाव में नही है। प्रारंभिक वैदिक काल में राज्य का पूर्ण स्वरूप सामने नहीं आया था। इसकी जानकारी हमें प्राचीन स्त्रोतों से मिलती है। प्रसिद्ध सप्ताहंग सिद्धांत के आधार पर यदि हम देखें तो इस काल में ये सातों अंग 1. राजा 2. मंत्री मण्डल 3. क्षेत्र 4. संसाधन 5. किले 6. सेना 7. सहयोगी, में से अधिकतर अंग नही थे। प्रांरभिक वैदिक समाज अलग-अलग कबीलों में विभाजित था, जिन्हें जन या विश कहते थे। इन कबीलों के अनार्यो

से परस्पर संघर्ष चलता रहता था इसके अलावा ये आपस में भी युद्ध करते रहते थे। इस काल के प्रमुख कबीले युद्ध, तुरकसु, द्रहयु, अनु और पुरू इत्यादि थे। ये एक स्थान पर टिक कर निवास नहीं करते थे बल्कि जगह-जगह घूमते रहते थे। यानि लंबे अरसे तक कहीं स्थायी निवास नहीं करते थे। इस प्रकार क्षेत्र, जो राज्य का एक महत्वपूर्ण अंग होता है इस काल में नही था। इस काल में ना कोई महत्वपूर्ण शासक था बल्कि प्रत्येक कबीले (जन) का अपना अलग मुखिया होता था जो राजन कहलाता था। यद्यपि यह पद वंशानुगत होता था जिसका प्रमाण हमें दिवोदास तथा सुदास राजाओं से मिलता है। इसके अतिरिक्त ऐसे भी उदाहरण है जब सर्वसम्मती से राजा का चुनाव किया हो तथा आवश्यकता पड़ने पर जनता ने राजा को पदच्युत कर दिया। वंशानुगत राज्याधिकार तभी तक वैध था जब तक जनता उसकों अनुमोदित करती। इस काल ने राज्य के कोई संसाधन नही थे तथ लोगों की सम्पति उनके मवेशी होते थे। जिसके पास ज्यादा गाय होती वह ज्यादा सम्पन्न माना जाता था। राजकोष जो राज्य का एक महत्वपूर्ण अंग होता है इस काल में नही था। इस काल में किले और सैनिकों का महत्व था। सेना स्थायी नही थी, आवश्यकता पड़ने पर आम जनता सैनिक कार्य भी करती थी। सेना में पैदल और घुड़सवार दोनों शामिल थे। राजा या राज्य के सहयोगी राज्य का अन्तिम सांतवा अंग माना जाता है इस काल में सभी जन आपस में झगड़ते रहते थे यद्यपि दश राजाओं के संघ का संयुक्त युद्ध करने का प्रमाण ऋग्वेद में मिलता है।

उपर्युक्त साक्ष्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि इस काल में राज्य सरंचना अभी नही हुई थी। इस काल में राज्य का स्वरूप कबीलाई संरचना पर आधारित था। जिसमें कबीलें के लोगों के आपसी संबध थे। इस काल के जनों का कोई स्थाई क्षेत्रीय आधार नही था तथा राजन या कबीलें का मुखिया अपने कबीलें के साथ हर समय घूमता रहता था। इस काल में अश्व केन्द्रित राजतंत्र का काफी महत्व था जिनके पास घोड़े थे उन्हें उच्च माना जाता था। राज्य सता के सूचक संघटनों के प्रमाण हमें ऋग्वेद से नही मिलते। ऋग्वेद में वर्णित व , व ता, जन, विश, गण, ग ह, व्रजा तथा ग्राम इत्यादि शब्दों का उल्लेख जनसमूह अथवा योद्धा समूह के लिए हुआ है। जो इस बात की पुष्टि करता है कि ऋग्वैदिक समाज अस्थाई और घुमक्कड जनसमुदाय था तथा रक्त संबधों पर आधारित जन-जातिय समाज संगठित था।

राजनैतिक इकाइयां :-
(Political Units)

ऋग्वैदिक काल में सामान्यतः राजतन्त्रात्मक सरकार थी। राजन शब्द का उल्लेख ऋग्वेद में अनेक बार हुआ है। ऋग्वेद की एक ऋचा में सिन्धु प्रदेश के राजा का उल्लेख है तथा अन्य में सरस्वती पर निवास कर रहे राजा चित्र का उल्लेख है। सुदास का दस राजाओं के संगठन से युद्ध के प्रमाण मिलते है। दान-स्तुतियों में भी राजाओं का उल्लेख मिलता है। ये प्रमाण राजतंत्र की ओर इशारा करते है। इसके अतिरिक्त गण, गणपति तथा ज्येष्ठ का उल्लेख गणतंत्रात्मक स्वरूप होने की ओर इशारा करता है।

ऋग्वैदिक काल में राज्य जनों में विभक्त था और प्रत्येक जन में एक ही कबीले के लोग निवास करते थे जिनका आपस में रक्त- संबध थे। सूपास के साथ युद्ध करने वाले दस राजाओं के संगठन का राजनैतिक स्वरूप कैसा था, इसकी जानकारी हमारे पास नही है।

इस काल में राजा की स्थिति काफी महत्वपूर्ण थी हांलाकि वह अपने कबीलें का मुखिया ही था। लेकिन कुछ राजा कबीलें के मुखिया की स्थिति से उपर थे। सामान्यतः वंशानुगत राजतंत्र के प्रमाण मिलते है। किन्तु ऐसे भी प्रमाण है कि किन्हीं विशेष परिस्थितियों में विश (जो राष्ट्र की एक इकाई थी) राजपरिवार या राजसदस्यों में से राजा का भी चुनाव कर सकते थे।

सभा एवम् समिति :-

ऋग्वेद में सभा और समिति का अनेक बार उल्लेख हुआ है। सभा और समिति के विषय में विद्वानों में मतभेद है। हिलब्रैण्ड का कथन है कि समिति एक राजनैतिक संस्था थी तथा सभा उसका अधिवेशन स्थल। लुडविंग सभा को उच्चतर सदन तथा समिति को निम्न सदन का नाम देते है। परन्तु ऋग्वेद में इस बात का प्रमाणित करने के उल्लेख कहीं नहीं मिलता। जिमर महोदय का कहना है कि सभा ग्राम संस्था थी तथा समिति केन्द्रीय संस्था। ऋग्वेद में समय शब्द के उल्लेख (सभा के योग्य) से पता चलता है कि सभा का कोई प्रशासनिक उद्देश्य था तथा समिति को वैदिक कबीलों की एक संस्था के रूप में माना जा सकता है। लुडंविग के अनुसार समिति में विश के लोग ब्राह्मण तथा अन्य उच्चवर्ग के व्यक्ति शामिल थे। यद्यपि सभा और

समिति के कार्यो में अंतर स्पष्ट करना कठिन है लेकिन प्रतीत होता है कि समिति एक ऐसी संस्था थी, जिसमें कबीलों के प्रमुख कार्य सम्पन्न किए जाते थे तथा राजा उनका अध्यक्ष होता था। तथा सभा समिति की तुलना में कम महत्व की संस्था था जिसमें समाज के सभी वर्ग शामिल थे। यद्यपि हमें सभा और समिति के कार्यो एवम् अधिकारों का अधिक ब्यौरा ऋग्वेद में नही मिलता। लेकिन इन दोनों संस्थओं का समाज में काफी महत्व था तथा ये इस काल में राजा की शक्तियों पर नियंत्रण रखती थी।

इन दोनों राजनैतिक संस्थाओं के अतिरिक्त राजा पर पुरोहित का भी काफी प्रभाव था। यह राजा के साथ न केवल युद्धों में जाता था। बल्कि यज्ञ और प्रार्थनांए भी सम्पन्न करता था। इस काल के शक्तिशाली पुरोहितों में वशिष्ठ तथा विश्वमित्र के नाम उल्लेखनीय है जिनका राजा पर काफी नियंत्रण था।

प्रशासनिक संस्थांए :-
(Administrative Institutions)

इस काल में सम्पूर्ण कार्य अनेक जनों में विभक्त थे। ऋग्वेद में उल्लिखत पं चजन उस काल के पंच महत्वपूर्ण कबीलें थे। इनके अतिरिक्त अन्य छोटे कबीलें भी थे। ऋग्वेदि में विश शब्द का उल्लेख अनेक बार हुआ है जिसका उस काल की राजनैतिक संस्था में महत्वपूर्ण स्थान था। सभी कबीलें के सदस्य मिलकर राष्ट्र या कबीलें के मुखिया का निर्माण करते थे। विश, जन तथा गांव में विभक्त थे। सुरक्षा के लिए पुर का निर्माण करते थे। विश, जन तथा गांव में विभक्त थे। सुरक्षा के लिए पुर का निर्माण किया जाता था जो पत्थरों से निर्मित थे। ग्राम एक ही कुल की अलग-अगल इकाईयों के बने थे। जिसमें कुल का प्रशासनिक संगठन में महत्व था। एक स्थान पर कुलपा या कुल का संरक्षक का व्राजपति जो शायद ग्रामणी ही था के साथ एक झण्डें तले लड़ने का वर्णन है। यह वर्णन हमें कुलपा के ग्रामीण के साथ सिविल और सैनिक कार्यो के महत्व को दर्शाता है। सेनानी उस समय का सैनिक अधिकारी था, तथा पुरोहित के समान ही यह महत्वपूर्ण स्थान रखता था। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद में हमें स्पश का भी उल्लेख मिलता है। दूत या संदेशवाहक का कार्य इस काल ने राजा के संदेश लोगों तक या अन्य कबीलों तक पहुंचाना था।

उतरवैदिक कालीन राज्य संरचना :-
(Later Vedic State Structure)

उतरवैदिक काल ने आर्यो का प्रसार पूर्व में गंगा-यमुना दोआब के क्षेत्र में हो चुका था। अथर्थवेद में बहलीक प्रदेश से लेकर मगध तक का उल्लेख हैं इसके अतिरिक्त पूर्वी तथा पश्चिमी समुद्री तट के बारे में भी उतरवैदिक साहित्य में वर्णन है। इस काल में क्षेत्रीय राज्यों की स्थापना हो चुकी थी तथा कही-कहीं गणराज्यों का भी वर्णन मिलता है।

उतरवैदिक काल में राज्य और साम्राज्य अस्तित्व में आए क्योंकि इस काल में छोटे-2 कबीलें आपस में मिल गए थे। साम्राज्य का संस्थापक सम्राट कहलाता था, जिसके अधीन अन्य छोटे-2 राज्य भी थे। राजा शब्द का प्रयोग यद्यपि छोटे स्वतंत्र राज्य का घोतक है। परन्तु इसे अधिकतर अधिन सामंत राजा के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। इस काल में राजा का दैवीक उत्पति का सिंद्धात भी प्रचलन में आया क्योंकि एक स्थान पर पुरू राजा अपने आपकों इन्द्र तथा वरूण के समान बताता है और उनके द्वारा प्रदान की गई शक्तियों का जिक्र करता है। संहिताओं तथा ब्राह्मण ग्रंथों में भी वाजपेय तथा राजसूय यज्ञ करने के उपरान्त राजा समीकरण प्रजापति से किया गया है। शतपथ ब्राह्मण में इसी प्रकार का उल्लेख है। इस काल में अश्वमेघ तथा राजसूय यज्ञ सम्पन्न करा कर राजा अपने विशाल राज्य का प्रमाण देता था। परन्तु कीथ नामक विद्वान का मत है कि यद्यपि इस काल में ऋग्वैदिक कालीन कुछ राज्य नही था। अथर्ववेद में राजा को अपने चचेरे भाइयों से लड़ते दिखाया गया है तथा अनार्यो से युद्धों का भी उल्लेख है।

परन्तु एतरेय ब्राह्मण में पूर्व के शासकों का सम्राट, दक्षिण के शासकों को भोज, उतर के विराट तथा मध्य देश के शासकों को केवल राजन कहा गया है। इसी प्रकार ऐसरात तथा सार्वभौम राजा उसे कहा गया हैं जिसने चारों दिशाओं में शत्रुओं पर विजय हासिल की हो। विजय के उपलक्ष में बाद में अश्वमेघ यज्ञ सम्पन्न किया जाता था। राजसूय यज्ञ के दौरान घोषणाओं द्वारा राजा की उपलिब्धयों की जानकारी दी जाती थी। इन बातों से हमें इस काल में बड़े-बड़े साम्राज्य होने की जानकारी मिलती है।

उतरवैंदिक कालीन साक्ष्यों से पता चलता है कि राजा का पद पैत क या वंशानुगत था। शतपथा तथा ऐतरेय ब्राह्मण से पता चलता है कि कई राज्य दस पीढियों (पुरूषाम राज्यम) से स्थापित थे। इसके अतिरिक्त राजपुत्र शब्द का अर्थ राजा के पुत्र के रूप में भी इस व्यवस्था का घोतक है। परन्तु अथर्ववेद के एक पथ में राजा के चयन का भी उल्लेख है, जिसमें प्रजा (विश) राजा का चुनाव करती है विश या क्षेत्रीय इकाइयों की अपेक्षा। परन्तु यह चुनाव राजपुत्रों तथा राजपरिवार से ही अपातकाल में होता होगा। इस काल में हमें जनता द्वारा कई अत्याचारी राजा को हटाने के भी प्रमाण मिलते है।

इस काल की समस्त रचनाओं में निंरकुश शासकों की घोर आलोचना की गई है। अथर्ववेद में अधार्मिक राजा के राज्य में वर्षा ने होने तथा उसे समिति और मित्रवर्ग का सहयोग न प्राप्त होने का उल्लेख है। जो राजा निरंकुशतापूर्वक राष्ट्र के साधनों का दुरूपयोग करता था उसे शतपथा ब्राह्मण में राष्ट्री कहा गया है। इस काल में राजा को धर्मानुकूल व्यवहार करने वाला बताया गया है। इसके अतिरिक्त राजा को राज्याभिषेक के समय शपथ लेनी पड़ती थी, कि वह नियमों का पालन करेगा, कोई हिंसा नहीं करेगा, प्रजा का पालन करेगा इत्यादि। राजा इन सभी बातों का व्यवहार में पालन करता था। इस कारण भी राजा निरंकुश नही हो सकता था। इसके अतिरिक्त उसे राज्य के एक महत्वपूर्ण अंग रत्नियों (रतनिनि) के प्रति भी सम्मान प्रकट करना पड़ता था और उनका सहयोग तथा अनुमोलन प्राप्त करना आवश्यक समझा जाता था। शतपथ ब्राह्मण में इनकी संख्या 11 दी गई है जो इस प्रकार है 1. सेनानी 2. पुरोहित 3. युवराज 4. महिषी (प्रमुख रानी) 5. सूत (सारथी) 6. ग्रामणी 7. क्षता (प्रतिहारी) 8. संग्रहीता (कोषाध्यक्ष) 9. भागदुध (कर संगहकर्ता) 10. अक्षज्ञप (शंतरज खेल में राजा का साथी) तथा पालागल (राजा का मित्र)।

सभा और समिति :-

अथर्ववेद में सभा और समिति को प्रजापति की दो पुत्रियां कहा गया है। जो हमेंशा राजा को मदद करती थी। प्राप्त साक्ष्यों के अनुसार राजा अपनी शक्तियों की प्राप्ती इन्हीं से करता है। इस प्रकार राजतंत्र तथा ये दैविक संस्थाए एक ही धरातल पर है। अथर्ववेद में इस बात का वर्णन है कि राजा इनकी सहायता लेने की कोशिश करता था। यदि इनका विश्वास राजा पर ना रहे तो राजा पर विपति आने का उल्लेख है। लेकिन इस काल में राजा की शक्तियों में व द्धि होने के कारण इस काल में सभा और समिति का महत्व कम हो गया था।

इस काल में सभा के कार्यो तथा कार्य शैली का स्पष्ट उल्लेख नही मिलता। अथर्ववेद के वर्णन से पता चलता है कि सभा ग्राम संस्था थी तथा ग्राम के समस्त स्थानीय विषयों की देखभाल करती थी। एक स्थान पर इसे नरिष्ठा कहा गया है जिसका अभिप्राय है कि यहां वाद-विवाद के बाद निर्णय होते थे। मैत्रायणी संहिता के अनुसार स्त्रियां सभा की बैठकों में भाग नही लेती थी। सभासद, समाचार इत्यादि शब्दों से सभा के सदस्यों का वर्णन मिलता है। सभा का अध्यक्ष सभापति होता था इस प्रकार हम देखते है कि सभा एक ऐसी संस्था थी जहां राजनैतिक कार्य सम्पन्न किए जाते थे। परन्तु प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर सभा एवं समिति में भेद नही किया जा सकता, न ही उनके कार्यो और क्षेत्रों का स्पष्ट उल्लेख है। डा॰ अल्तेकर के अनुसार उतरवैदिक काल में सभा संस्था नही रह गई थी बल्कि वह राज्य संस्था हो गई थी। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार राजा सभा में उपस्थित रहता था। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार सभा के सदस्यों का पद अत्यन्त सम्मान का था।

समिति राज्य की केन्द्रीय संस्था प्राप्त होती हैं अथर्ववेद में उल्लेख है कि ब्राह्मण सम्पति का हरण करने वाले राजा को समिति का सहयोग नही मिलने का उल्लेख हैं एक अन्य स्थान पर राजा के लिए इसके चिर सहयोग की शुभाकांक्षा प्रकट की गई है। प्रत्येक सदस्य समिति के वाद-विवाद में हिस्सा ले कर ख्याति प्राप्त करने का इच्छुक रहता था। जिससे पता चलता है कि समिति में निर्णय वाद-विवाद के पश्चात् ही लिए ही लिए जाते थे।

राज्य की आय :-
(State Income)

ऋग्वेद में हमें कर के रूप में सिर्फ बलि शब्द का वर्णन मिलता है। परन्तु इस काल में राज्य द्वारा निश्चित करों के प्रावधान का प्रमाण मिलता है। राजकोष के अधिकारी को संग्रहिता कहा जाता था और कर लेने वाले अधिकारी को भागदुध कहा जाता था सामान्यतः कर वैश्यों से लिए जाते थे। ब्राह्मण साहित्य में उसे बलिक त कहा गया है। राजकर अन्न तथा पशुओं के माध्यम से वसूल किया जाता था। आय का 1/6 भाग राज्य को कर के रूप में मिलता था। प्रजा राजा को करों के अलावा विशेष अवसरों पर उपहार इत्यादि भी भेंट करती थी तथा युद्ध में लूट का हिस्सा भी राजकोष में जाता था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उतरवैदिक काल में राज्य की संरचना हो चुकी थी और बड़े-बड़े क्षेत्रीय राज्यों की स्थापना हो गई थी। इस काल में राज्य के सातों महत्वपूर्ण अंगों का वर्णन हमें मिलता है। राजा मंत्रिमण्डल के रूप में रतमिन, क्षेत्र, संसाधन (करों द्वारा) सेना, सहयोगी सभी का इस काल में स जन हो चुका था।

प्रारंभिक वैदिक कालीन समाज
(Rigvedic Society)

प्रारंभिक वैदिक काल में समाज का आधार सगोत्रीय और मुख्यतः कबीलाई संरचना पर आधारित था। जिसमें विभेदीकरण की प्रक्रिया के चिन्ह स्पष्ट रूप से उभर कर सामने नही आए थे। इस काल का समाज कई अर्थो में प्रायः समानतावादी था जिसमें एक ओर पदों के आधार पर अनेक विभिन्नताएँ थी, जो विशेषकर पशुओं की संख्या के आधार पर निर्धारित की जाती थी, इसके अतिरिक्त लिंग और आयु भेद के आधार पर भी सामाजिक स्तर पर असमानताएँ थी। लेकिन दूसरी ओर मनुष्यों के लिए उत्पादक संसाधनों को प्राप्त करने के लिए किसी प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नही था। ऋग्वेद में वर्णित इकाइयाँ-विश, जन, गण-वात आदि कबीलाई संगठन की ओर संकेत करती है। जन और विश सामूहिक उत्पादन की महत्वपूर्ण इकाइयाँ थी। ऋग्वेद में जन और विश शब्दों का कई बार प्रयोग हुआ है, जन विश के रूप में विभक्त था, इनमें से एक का संबध संपूर्ण कबीले से था तथा दूसरे का गोत्र से । ऋग्वेद में जन का उल्लेख २७५ बार तथा विश का १७१ बार हुआ है।

परिवारिक जीवन :
(Family Life)

इस काल में परिवार का आधार पित सतात्मक था, उसमें तीन या चार पीढ़ियों का समावेश था। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल मे वर्णित शुनहशेप कहानी से हमें बच्चों पर पिता के पूरे नियंत्रण का पता चलता है। परिवार में अनुशासन बहुत कठोर था तथा इसे तोडने वाले को सजा देने का अधिकार भी पिता को था। जैसा कि उल्लेख है एक जुआरी पुत्र को उसके पिता तथा भाइयों ने दण्ड स्वरूप उसे बेच दिया था। इस सन्दर्भ का तात्पर्य यह नही है कि इस काल में माता-पिता तथा संतान के इसी प्रकार के सम्बन्ध हुआ करते थे, अपितु पिता को एक अच्धा तथा दयालु हृदय बताया गया है। एक ही परिवार में कई पीढ़ियों के इक्कठे रहने के भी प्रमाण मिले है। परिस्थितिवश परिवार में पत्नी की मां के भी रहने का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद के दंसवें अध्याय में एक जुआरी यह शिकायत करता बताया गया है कि घर में उसकी सास उससे नफरत करती थी। अतिथि सत्कार घर में एक धार्मिक कार्य माना जाता था ऋग्वेद में माता-पिता, भाई-बहन, पुत्र और पुत्री के लिए अलग-अलग शब्दावली थी, लेकिन भतीजों, पोत्रों और चचेरे भाइयों के लिए मात्र एक शब्द नाप्त /नपत का प्रयोग किया जाता था। परिवार में पुत्र प्राप्ती के लिए ऋग्वेद में विभिन्न स्तुतियों और प्राथनाओं का उल्लेख मिलता है।

विवाह एवम् महिलाओं की स्थिति :-
(Marriage & condition of Women)

ऋग्वेद से हमें विवाह संबधी जानकारियों का वर्णन मिलता है। सामान्यतः वयः सन्धि के बाद लड़की की शादी की जाती थी आर उन्हें अपने पति के चुनाव के अधिकार की भी स्वंतत्रता थी। अविवाहित लड़कियों का भी वर्णन मिलता है, घोषा इसी की तरह की एक अविवाहित लड़की थी। इसके अतिरिक्त अपने प्रेमियों का लुभाने के लिए कन्याओं का उत्सवों पर गहने पहनने का वर्णन तथा युवकों के अपनी प्रेमिकाओं को भेंट इत्यादि देने के अनेक मंत्रों का वर्णन है। इनका विवाह दस्यु वर्ग या अनार्य लोगों में नही हो सकता था तथा आर्यो में भाई-बहन तथा पिता-पुत्री के विवाह पर प्रतिबन्ध था। विवाह में व्यस्कों को अपने पति और पत्नी चुनने की काफी स्वतंत्रता थी ऐसा कोई स्पष्ट प्रमाण नही कि माता-पिता या भाई की सहमति आवश्यक थी। विवाह के दौरान इनकी उपस्थिति अनिवार्य थी। विवाह के मंत्रों से पता चलता है कि एक नवविवाहिता स्त्री किस प्रकार अपने सास-ससुर, देवर और ज्येष्ठ पर अपने प्यार और स्नेह से राज्य करती थी तथा उनका आदर भी करती थी। वधु विवाह भोज में की सम्मिलित रहती थी। बारातियों का स्वागत इस काल में गाय का मांस खिला कर किया जाता था। वर-वधु का हाथ पकड़ कर अग्नि के पास-पास चक्कर लगाकर प्रणय सूत्र में बंधते थे। सुखी दाम्पत्य जीवन के लिए अनेक प्रार्थनाँए की जाती थी, ऋग्वेद में जो प्रार्थनाँए की गई हैं वे पति और पत्नी दोनों की तरफ से है। परिवार में पुत्र और पौत्र प्राप्ती की कामना के लिए अनेक प्रार्थनाँए की जाती थी। वधु का अपने घर में सम्मान का दर्जा प्राप्त था, ऐसे वर्णन है कि वह अपने पति के

पिता, भाई तथा बहनों पर राज करती थी, यह संदर्भ संभवतः उस स्थिति का है जब बड़े पुत्र की शादी हो गई हो तथा लडके का पिता जीवन से मुक्त हो चुका हो। परन्तु प्रतीत होता है कि यह अधिकार प्रेम के कारण ज्यादा था। यज्ञ, विवाह आदि अवसरों पर पति-पत्नी दोनों की उपस्थिति अनिवार्य थी। इस काल में विवाह मुख्य रूप से सन्तानोत्पति (पुत्र की प्राप्ती) के लिए किया जाता था, पुत्री प्राप्ती की कामना के प्रमाण ऋग्वेद में कही नही मिलते। संभवतः पित सतात्मक समाज में पुत्र की प्राप्ती ही आवश्यक थी। केवल पुत्र ही पिता का अंतिम संस्कार कर सकता था, तथा उसी से वंश आगे बढ़ता था। यघपि पुत्र ना होने की स्थिति में पुत्र गोद लेने के भी प्रमाण है परन्तु यह अधिक प्रचलित नही था।

पित सतात्मक समाज के बावजुद स्त्रियों की स्थिति उतरकालीन महिलाओं की अपेक्षा बहुत अच्छी थी। ऋग्वेद में पत्नी का यज्ञ करने और अग्नि में आहुतियाँ देने का स्पष्ट प्रमाण है। वे सभाओं में भाग लेने के लिए स्वंतत्र थी। ऋग्वेद में ऐसी महिलाओं का जिक्र है जिन्होंने वेदमंत्रो की रचनाएँ की, जिनमें अपाला और विश्वआरा का नाम उल्लेखनीय है। इससे स्पष्ट है कि स्त्रियों शिक्षा ग्रहण करने के लिए स्वतंत्र थी। ऋग्वेद के मंत्रों में पुत्र प्राप्ती के लिए अनेक प्रार्थनाएँ की गई है लेकिन पुत्री के जन्म का कही भी दुःखद नही माना गया है। इस काल में सती प्रथा का कोई स्पष्ट प्रमाण नही है। ऋग्वेद में एक स्थान पर एक विधवा का अपने पति की चिता से नीचे उतर आने का कहे जाने के प्रमाण तो है लेकिन यह सती प्रथा का स्पष्ट प्रभाव नही है। यदि विधवा स्त्री को पुत्र नही है, तो वह अपने देवर के साथ सहवास कर पुत्र प्राप्त कर सकती थी। यह बाद की नियोग प्रथा का ही एक प्रारूप है। इसके अतिरिक्त विधवा पुनःविवाह भी कर सकती थी। साधारणतः हमें एक पत्नी विवाह के प्रमाण मिलते है लेकिन एक पुरूष की एक से ज्यादा पत्नियों के भी प्रमाण है। यह शायद राजभ्य वर्ग में ज्यादा प्रचलित था, साध ाारण वर्ग में नही। यद्यपि ऋग्वेद में स्त्रियो की उच्च स्थिति का वर्णन है, परन्तु चोरी -छिपे (विवाह पूर्व) सन्तानोत्पति के भी प्रमाण है। इसके अतिरिक्त प्रजापति की कहानी में पिता-पुत्री तथा यम-यमी की कहानी में बहन-भाई के शारिरिक संबधों का उल्लेख मिलता है, लेकिन ज्यादातर विद्वान इसे मिथ्या मानते है। स्त्रियों को विवाह तक अपने पिता की सुरक्षा में, विवाहोपरान्त पति की, यदि अविवाहित है तो अपने भाई की सुरक्षा में रहना पड़ता था। इसका यह तात्पर्य नही कि वे बाहर स्वेच्छा से घूमने, भोज, न त्य और उत्सवों से भाग लेने के लिए स्वतंत्र ना हो। उनकी स्वतंत्रता पर कोई बंधन नही था।

भोजन और पहनावा :-
(Attire & Food)

प्रांरभिक वैदिक काल में आर्य मांसाहारी तथा शाकाहारी दोनों प्रकार का आहार लेते थे। मुख्यतः पशुपालन पर आधारित अर्थव्यवस्था के कारण दूध और उससे बनी वस्तुओं का वे अधिक सेवन करते थे। घी या घ त का प्रयोग, जौ के आटे को दूध या मक्खन में मिलाकर रोटी बनाने के प्रमाण ऋग्वेद में मिलता है। बैल, भेड और बकरी का माँस इनके भोजन का मुख्य अंग था। अश्वमेघ सम्पन्न होने पर घोड़े का मांस सामान्य रूप से खाया जाता था, ताकि घोड़े जैसी तेजी प्राप्त कर सकें। यद्यपि गाय को अधन्य माना गया है दूध ने देने वाली गाय के मांस का सेवन भोजन के रूप में किया जाता था। इसके अतिरिक्त अतिथियों को विशेष अवसरों पर गाय का मांस परोसा जाता था। ऋग्वेद में सोमरस पेया का भी वर्णन है, सुरा या शराब पीने का भी उल्लेख हुआ है। इसके अतिरिक्त शहद का भी भोजन में प्रयोग करते थे।

इस काल में पहनावा साधारण था और आर्य मुख्यतः तीन वस्त्र धारण करते थे। नीवी शरीर के मिचले हिस्से में पहनने वाला वस्त्र, वास मध्यभाग में पहनने वाला वस्त्र तथा अधिवास ऊपरी हिस्से पर पहनने वाला वस्त्र था। स्त्री और पुरूष के पहनावे में ज्यादा अन्तर नही था। खाल या चमड़े का भी प्रयोग वस्त्र के रूप में किया जाता था। मारूत को म ग छाल पहने हुए बताया गया है। इस काल में अट्क भी एक प्रकार का बुना हुआ वस्त्र था। ऊनी वस्त्रों का भी प्रयोग करते थे। कढ़ाई किए गए वस्त्र (पेश्स्) को पहने नत की का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। विवाह के अवसर पर वप्पु विशेष वस्त्र (वाधूय) धारण करती थी। सुन्दर वस्त्रों के लिए सुवासस् तथा सुवसन शब्दों का उल्लेख मिलता है। समाज में स्त्री और पुरूष दोनों वर्ग आभूषण धारण करते थे।सोने का कर्णशोभन संभवतः पुरूषों के लिए पहनने वाला आभूषण था। हिरण्यकर्ण सोने का आभूषण था जो देवताओं को पहने दर्शाया गया है। कुरीर वधु के सिर पर पहनने वाला गहना था। हार के रूप में सोने का आभूषण निष्क इस काल में प्रचलित था। मोती और हीरे से निर्मित आभूषण गले में पहने जाते थे। एक ऋचा में अश्विनों को कमल के फूलों से ढ़का बताया गया है। केश श्रंगार के भी शौकिन थे। तेल लगाकर कंघी करने के अतिरिक्त (ओपश) मांग निकालने का वर्णन है। एक स्थान पर एक कन्या को अपने सिर पर चार मांग निकाले हुए बताया गया है। पुरूषों को दाढ़ी और मूँछ रखने का शौक था।

चिकित्सक और दवाईयाँ :-

ऋग्वेद में इस काल में चिकित्सा पद्धति का भी प्रमाण है। बिमारियों में दक्षम का भी यदा-कदा वर्णन मिलता है। ऋयाओ में अनेक औषधियों तथा उनके गुणों का वर्णन है। इस काल में टूटी हुई हड्डियों को जोड़ने की कला से ये परिचित थे। आँखों की रोशनी पुःन प्राप्त करने, अन्धेपन का इलाज, तथा अंगहीनता ठीक करने के प्रमाण इस काल में मिलते है।

शिक्षा एवम् मनोरंजन :-
(Amusement & Education)

ऋग्वेद के दंसवें मण्डल में शिक्षा प्रणाली पर विशेष जोर दिया गया है, कि शिक्षा द्वारा व्यक्ति अपनी शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक शक्तियों का विकास कर सकता है। ऋग्वेद में उपनयन संस्कार का कोई प्रमाण नही है। ऋग्वेद के मण्डूक सूक्त में हमें शिक्षा प्रणाली के बारे में जानकारी मिलती है, इसमें वर्णन है कि विद्यार्थी अपने गुरू से मौखिक शिक्षा प्राप्त करते थे और विद्याार्थी उसे सामूहिक रूप से दोहराते थे। इस काल में विद्यार्थी के लिए के लिए ब्रह्मचारी शब्द प्रयुक्त किया जाता था। शिक्षा गुरूकुलों में दी जाती थी। इस काल में महिला शिक्षिकाओं का भी उल्लेख है, मैत्रेयी और गार्गी इस काल की विदुषियां थी।

संगीत का ऋग्वैदिक काल में विशेष महत्व था। वैदिक ऋचाओं का एक संगीतमयी लय में उच्चारण किया जाता था। इसके अतिरिक्त वीणा और ढ़ोला बजाने वालों का भी उल्लेख मिलता है। अविवाहित कन्याओं द्वारा किए जाने वाले न त्य का भी वर्णन मिलता है। सामाजिक समारोह और उत्सवों में पुरूष और स्त्री दोनों की न त्य में भाग लेते थे। कीथ नामक विद्वान के अनुसार इस काल में धार्मिक नाटकों का भी प्रचलन था। इसके अतिरिक्त रथदौड़ और घुड़दौड़ मनोंरजन का एक महत्वपूर्ण साधन था। चौपट तथा जुआ खेलने के प्रमाण भी ऋग्वेद की विभिन्न ऋचाओं से मिलते है। आखेट भी मंनोरजन का एक महत्वपूर्ण साधन था।

वर्णव्यवस्था :-

वर्णसमाज की रूपरेखा ऋग्वैदिक काल के अंतिम चरण में आंरम्भ हो गई थी जिसे पुरूष सूक्त ;गण्६०द्ध में देखा जा सकता है। इसमें उल्लेख है कि देवताओं ने आदि पुरूष के ४ भाग किए ; ब्राह्मण उसका मुख, राजन्य बाहु तथा जंघा वैश्य हो और शुद्र की उत्पति उसके पैरों से हुई। प्रथम तीनों वर्णो की उत्पति आदि पुरूष से नही हुई बल्कि वे उसके मुख, बाहु और जंघा के समान बताए गए है जबकि शुद्र की उत्पति पैरों से होने का अर्थ यह हुआ कि उसका जन्म तीनों वर्गो की सेवा करने के लिए हुआ है। प्रांरम्भ में शायद वर्ग विभाजन मुख्यतः आर्य और अनार्यो के बीच हुआ होगा क्योंकि दोनों की संस्क तियाँ भिन्न थी। ऋग्वेद में 'दास' और 'दस्यु' वर्ग का उल्लेख भी मिलता है जिनके साथ आर्यो के संघर्ष का भी उल्लेख मिलता है। दास और दस्यु इस क्षेत्र के आदिम निवासी (अनार्य) थे जिनसे आर्यो का संघर्ष हुआ। संभवतः युद्ध में हारे जाने पर अनार्यो का बंदी बना कर सेवा कार्य लिया जाता होगा। संस्क त में वर्ग के लिए वर्ण (रंग) शब्द का प्रयोग किया जाता है। यही वर्ण शब्द विभिन्न रूप-रंगों और विजातीय संस्क तियों के लोगों के साथ आर्यो के संपर्क के परिणामस्वरूप चार वर्णो के उद्भव की ओर ईशारा करता है। इस काल के अंतिम दौर में समाज चार वर्णो में बँट गया था, लेकिन जात-पात का बखेडा खड़ा नही हुआ थ इस व्यवस्था में लचीलापन था। ऋग्वेद में एक उदाहरण मिलता है कि एक व्यक्ति कहता है। मेरे पिता पुरोहित है माता अनाज पीसती है और पुत्र चिकित्सक है। इससे पता चलता है कि व्यवसायों को अपनाने की स्वतंत्रता थी।

उतरवैदिक कालीन समाज :-
(Later Vedic Society)

उतरवैदिक काल में क षि प्रणाली, उत्पादन की मात्रा बढ़ने एवम् आर्यो के जीवन में स्थायीत्व आने से राज्य के स्वरूप में भी परिवर्तन आया। कबीलाई व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई और इस काल में छोटे-छोटे जन आपस में मिलकर नगर और जनपद का रूप धारण करने लगे। जैसेः पुरू और भरत कबीला मिलकर कुरू जनपद बना तथा तुर्वश और क्रिवी मिलकर पांचाल जनपद कहलाए। इस काल में गंगा-यमुना दोआब के क्षेत्र में आर्यो ने विस्तार कर लिया था। इस काल के साहित्य में कुरूक्षेत्र, हस्तिानुपर, काशी, अयोध्या, पुष्कलावती और तक्षशिला जैसे नगरों का उल्लेख मिलता है। नगरों और जनपदों के उदय के कारण ऋग्वेदिककालीन कबीलाई संरचना नष्ट हो गई। इस काल की संस्क ति के बारे में विस्त त जानकारी नष्ट हो गई। इस

काल की संस्क ति के बार में विस्त त जानकारी हमें सामवेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद से मिलती है। ऋग्वेद के पश्चात् सामवेद की रचना हुई क्योंकि बहुत सी रचनाएँ जिनका उल्लेख ऋग्वेद में किया गया है, वे सामवेद में पुःन लिखी गई है। कालक्रम के अनुसार सामवेद के बाद यर्जुवेद की रचना हुई, इसमें क ष्ण यर्जुवेद और शुक्ल यर्जुवेद की वाजसेनीय संहिता शामिल है जो अथर्ववेद से पहले की रचना है। तैत्रीय संहिता को भी कुछ विद्वान इसी काल की रचना मानते है। इनके पश्चात् ब्राह्मण ग्रंथों की रचना की गयी जिनमें शतपथ ब्राह्मण,जैमिनीय ब्राह्मण महत्वपूर्ण हैं। आरण्यकों क रचना ब्राह्मण ग्रंथों के बाद की गयी तथा ये उपनिषद काल के मध्य एक कड़ी थे। आरण्यक तथा उपनिषदों को सामान्यतः वेदान्त (वेदों का अंत) कहा जाता है। इन सभी रचनाओं में वर्णित संस्क ति को उतर-वैदिक संस्क ति का नाम दिया जाता है।

पारिवारिक जीवन :-

इस काल में पित सतात्म परिवार थे, लेकिन पहले काल की अपेक्षा अब पिता की शक्तियों में व द्धि हुई। पिता अपने पुत्र को कठोर दण्ड़ दे सकता था और सम्पति के अधिकार में भी वह मनमानी करता था। ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णित एक कहानी से पता चलता है कि पिता का पुत्र पर पूरा नियन्त्रण होता था। इस कहानी में पिता द्वारा अपने पुत्र शुनेहशेप को बेचने का पता चलता है, लेकिन सामान्य रूप से पिता-पुत्र के संबध स्नेह पर आधरित थे। शांखायन आरण्यक के अनुसार महत्वपूर्ण अवसरों पर पिता व्यस्क पुत्र के सिर को चूम स्नेह का प्रदर्शन करता था। पुत्र ना होने की स्थिति में पुत्र गोद लेने के प्रमाण इस काल में मिलते है। परिवार में पहले बडे-भाई या बहन की शादी की जाती थी, तथा बड़ों से पहले छोटों की शादी की अच्छा नही माना जाता था। परिवार में हमें पौत्र तथा प्रौपोत्र होने के भी प्रमाण मिलते है। अतिथियों के सत्कार संबंधी विषय में अनेक ऋचाएँ है। इस काल में हमें कुल शब्द का अर्थ एक व हत परिवार के रूप में मिलता है। कुल का अर्थ सामान्यतः 'घर' या 'परिवार का घर' के रूप में होता है। परिवार में व्यावातार पुत्र की उत्पति की कामना की जाती थी।

वर्ण-व्यवस्था :-

उतरवैदिक काल में वर्ण व्यवस्था पूरी तरह स्थापित हो चुकी थी। इस काल में वर्ण शब्द सामान्य रूप से जाति के लिए प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेदिक काल के अंतिम चरण में समाज ४ वर्णो में बँट गया था, लेकिन इस काल में वर्ण व्यवस्था जन्म के आध ाार पर निर्धारित हो गई। इस काल में अनेक उपजातियां तथा दूसरे जाति विभाजन होने लगे जैसे इस काल में विभिन्न श्रेणियाँ अपने पेशे। व्यवसाय में वंशानुगत होने के कारण अलग जाति में विभक्त हो गए। इसी प्रकार रथकार, लोहे, चमड़े तथा लकड़ी का काम करने वालों की भी अलग जातियाँ बन गई। इस काल में परिवार मे गोत्र का महत्व बढ़ा तथा सगोत्रीय और गोत्र से बाहर विवाह के नियम बनने लगे। इस काल में अपनी ही जाति में विवाह करने के नियम बने लगे। इस काल में शूद्रों पर अनेक निरयोग्यताएँ लगा दी गई जैसे : आर्य वर्ण के लोग शूद्र स्त्री से विवाह नहीं कर सकते थे। लेकिन शुद्र या दस्यु वर्ग के लोग आर्य स्त्री से विवाह नहीं कर सकते थे। इसी प्रकार का नियम धीरे-धीरे तीन आर्य वर्णो पर भी लागू होने लगा। जिसमें एक ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य लड़की से शादी कर सकता था जबकि नीच जाति का पुरूष ऊँची जाति की महिला से शादी नही कर सकता था। इस काल में वैश्य वर्ण जो कि क षि तथा व्यापारिक गतिविधियों का संचालक था, चौथे वर्ण (शुद्र) के अधिक सम्पर्क में आया और यह आर्यो की सांस्क तिक शुद्रता को सहेज कर नहीं रख सका।

इस काल में प्रत्येक जाति के काम और उनकी प्राथमिकताएँ तथा सामाजिक स्तर निश्चित कर दिए गए। शतपथ ब्राह्मण में तो चारों जातियों के वर्णानुसार अलग-२ आकार के शमशानों का भी उल्लेख है। शूद्रों की स्थिति सबसे दयनीय थी, उनका कार्य दूसरों की सेवा करना था और उन्हें भू-संपति के अधिकारों से भी वंचित रखा गया।

वैश्य और शूद्र जो इस काल में वास्तविक उत्पादनकर्ता थे, को इन वर्गो (ब्राह्मण, क्षत्रिय) को कर देना और इनके सेवा कार्य पड़ते थे। इस वर्ण व्यवस्था में ब्राह्मणों ने उच्च स्थान प्राप्त कर लिया था, क्योंकि इस काल में यज्ञों का महत्व बढ़ गया था। समाज मे उच्चाधिकार के लिए हमें ब्राह्मणों और क्षत्रियों के बीच परस्पर संघर्ष के प्रमाण मिलते है। इस काल में कई क्षत्रियों के ब्राह्मण बनने के भी प्रमाण मिलते है। ब्राह्मण तथा क्षत्रिय सामान्यतः दूसरे दोनों वर्णो के मुकाबले प्रभावशाली थी। परन्तु प्रथम दोनों में प्राथमिकता के बारे में भी मतभेद है, सामान्यतः यह माना जाता है कि ब्राह्मण राजा से सर्वोपरि है। इस प्रकार का प्रमाण हमें वाजसेनीय संहिता, शतपथ ब्राह्मण तथा पं चविश ब्राह्मण में मिलता हैं। जबकि शतपथ ब्राह्मण में एक स्थान पर ऐसा भी वर्णन है कि ब्राह्मण राजा पर आश्रित है, तथा यह उसके साथ नीचे के आसन पर बैठता है। इसी तरह शतपथ

बाह्मण में कहा गया है कि क्षत्रिय अपनी शक्ति ब्राह्मण के ही कारण पाता है। दूसरी ओर ऐसे भी सन्दर्भ है, जो क्षत्रिय को सर्वोपरि मानते है जैसा कि काठक संहिता तथा इसी प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण के एक सन्दर्भ में ब्राह्मण को क्षत्रिय से निम्न कहा गया है, जो राजा से दान लेने वाला, और सोम रस पीने वाला है तथा जिसे राजा भी हटा सकता है। इस काल में ऐसे भी सन्दर्भ मिले है, जिससे पता चलता है कि कई राजा पढ़े-लिखे थे तथा उन्होंने बहुत सी ऋचाओं की रचना भी की थी तथा कई क्षत्रिय ब्राह्मणों के भी शिक्षक रहे थे। इस काल में ब्राह्मण पुरोहित होते थे तथा कुछ राजा के पुरोहित भी थे, जो वंशानुगत होते थे अथर्ववेद से हमें पता चलता है कि कई बार राजा ब्राह्मणों पर अत्याचार भी करते थे और ऐसा राजा कभी फल-फूल नही सकता था। परन्तु आमतौर ब्राह्मणों ने इस काल में अपनी प्रतिष्ठा कायम कर ली थी। इस काल में व्यापारिक गतिविधियों का प्रसार होने के कारण वैश्यों के अनेक वर्ग बन गए जो पशुपालन, क षि और शिल्पकार इत्यादि गतिविधियों में शामिल थे, ये कर भी अदा करते थे। शतपथ ब्राह्मण में वर्णन है कि यज्ञ करने वाले व्यक्ति का शूद्रों से बात नही करनी चाहिए। ऐतरेय ब्राह्मण में उल्लेख है कि उच्चवर्ग के लोगो को शूद्रों को पीटने का अधिकार है। ब्राह्मण ग्रंथों में शूद्रों के स्पर्श से बचने के लिए जो नियम बनाए थे, बाद में उन्ही से समाज में अस्प श्यता की शुरूआत हुई थी।

विवाह एवम् महिलाओं की स्थिति :-

इस काल में जाति-प्रथा के उद्भव के साथ ही कई सामाजिक मानदंड प्रकट हो गई। एक ही गोत्र के सदस्यों के विवाह पर रोक लगा दी गई और यह बात विशेष तौर पर ब्राह्मण वर्ग पर लागू हुई, जो अब तक असगोत्रीय विवाह का समर्थन करने वाले दलों में विभाजित हो चुका था। इस काल में सामान्यतः व्यस्क होने पर विवाह किया जाता था और विवाह गोत्र से बाहर किया जाता था। विधवा विवाह की अनुमति तथा बहुपत्नी विवाह भी प्रचलन में था। मैत्रायणी संहिता में मनु की दस पत्नियों का वर्णन है तथा एक राजा की भी चार पत्नियों का उल्लेख है। अथर्ववेद में ऐसी कन्याओं का उल्लेख है जो अविवाहित थी और अपने माता-पिता के घर रहती थी। परन्तु सामान्यतः अविवाहित रहने की प्रथा नही थी। अविवाहित पुरूष को यज्ञ करने की अनुमति नही थी, बिना स्त्री के उसे स्वर्ग प्राप्ती नही थी। क्योंकि पुरूष को पत्नी के बिना पूर्ण नही माना गया। इन सबसे पता चलता है कि एक पुरूष को एक से ज्यादा पत्नी रखने का भी अधिकार था, लेकिन एक स्त्री के एक से ज्यादा पति नही हो सकते थे। ऐतरेय ब्राह्मण में तो राजा हरीशचन्द्र की सौ पत्नियों का उल्लेख है। लेकिन बहु-पत्नी विवाह के सन्दर्भ ज्यादातर राजाओं तथा अन्य धार्मिक वर्ग तक ही सीमित थे। साधारणतः एक-पत्नी विवाह ही प्रचलन में था।

इस काल में पिता द्वारा पुत्री बेचने के भी प्रमाण है, जिन्हें अच्छा नही माना जाता था। विवाह के समय दहेज देने की प्रथा थी। ऋग्वेदिक काल की भांति इस काल में भी वधु परिवार से मधुर संबध रखती थी। पत्नी शब्द का प्रयोग ब्राह्मण साहित्य में हुआ है, जो उसके अपने पति के साथ सामाजिक एवम् धार्मिक कार्यो में समान अधिकारों का घोतक है। शतपथ ब्राह्मण में उसे पति की अर्धागिनि भी कहा गया है। इस काल में पहले के काल की अपेक्षा स्त्री की स्थिति मे गिरावट आई मैत्रायणी संहिता में तो स्त्री को जुआ और शराब के साथ तीसरी बुराई के रूप में गिना गया है। इसी तरह के संदर्भ तैतिरीय तथा काठक संहिताओं में भी मिलते है।

इस काल में स्त्रियों को राजनीतिक कार्यो में भाग लेने की आज्ञा नही थी। सभाओं और वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में वे हिस्सा नही ले सकती थी। स्त्रियो पर ऋग्वेदिक काल की अपेक्षा ज्यादा अंकुश लगा दिए गए। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार अच्छी स्त्री वह है जो पलट कर जवाब ना दे। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार स्त्री को अपने पति के बाद ही भोजन करना चाहिए। इस काल में लड़की के जन्म पर दुःख अभिव्यक्त किया जाने लगा तथा पुत्र कामना के लिए अनेक प्रार्थनाएँ की गई। अथर्ववेद में भी कन्या के जन्म को बुरा माना गया। इस काल के समाज में पर्दा-प्रथा नही थी, अथर्ववेद असंक ता नारी के सभा में जाने का उल्लेख करता है। इसी प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण में पुत्र वधु का अपने श्वसुर को समक्ष ना आने का उल्लेख है जिसे हम पर्दा प्रथा नही मान सकते। स्त्रियों के अधिकारों और उनकी स्थिति में पहले की अपेक्षा गिरावट आई। इस काल में गर्गी और मैत्रेयी जैसी मंत्र द ष्टा स्त्रियों का वर्णन यह दर्शाता है कि प्रारंभिक वैदिक काल में सभी संतो और ऋषियों की जो परम्परा चली वह कुछ हद तक इस काल में भी विधमान थी।

शिक्षा :-

इस काल में रचित साहित्य यज्ञो, बालियों इत्यादि के मंत्रों से संबधित है, जो श्रुति के रूप में था। शिष्य अपने गुरू से मौखिक रूप से शिक्षा ग्रहण करते थे। अथर्ववेद में ब्रह्याचारिन शब्द वैदिक विद्यार्थी का घोतक है, जिसे अग्निपूजा के लिए लकड़ियाँ

तथा गुरू के लिए भीख मांग कर भोजन लाने वाला कहा गया है। इस काल में उपनयन संस्कार पद्धति के बाद शिक्षा शुरू की जाती थी। ब्राह्मणों के अतिरिक्त क्षत्रियों का भी शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार था। राजा जनक न केवल वेदों के ज्ञाता थे बल्कि उस काल के प्रसिद्ध दार्शनिक भी थे। तीनों उच्च वर्णो को उपनयन संस्कार प्रणाली का अधिकार था, लेकिन शूद्र इस अधिकार से वंचित थे। शतपथ ब्राह्मण से हमें उपनयन संस्कार का वर्णन मिलता है। अन्य साहित्य में गुरू सेवा को धर्म माना गया है। तैतिरीय आरण्यन में विद्यार्थियों के अन्य कार्य भी बताए गए है जैसे बारिश में ना भागना तथा बिना वस्त्रों के स्नान ना करना आदि।

स्त्री शिक्षा :-

इस काल में समाज के बौधिक जीवन में स्त्रियाँ भाग लेती थी, यजुर्वेद में शिक्षित स्त्री-पुरूष के विवाह को उपयुक्त माना गया है। अथर्ववेद में उल्लेख है कि ब्राह्मचार्य द्वारा कन्या पति प्राप्ती करती है। इस विवरण से पता चलता है कि लड़कों की भांति कन्याएँ भी ब्रह्याचर्याक्षय में रहकर शिक्षा प्राप्त करती थी। संहिताओं और ब्राह्मण ग्रंथों में स्त्रियों द्वारा संगीत और न त्य की शिक्षा प्राप्ती के प्रमाण मिलते है। तांडप ब्राह्मण के अनुसार गणित, व्याकरण और काव्य इत्यादि की शिक्षा दी जाती थी और भाषा के ज्ञान पर भी जोर दिया जाता था। शतपथ ब्राह्मण में सामगाान को स्त्रियों का विशेष कार्य बताया गया है। स्त्रियाँ गान-विद्या के अतिरिक्त मंत्रों को भी समझती थी। अथर्ववेद के अनुसार वे पति के साथ यज्ञ में सम्मिलित होती थी। इस काल के ग्रंथों से पता चलता है कि अनेक विदुषी स्त्रियाँ भी थी जो वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में हिस्सा लेती थी। जनक की सभा में गार्गी और याज्ञवल्या के वाद-विवाद का उल्लेख है। याज्ञयवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी स्वंय एक विदुषी थी। इनके अतिरिक्त स्त्रियाँ ग हशिक्षा के प्रति भी जागरूक थी। ग हस्थ जीवन में भोजन पकाना नारियों का विशेष कार्य था, शतपथ ब्राह्मण के एक सन्दर्भ से प्रकट होता है कि ऊन और सूत की कताई-बुनाई का कार्य मुख्यतः स्त्रियां करती थी। इस काल में राज्य द्वारा शिक्षा व्यवस्था की सुविधा नहीं करती थी। ब्राह्मण ही ऊपरी तीन वर्णो के विद्यार्थियों को अपने घरों या गुरूकुलों में पढ़ाया करते थे। इसके बदले विद्यार्थी गुरू की सेवा करते तथा फीस के रूप में गुरूदक्षिणा देते थे। इस प्रकार की व्यवस्था में न केवल साहित्यक ज्ञान दिया जाता था बल्कि अस्त्र-शस्त्र और शारिरिक शिक्षा व नैतिक ज्ञान भी दिया जाता था।

मनोरंजन के साधन :-

इस काल में वाद्य तथा गायन दोनों तरह का संगीत प्रचलित था; सामवेद में गायन संगीत विज्ञान का एक ग्रंथ माना जाता था। इस काल में बहुत से पेशेवर गायक थे जिनमें बांसुरीवादक, शंखवादक तथा ढोलकिए इत्यादि शामिल हो अथर्ववेद में अघाटी नामक यंत्र का उल्लेख है जिसे अन्य यन्त्रों के साथ न त्य में प्रयोग किया जाता था। स्टेज और ड्रामें का भी इस काल में प्रचलन था। सैलूश एक एक्टर तथा न तक का रूप था। संगीत के अतिरिक्त रथदौड़ तथा घुड़दौड इस काल के मनोरंजन के मुख्य साधन थे। राजसूय यज्ञ के दौरान इस प्रकार की रथों तथा घुड़दौड़ों का आयोजन किया जाता था। जुआ खेलना भी इनके मनोंरजन में शामिल था। यजुर्वेद में नटों का भी उल्लेख मिलता है।

खान-पान :-

इस काल में शाकीहारी तथा मांसाहारी दोनों प्रकार के भोजन का उल्लेख है। अपूप चावल या जौं की घी मिश्रित रोटी थी। ओदन खिचड़ी या दलिया था, जिस दूध के साथ सेवन किया जाता था। यवागु जौं से बना भोजन था, करम्य एक प्रकार का अनाज का दलिया था। सेतु खाने की जानकारी भी इस काल के लोगों को थी। दूध से निर्मित वस्तुओं में पनीर (अभिक्षा), दही (दधि), ताजा मक्खन (नवनीत) तथा एक प्रकार के पेय जो फटे दूध में ताजा दूध मिला कर बनाया जाता था जिसे पयस्थ कहा जाता था। इसकाल में मांसाहारी भोजन काफी लोकप्रिय था। शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख है कि अतिथि को बैल या बकरी का मीट खिलाना चाहिए।

सूरा एक प्रकार का नशीला पेय था जिसे समारोह के दौरान पिया जाता था। अथर्ववेद में इसे झगड़ों की जड़ तथा अच्छे लोगों को जुआ खेलने की ओर ले जाने के अर्थो में प्रयुक्त किया गया है। विशेष अवसरों के लिए एक विशेष प्रकार की सुरा सौत्रामणी का वर्णन है, जो अनाज और पौधो के मिश्रण से बनाई जाती थी। यजुर्वेद में मासर नामक एक पेय का उल्लेख है जो चावल और भुने जौ से बनता था। इस काल में शहद का भी सेवन किया जाता था, लेकिन कुछ अवसरों पर इसका सेवन विद्यार्थियों और स्त्रियों के लिए वर्जित था।

वेशभूषा तथा आभूषण :-

इस काल मे लोग सूती तथा ऊनी दोनों तरह के वस्त्र धारण करते थे। ऊर्जा ऊन थी। इस काल में पहने वाले वस्त्रों पर कढ़ाई और नकाशी का कार्य किया जाता था। मुख्यतः तीन तरह के वस्त्र धारण करने का उल्लेख है। नीवी शरीर के नीचले भाग पर पहना जाने वाला वस्त्र, अधिवास शरीर के मध्य भाग तथा वास ऊपरी हिस्से पर धारण करने वाला वस्त्र था। शतपथ ब्राह्मण से पता चलता है कि यज्ञों के दौरान रेशमी वस्त्र धारण करना अनिवार्य था। इस काल में (उरूषणी) पगड़ी पहने का भी वर्णन है। जिसे पुरूष व स्त्रिंया दोनों धारण करते थे। राजसूम तथा वाजपेय मक्ष के दौरान राजा शाही पगड़ी विशेष रूप से पहनता था। शतपथ बब्राह्मण में उल्लेख है कि जुते तथा सैंड़ल जानवरो की खाल से बने होते थे। जानवरों की खाल से वस्त्र भी बनाए जाते थे प्रघात इस काल एक प्रकार का अच्छी तरह बुना हुआ ऊनी वस्त्र था जिसके चारों तरफ बोर्डर बना हुआ था। शतपथ ब्राह्मण में कैंसर से रंगे वस्त्रों का भी उल्लेख है। इस काल में पुरूष तथा स्त्रियां दोनों आभूषण धारण करते थे। निहक (गले में पहनने वाला सोने का हार), मौतियों की माला व कान मे कुण्ड़ल स्त्री व पुरूष दोनों धारण करते थे। इसके अतिरिक्त मोतियों की माला तथा शंख और सीपियों के बने आभूषण भी पहने जाते थे।

आर्थक स्थिति
(Economic Condition)

वैदिक युग में भारतीय समाज में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए, क्योंकि इस काल में लोहे के प्रयोग ने भारत के उतरी मैदानों को क षि योग्य बना दिया जिसके परिणामस्वरूप क षि प्रणाली एवम् उससे जुड़ी स्थायी जीवन की व्यवस्था स्पष्ट तौर पर उभर कर सामने आई जिसने अन्य पहलूओं - (सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक) को भी प्रभावित किया। इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप वैदिक युग को मुख्यतः 2 भागों मे विभाजित किया जा सकता है; प्रथम जिसमें मुख्यतः पशुपालन पर आधारित आर्थिक व्यवस्था पर जोर दिया गया तथा द्वितीय जिसमें क षि की ओर झुकाव प्रदर्शित होता है।

प्रांरभिक वैदिक कालीन अर्थव्यवस्था :-
(Rig Vedic Economy)

इस काल की अर्थव्यवस्था में पशु-पालन का सर्वाधिक महत्व था और पशु उनके स्वत्व और संपति के सर्वाधिक मूल्यवान साधन थे। पशुधन की महता की जानकारी पशुओं के लिए की जाने वाली प्राथनाओ से मिलती है। पशुओं के लिए बहुधा (प्रायः) विभिन्न कबीलों में युद्ध होते थे, युद्ध के लिए गविष्टि शब्द का प्रयोग किया जाता था जिसका अभिप्राय है गायों की खाज। ऋग्वेद में कई स्थानों पर गाय के लिए अधन्या शब्द का प्रयोग किया गया है, यानि गाय का वध नही करना चाहिए, इससे उसके आर्थिक महत्व का बोध होता है। गाय और बैल ही इस काल के महत्वपूर्ण पालतू पशु थे, यहीं इस काल का धन थे तथा यज्ञ समापन के बाद दक्षिणा के रूप में इन्हें पुरोहितों का दिया जाता था। गायों को रात के समय तथा दिन की धूप में बाड़ों में रखा जाता था। जबकि अन्य समय में वे स्वतः चरागाहों में चरती रहती थी। शाम के समय गायों को वापिस बाड़ों में लाया जाता था। इन कार्यो के लिए विशेष शब्दों का प्रयोग हमें ऋग्वेद में मिलता है। स्वसर का अभिप्राय सुबह चरगाहों में घास चरने जाने का है जबकि सम्गाव का अर्थ शाम को दूध दाहने के लिए वापिस लाने के लिए प्रयुक्त होता था। लड़कियों के लिए दुहिता शब्द का प्रयोग किया गया है, क्योंकि दूध दोहने का कार्य वे ही किया करती थी। ऋग्वेद में गायों पर आने वाले खतरों का भी उल्लेख मिलता है जैसेः गाय का खो जाना, चोरी हो जाना, पैर टूट जाना इत्यादि। इस काल में पशुओं के कानों पर निशान दाग दिए जाते थे। जिससे उनके स्वामित्व की आसानी से पहचान की जा सकती थी। गाय को इस काल में पवित्र नही माना गया क्योंकि भोजन के लिए गाय और बैल दोनों का वध किया जाता था। गाय के अतिरिक्त भेड़, बकरियाँ तथा घोड़े पालतू पशुओं की श्रेणियों में आते थे। पशुओं का पालन-पोषण सामूहिक रूप से किया जाता था यानि कबीले के सभी सदस्यों का उन पर समान अधिकार था। पशुओं के महत्व का इस बात से भी पता चलता है कि मुखिया का गोपति अर्थात् पशुओं का स्वामी या सरंक्षक कहा जाता था।

इस काल में सीमित क षि का प्रमाण मिलता हैं और संभवतः इसका प्रचलन और महत्व अधिक नही था। क्योंकि इस काल में यह पूर्ण रूप से विकसित नही हुई थी। ऋग्वेद के प्रथम और दशम् मण्डल से क षि का उल्लेख मिलता है। प्रथम मण्डल में वर्णन है कि देवताओं ने मनु को हल चलाना और जौ की खेती करना सीखाया। ऋग्वेद के परवर्ती भाग में जुताई, बुआई,

कटाई तथा ओसाई और दवाईयों का उल्लेख मिलता है। संभवतः इस काल में यव अर्थात् जौ नामक एक ही प्रकार का अन्न पैदा किया जाता था और जमीन पर कबीले के सदस्यों का समान अधिकार नही था। ऋग्वेद ये जमीन तथा उसकी माप-प्रणाली के बारे में विस्त त वर्णन है, लेकिन कही भी किसी व्यक्ति द्वारा जमीन की ब्रिकी, हस्तांतरण, गिरवी अथवा दान का उल्लेख नही मिलता। इससे स्पष्ट होता है कि जमीन पर व्यक्तिगत स्वामित्व का अधिक प्रचलन नही था, क षि सामान्यतः वर्षा पर ही निर्भर थी परन्तु इस काल में सिंचाई व्यवस्था का विकास हो चुका था। ऋग्वेद में कुल्या' तथा 'खनित मा आपः' शधो का उल्लेख मिलता है जो

इससे इस बात का संकेत मिलता है कि क षि के लिए सिंचाई व्यवस्था का ज्ञान उन्हें था। इसके अतिरिक्त कूपो द्वारा भी सिंचाई व्यवस्था का उल्लेख है। खेतों में हल जोतने के लिए तथा गाडियाँ खींचने के लिए बैल उपर्युक्त साधन थे।

ऋग्वेद में शिल्प विशेषज्ञों का अपेक्षाक त कम उल्लेख हुआ है जबकि चर्मकार, बढ़ई, कुम्हार, धातुकर्मियों तथा शिलपियों का वर्णन मिलता है। शिल्पी कार्यो से जुड़े इन समूहों में से किसी को भी निम्न स्तर का नही माना जाता था इसका कारण संभवतः यह था कि इनमें से कुछ जैसेः- बढ़ई, धातुकर्मी, चर्मकार आदि की रथों के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका थी, जो युद्ध में सफलता के लिए उतरदायी होते थे। ऋग्वेद में वर्णित अयस, धातु विवादाग्रस्त है जिसे ताँबे या कांस्य से जोडा गया है हांलाकि इसका अर्थ लोहे से भी लगाया जाता है। इस काल में क षि में प्रयुक्त किए जाने वाले धातु से बने औजारों का प्रयोग काफी सीमित मात्रा में किया जाता रहा होगा। यह स्पष्ट यह है कि वे धातु गलाने की कला से परिचित थे। इस काल में बुनाई एक घरेलु शिल्प था, जो महिलाओं द्वारा किया जाता था। ऋग्वेद में वस्त्र बनाने वाली स्त्रियों की तुलना रात और दिन से की गई है। बुनाई के लिए 'तन्तुम' शब्द का उल्लेख मिलता है। इस काल में जुलाहे भी थे तथा कुम्हार के लिए 'कुलान' शब्द का प्रयोग हुआ है। ऋग्वेद में कपास का उल्लेख ना होने से संभवतः ऊनी वस्त्रों का प्रयोग किया जाता था। स्पष्टतः इस काल में हस्तशिल्प छोटे स्तर का था जिसका प्रसार उतर वैदिक काल में बढ़ गया था।

प्रांरभिक काल की व्यापारिक गतिविधियों का उल्लेख ऋग्वेद में हुआ है। इसमें हमें व्यापारियों द्वारा दूर-दराज के क्षेत्रों (विदेशों) में जाकर व्यापार कर लाभ कमाने के कई संदर्भ मिलते है। व्यापार में मुनाफे के लिए अनेक प्राथनाएँ और आहुतियाँ देने के प्रमाण है। ऋग्वेद से आन्तरिक व्यापारिक गतिविधियों की जानकारी प्राप्त होती है। इस काल में होने वाले समुद्री व्यापार के संदर्भ में विद्वान मानते है कि व्यापारी समुद्र तथा समुद्री व्यापार से अनभिज्ञ थे जबकि मैक्समूलर, जिमर तथा लासेन का मत है कि इन्हें समुद्र का पूरा ज्ञान था। इस काल में सरस्वती नदी को समुद्र में गिरने वाली बताया गया है। ऋग्वेद के दसँवें मंडल में पूर्वी तथा पश्चिमी समुद्र का उल्लेख है तथा इसमें वर्णित भुज्यु की कहानी से हमें समुद्री व्यापारिक गतिविधियों की जानकारी मिलती है। इस काल के लोगों को न केवल समुद्री यातायात की जानकारी थी। अपितु उनके दूसरे देश से व्यापारिक सम्बन्ध भी थे। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद में नाव, चुप्पुओं वाली नावों एवम् हजार चप्पुओं वाले (श्त्ररित्र) जहाज का भी वर्णन मिलता ह। इन्हें समुद्र में आने वाले ज्वार-भाटे की भी जानकारी थी। ऋग्वेद में उल्लेखित बातें इनकी समुद्री व्यापारिक गतिविधियों की जानकारी देते है।

प्रारंभिक वैदिक कालीन चरण में आर्थिक व्यवस्था विस्त त पैमाने वाली अर्थव्यवस्थ नही थी। कबीलाई अर्थप्रणाली थी जिसमें विनिमय-प्रणाली कीमती वस्तुओं के आदान-प्रदान पर आधारित थी। गाय विनिमय की प्रमुख इकाई थी। संभवतः इसके अतिरिक्त भी कई अन्य इकाइयां रही होगी। इस काल में निष्क का प्रचलन भी व्यापार में होने लगा था। विद्वानों के अनुसार प्रारंभ में निष्क उस काल में गले में पहनने वाला सोने का आभूषण रहा होगा। कई स्थानों पर रूद्र द्वारा निष्क पहनने का संदर्भ मिलता है। ऋग्वेद में इस बात का भी उल्लेख है कि एक कवि ने अपने राजा से १०० निष्क और १०० घोड़े दान स्वरूप प्राप्त किए। इस काल में पणि वर्ग द्वारा ऋ ण लेने और देने की प्रथा का प्रचलन था, जिसकी ऋग्वेद में निन्दा की गई है। लेकिन इस काल की आर्थिक उन्नति में इनके योगदान को नजनअंदाज नही किया जा सकता। प्रारंभिक चरण में बलि कर शक्तिशाली वर्ग के लिए स्वेच्छा से दिया जाने वाला कर था हाँलाकि शत्रु समुदायों के लिए यह स्पष्टतः एक उपहार था जा बलपूर्वक वसूल किया जाता था, इसमें पशु तथा अन्न शामिल थे।

उतरवैदिक अर्थव्यवस्था :-
(Later Vedic Econmy)

उतरवैदिक काल में उत्पादन की ओर झुकाव की स्थिति स्पष्ट सामने आई, जिसमें खेती आजीविका का मुख्य साधन हो गई

और धीरे-धीरे भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व की भावना मजबूत हो गयी। अथर्ववेद, वाजसेनिय, मैत्रयवी, तैतिरीय तथा काष्ठ संहिता और शतपद ब्राह्मण में खेती के विभिन्न कार्यो से संबधित अनुष्ठानों और हल द्वारा जुताई का विस्त त विवरण दिया गया है। 6, 8, 12 और 24 बैलों द्वारा जुताई से पता चलता है कि हलों से गहरी जुताई की जाती थी। यद्यपि यह सन्दर्भ इसी रूप में हम न लें तो भी यह स्पष्ट है कि क षि विस्त त और गहन दोनो तरह से की जाती थी। बैलों पर जूलों की सहायता से हल जोता जाता था। हल संभवतः लकड़ी के थे। जिनके नाम उदम्बर या खदीरा थे। हलों में लोहे के फाल का प्रयोग पहले की अपेक्षा अधिक प्रभावकारी था। खेती के बढ़ते महत्व के कारण उतरी मैदानों को लोहे की कुल्हाड़ी एवम् अग्नि की सहायता से साफ किया गया और गंगा-यमुना दोआब का क्षेत्र क षि के लिए अत्याधिक उपर्युक्त था। इस काल की साहित्यिक संहिता (शतपथ ब्राह्मण) में क षि कर्म पर एक पूरा अध्याय लिखा गया है जिसमें इस बात का वर्णन है कि बीजों की बुवाई कितनी गहरी और किस प्रकार करनी चाहिए। क षि की अपज बढ़ाने के लिए पशुओं से प्राप्त खाद का उल्लेख अथर्ववेद में है। शक त् (गोबर), करीश (उपले) इत्यादि का उल्लेख साहित्य में यदा-कदा मिलता है। हल चलाने वाले के लिए कीनाश शब्द का उल्लेख हुआ है। शतपथ ब्राह्मण में क षि संबधी कई कार्यो का उल्लेख है जैसे हल जोतना, बीज बोना, फसल काटना, दाने अलग करना इत्यादि पकी हुई फसल को दराती से काटा जाता था। तैंतरीय संहिता में वर्णन है कि जौ सर्दियों में बोए जाते थे और गर्मियों मे पकाई के बाद उनकी कटाई की जाती थी। चावल बरसात के दिनों में खेतों में बोए जाते थे तथा बीन और तेल वाले पौधे गर्मियों में बोए जाते थे जो सर्दियों में पकते थे। अथर्ववेद में सिंचाई के लिए नई नालियाँ और नहरें खोदने का वर्णन है, तथा फसलों की विभिन्न बिमारियों से छुटकारा पाने के लिए अनेक मंत्र दिए गए है। देवताओं से क षि में सम द्धि, अच्छी फसल और धन की व द्धि के लिए अनेक प्रार्थनाएँ की गई है। यव (जौ) के अतिरिक्त गेहूँ इस काल की मुख्य फसल थी। व्रीही (चावल) का उल्लेख पहली बार हुआ है। दो प्रकार के धान व्राक्रि तथा तण्डुत का वर्णन है। यजुर्वेद में उडद (माष), मूँग और मसूर की दालों का उल्लेख है इनके अतिरिक्त तिल और सरसों की भी खेती के प्रमाण मिलते है। क षि कार्यो में व द्धि होने से पूर्ववर्ती पशुपालन युग की अर्थव्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गयी, क्योंकि वह बढ़ती हुई जनसंख्या के भोजन को पूरा करने में असमर्थ थी।

पशुपालन की क षि-कर्म के साथ-साथ होता था। अथर्ववेद में गाय के प्रति आदर भाव का उल्लेख है तथा बलि वेदी के बाहर गाय को मारने पर म त्यु दण्ड़ दिया जाता था, इस तरह इस काल में गाय की पवित्रता शुरू हुई और गाय को अदिति या धरती मां के समान माना जाने लगा। शतपथ ब्राह्मण में एक स्थान पर स्पष्ट उल्लेख है कि गाय और बैल प थ्वी का धारण करते है अतः उनका मांस ना खाया जाए। अथर्ववेद में एक स्थान पर गाय, बैल और घोड़ों की प्राप्ती के लिए राजा इन्द्र को प्रार्थना करते हुए दिखाया गया है। इन पशुओं के अतिरिक्त भैंस, भेड़, बकरी, सूअर इत्यादि का उल्लेख है। अथर्ववेद में हाथी का भी उल्लेख है। गाड़ी खींचने के लिए कभी-कभी गधों को भी प्रयोग किया जाता था जैसा कि ऐतरेय ब्राह्मण में अश्विन की गाड़ी को गधे द्वारा खींचा जाना दर्शाता है। ऊंट गाड़ी के भी प्रमाण मिलते है। मछली एवम् मुर्गा पालन व्यवसाय भी था, इन्हें भोजन के रूप में भी प्रयुक्त किया जाता था।

उधोग-धन्धे :-
(Business)

क षि क्षेत्र में विस्तार, जीवन में स्थायीत्व और क्षेत्रीय राज्यों के उदय ने कला-कौशल के क्षेत्र को प्रभावित किया और अनेक शिल्पों को जन्म दिया। संभवतः इस का सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन लोहे का उपयोग है। अथर्ववेद में लोहे के लिए श्याम अयस शब्द का उल्लेख हुआ है तथा फसल काटने की दंराती, लोहे के औजार जैसे तीर और भालों की नोकें, चाकू, कुल्हाड़ी, कांटे तथा एक फल वाले हल इत्यादि विस्त त पैमाने पर बनते थे। लोहे के अतिरिक्त टीन, सीसा तथा ताँबे का भी व्यापक पैमाने पर प्रयोग होता था। अर्थात् इस काल में उन्हें अनेक धातुओं का ज्ञान था और उन्हें पिघलाने की कला से वे परिचित थे। धातुशिल्प के अतिरिक्त बड़े पैमाने पर हस्तशिलपियों के बारे में जानकारी मिलती है। धातुकर्मियों (सोना, चांदी, तांबा और लोहे का काम करने वाले) के अतिरिक्त बढ़ई लौहार मणिकार, रथकार, ज्योतिष, कुम्हार, सुराकार, नाई धोबी, चर्मकार, कसाई, रंगारेज, मछुआरा तथा वास्तुकार आदि अनेक शिल्प/व्यवसायों की जानकारी मिलती है। इस प्रकार पहले के चरण की अपेक्षा उतरवैदिक काल में शिल्पों की विशेषज्ञता पर विशेष जोर दिया गया।

इस काल में जाति प्रथा के आधार पर अलग-अलग वर्गो के अलग-२ कार्य बँटे हुए थे, जैसेः क षि एवम् पशुपालन का कार्य वैश्यों के हाथें में था, पठन-पाठन, यज्ञ आदि बाह्मण, युद्ध एवम् राजम्य संबधी कार्य क्षत्रिय, और सेवा दास का कार्य चौथे

वर्ग शुद्र के हाथो में था। परन्तु यह विभाजन इस काल में वशांनुगत अभी भी नही हुआ था, कभी-कभी एक वर्ग/जाति के लोग दूसरा कार्य भी अपना लेते थे। वाजसेनीय तथा तैत्रिरीय संहिता में पुरूष्रामेध के उपलक्ष में विस्त त वर्णन है। जिससे हमें विशेष प्रकार के द्वारपालों, रथकारों, अनुचरों, ढाल बजाने वाले , बूचड़, ज्योतिष इत्यादि का उल्लेख है। बढ़ई (तक्षण), चटाई बनाने वाले, पक्षी उड़ाने वाले, पशु चराने वाले, टोकरी बनाने एवम् कढाई करने वाली स्त्रियाँ, सुरा बनाने वाले, हाथी पालक और स्वर्णकार इत्यादि का भी वर्णन है। अन्य व्यवसायों में नाविक, सूद पर पैसा देने वाले, धोबी (मलाग) कुम्हार, खाना बनाने वाला, दूत, रथो के साथ दौड़ने वालों का भी वर्णन है। उतरवैदिक काल में सोने का उल्लेख काफी मिलता है। आर्य हिरण्य का पवित्र मानते थे। अथर्ववेद तथा संहिताओं में सोने के गहनों का विस्त त वर्णन है। वस्त्र-निर्माण का कार्य भी बड़े पैमाने पर होता था। कपास का स्पष्ट उल्लेख नही मिलता लेकिन ऊन (ऊर्णा) तथा शण (सन्) का प्रयोग वस्त्र और बोरियां बनाने के लिए किया जाता था। ब्रह्मचारी एवम् तपस्वी खाल और धर्म के वस्त्र धारण करते थे। शतपथ बाह्मण में उल्लेख है कि सूत कातने का कार्य स्त्रियाँ करती थी। करघे के लिए 'वेमन' शब्द का उल्लेख हुआ है। वस्त्र बुनने वाली स्त्री का वयत्री कहा जाता था, वस्त्रों पर कढ़ाई का कार्य पेशस्कारी स्त्रियाँ ही करती थी।

अनेक शिल्पों के प्रसार से व्यापार और वाणिज्य का विकास हुआ और पहले की विनिमय और पुनर्वितरणकी पद्धति में भी परिवर्तन हुआ और व्यापार में विकास हुआ। इस काल के ब्राह्मण साहित्य और संहिताओं में 'वाणिज' शब्द का उल्लेख हुआ है जिसका अर्थ व्यापारी था। अथर्ववेद के अनुसार देश के व्यापारी साम्रगी लेकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते थे। साहित्य में (श्रेष्ठिन) अमीर वैश्यों का वर्णन है, जिन्होंने व्यापार और क षि कर्म द्वारा संपति एकत्रित की थी। व्यापार सामान्यतः विनिमय पद्धति पर आधारित था तथा गाय भी विनिमय का माध्यम थी। लेकिन मिष्क, शतनाम, क ष्णता पाद नामक सिक्कों के प्रचलन की जानकारी मिलती है। विद्वान इन्हें मुद्रा के रूप में लेते है, परन्तु यह सभी व्यापार में माध्यम के रूप में प्रयुक्त होते थे। ब्याज देना भी इस काल का एक व्यवसाय था। शतपथ ब्राह्मण में कुसीदिन का उल्लेख ब्याज देने वाले तथा तैंतरीय संहिता में कुसीद ब्याज लेने वालों के लिए प्रयुक्त हुआ है। लेकिन ब्याज दर का कोई उल्लेख नही मिलता। व्यापारियों का व्यवसाय वंशानुगत था जोकि हमें वणिज शब्द (जिसका अर्थ वाणिज का पुत्र था) के प्रयोग से मिलता है। व्यापारियों में चीजों के भाव पर वाद-विवादों आम बात थी। इस काल में समुद्री व्यापार का स्पष्ट वर्णन मिलता है। वस्तुएँ एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिए बैलों एवम् घोड़ों की गाड़ियों का प्रयोग किया जाता था। 'विपथ' शक का प्रयोग बुरे रास्तों के लिए प्रयुक्त हुआ है जिससे हम अच्छी सड़कों या रास्तों का अन्दाज लगा सकते है। किश्ती तथा जहाज नदी और समुद्र पार सामान ले जाने के लिए प्रयुक्त किए जाते थे। छठी शताब्दी ई.पू. में मध्य भारत में कौंशाबी, अहिधात्र, विदेह, काशी, वाराणसी और हस्तिनापुर से प्राप्त पुरातत्व के अभिलेखों से प्रमाणित होता है कि नगरीय व्यवस्था की शुरूआत हो चुकी थी, जो शिल्प-निर्माण का केन्द्र होने के साथ-साथ राजनीतिक केन्द्र भी रहे होगें, जो निश्चय ही बढ़ती हुई सामाजिक आर्थिक असमानताओं को दर्शाते है।

ऋग्वेदिक काल की धार्मिक स्थिति :-
(Religions Condition of Rigvedic Period)

ऋग्वेद में देव अथवा देवता शब्द का अनेक बार उल्लेख हुआ है। इस काल के प्रांरभ में 'बहुदेववाद' के दर्शन होते है। ऋग्वेद में जिन देवताओं की पूजा की गई है, वे प्राक तिक शक्तियों के प्रतीक है, जिनका मानवीयकरण किया गया है। ऋग्वेदिक देवताओं का वर्गीकरण तीन भागों में किया गया : (i) प थ्वी के देवता - प थ्वी अग्नि, सोम, हस्पति तथा नदियों के देवता, (ii) अंतरिक्ष के देवता - इन्द्र, रूद्र, वायु, पर्जन्य, मातरिश्वन आदि, (iii) द्युस्थान (आकाश) के देवता - द्यौस, वरूण, मित्र, सूर्य, सविता, पूषन, विष्णु, उषा आदि। इस काल में ऋषियों ने जिस देवता की प्रार्थना की है, उसे ही सर्वोच्य मानकर उसमें सम्पूर्ण गुणों, ज्ञान और सत्य का आरोपण कर दिया। उन्हें प्रसन्न करने के लिए अनेक ऋचानाएँ लिखी गई। विद्वान मैसमूलर ने इस प्रक ति को 'डीनोथीज्म' कहा है। ऋग्वेद से प्रसिद्ध देवता निम्न थे। जैसे ऋग्वेद में सर्वाधिक सूक्त (250) इन्द्र को समर्पित है। इन्द्र को पुरंदर (किले ध्वरूत करने वाला), जितेन्द्र (विजयी), (रथयोद्धा), मधवान (दानी) तथा शांति का देवता बताया गया है। यह आकाशीय देवता युद्ध, शांति और मौसम का देवता था। इन्द्र के पश्चात् सर्वाधिक सूक्त (200) अग्नि को समर्पित हैं यज्ञों के दौरान अग्नि का विशेष महत्व था। यहाँ तक कि ऋग्वेद में उसे पुरोहित, यज्ञिय और होता भी कहां गया है। अग्नि के द्वारा यज्ञ में समर्पित आहुति देवताओं तक पहुँचाई जाती थी, इसलिए इसे देवताओं का मुख भी कहां गया है। अग्नि विवाह संस्कार,

यज्ञों तथा दाह संस्कार आदि के लिए अनिवार्य थी। ऋग्वेद के मंत्रों में इसे पिता पथ-प्रदर्शक, और मित्र भी कहा गया है।

मित्रावरूण ऋग्वेद में वरूण का वर्णन विभिन्न प्रकार से किया गया है। वरूण को आकाश, प थ्वी और सूर्य का निर्माता कहा गया है। सभी देवता उसकी आज्ञा का पालन करते है, नदियाँ उसी के आदेश से प्रवाहित होती हैं। वरूण विश्व की प्राक तिक व्यवस्था का भी रक्षक था। सर्वशक्तिमान होने के बावजूद वह अनियन्त्रित और स्वेच्छाचारी नही है।

सूर्य को अंधकार दूर कर रोशनी फैलाने वाला माना गया है। ऋग्वेद के अनुसार सूर्य देवों का अनीक (मुख), चर-अचर की आत्मक तथा उनका मित्र और चरूण एवम् अग्नि का नेत्र था। सवित भी सूर्य का ही एक रूप है, और प्रसिद्ध गायत्री मंत्र उसी को समर्पित है। सूर्य मनुष्यों के सत्-असत् कर्मो का द ष्टा है तथा वह विश्वकर्मा हैं।

रूद्र आंधी का प्रतीक है। ऋग्वेद में रूद्र से महामारी और महाविनाश से दूर रखने के लिए अनेक प्रार्थनाएँ की गई है। यह अनेक जड़ी-बूटियों का भी सरंक्षण कर्ता था।

इन्द्र शक्ति का स्वामी था जिसकी उपासना शत्रुओं को नष्ट करने के लिए की जाती थी। वह बादलों को देवता था, उससे समय-समय पर वर्षा के लिए प्रार्थनाएँ की जाती थी। बादल और वर्षा (प्राक तिक नियति) शक्ति से संबधित थे जिसको पुरूषा के रूप में मानवीयकरण किया गया और जिसका प्रतिनिधित्व इन्द्र करता था। युद्ध के मुखिया के रूप में भी इसका उल्लेख है। इन्द्र की स्तुति में ऋग्वेद में लगभग 250 ऋचानाएँ है। जिसका अभिप्राय है कि इस वेद की सम्पूर्ण ऋचनाओं का एक चौथाई भाग एकमण इन्द्र की स्तुति से ही भरा है।

ऋग्वेद में अन्य बहुत देवता थे जैसे सोम (जो एक पेय भी था), वायु, विष्णु, घौस (स्वर्ग का देवता और सूर्य का पिता), मरूत (रूद्र का रूप)। ऋग्वेद में पुरूष देवताओं के अलावा अनेक देवियों का भी उल्लेख है जैसेः उषा (प्रभात की देवी), प थ्वी, अदिति अरण्यनी (वन की देवी), सावित्री, अप्यरा और पुरामाधि (उर्वरता की देवी) आदि। इनकों सम्बोधित करते हुए ऋग्वेद में अनेक प्रार्थनाएँ और श्लोक लिखे गए।

ऋग्वैदिक धर्म में बलि और यज्ञों का विशेष महत्व था जो प्रायः देवताओं की उपासना करने, युद्ध में विजय, पशुओं तथा पुत्र की प्राप्ती के लिए किए जाते थे। सामान्यतः पुरोहित यज्ञों के सम्पन्न कराते थे। इस काल में यज्ञों में बलि का विस्त त उल्लेख है, जिस कारण पुरोहतों के महत्व में व द्धि हुई। बलिदान अनुष्ठानों के कारण गणित और पशु शरीर संरचना ज्ञान के विकास में भी व द्धि हुई। यज्ञों के दौरान उसमें घी, दूध, चावल और सोमरस आदि वस्तुओं की आहुति दी जाती थी। इस काल में देवताओं की उपासना किसी अर्मूत दार्शमिक अवधारणा के कारण नही बल्कि भौतिक लाभों के लिए की जाती थी इस काल के धर्म में बलिदान या यज्ञों के महत्व में काफी व द्धि हुई।

उतरवैदिक कालीन धर्म :-
(Religions Condition of Later Vedic Period)

इस काल में हुए सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों के कारण उतरवैदिक काल में धर्म में भी परिवर्तन हुए। इस काल में एक तो ब्राह्मणों द्वारा प्रतिपादित एवम् पोषित यज्ञ अनुष्ठान एवम् कर्मकांडीय व्यवस्था थी, तो दूसरी तरफ इसके खिलाफ उठाई गई उपनिषदों की आवाज। इस काल में यज्ञों का विकास स्वंतत्र रूप से हुआ और इस काल के प्रमुख देवता ब्रह्मा, विष्णु और महेश थे क्योंकि ये लोगों की उत्पति और उनके पालन-पोषण के लिए जिम्मेदार थे। हाँलाकि ब्राह्मण का इस काल में उत्पादन व्यवस्था में कोई भूमिका नही थी, इसलिए समाज में अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए पुरोहित और क्षत्रिय वर्ग ने बड़े-बड़े यज्ञ करने शुरू कर दिए जैसे : राजसूय, वाजपेय और अश्वमेघ आदि। जिस प्रकार के कर्मकण्ड इस काल में उभरे, उनमें ब्राह्मणों की निजी स्वार्थ निहित था। यज्ञों का जन कल्याणकारी अर्थात् क षि उत्पादन बढ़ाने वाले तथा मोक्ष को प्राप्त करने का साधन माना जाने लगा। लेकिन यज्ञों के अवसर पर बलि प्रथा में आई तेजी के कारण लोगों में असंतोष के स्पष्ट प्रमाण उभरने लगे थे। इस फैलें असंतोष को कम करने का कार्य उपनिषदों ने किया, जिन्होंने धर्म को सरल शैली से जोड़ कर्मकाण्ड़ों का खण्डन किया।

उतरवैदिक काल में यज्ञ मात्र उद्देश्य पूर्ति का साधन नही थे बल्कि यज्ञों के जरिए ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ग के लोग समाज पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने और अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा को मजबूत करने लगे। इस काल में यज्ञों को बढ़ावा देने में शासकों ने भी महत्पूर्ण भूमिका निभाई, बड़े-बड़े यज्ञों का आयोजन कर राजा जनता पर अपनी सता की वैधता स्थापित करने का प्रयास करता था। ब्राह्मण इन यज्ञों के माध्यम से राजा में दैवीय गुणों का आरोपण करता था। जिसके बदले में राजा पुरोहितों को राजसम्मान और धन-संपदा देता था। इस काल में तीन प्रमुख यज्ञ थे; राजसूय, वाजपेय, तथा अश्वमेघ आदि। ऐसे धार्मिक अनुष्णन राजा के लिए भी बहुत महत्वपूर्ण थे। वस्तुतः ये सारी बातें राजा के पद को वैधता प्रदान करने के लिए ही थी। इस काल की प्रसिद्ध रचना यजुर्वेद, से हमें यज्ञों की विधि और नियमों की विस्त त जानकारी मिलती है। इस काल में सम्पन्न हुए धार्मिक अनुष्णन पहले के काल की अपेक्षा अधिक पेचिदा और खर्चीलें हो गए थे।

उतरवैदिक काल में होने वाले राजसूय यज्ञ का सम्बन्ध राजा के राज्यारोहण से था। जो कि प्रतिवर्ष चलता रहता था। इस यज्ञ के अवसर पर ही राजा की घोषणा की जाती थी और इसमें कई आनुषंगिक कर्मकांड हुआ करते थे। इस तरह ये बहुत खर्चीले होते थे क्योंकि प्रत्येक क्रिया की दक्षिणा देनी पड़ती थी। इस यज्ञ में पूरे वर्ष चलने वाले अनुष्ठानों का अंत ऐसे यज्ञ से होता था, जिसकी अध्यक्षता 'इन्द्रशुनासीर' अर्थात् हलयुक्त इन्द्र करता था और जिसका उद्देश्य 'पस्त प्रजनन शक्ति का पुनः जाग त करना होता था। दूसरा महत्वपूर्ण यज्ञ वाजपेय था, जो सत्रह दिन से एक वर्ष की अवधि तक चलता था। राजा इस यज्ञ का आयोजन राजसूय यज्ञ के बाद करता था इस यज्ञ का लक्ष्य था, राज्य और शासक की सम द्धि। इस यज्ञ में रथों की दौड़ होती थी, जो एक प्रथा थी। इसका उपयोग शारिरिक शक्ति के आधार पर शासक का चुनाव करने के लिए किया जाता था। इस यज्ञ के दौरान जिन लगभग एक दर्जन रत्निनों (मंत्रियों) के घर राजा जाता था, उनमें से चार स्त्रियाँ होती थी। यह इस बात की संकेत करता है कि अनार्य जातियों के मात कुलीय रिवाजों को नजरअंदाज नही किया गया था। इस प्रकार कर्मकांडों ने ब हतर समुदाय के संगठन में सहयोग दिया।

अश्वमेघ यज्ञ के लिए एक वर्ष पूर्व तैयारियाँ शुरू की जाती थी, लेकिन यह यज्ञ तीन दिन तक चलता था। इस यज्ञ के अवसर पर एक विशेष घोड़े का अभिषेक करके उसे एक वर्ष घूमने के लिए छोड़ दिया जाता था। इसके साथ कुछ सैनिक भी होते थे। वर्ष के अंत में विधिपूर्वक यज्ञ करके उस घोड़े की बलि दी जाती थी। इसमें विशिष्ट लोगों की उपस्थिति के अलावा सामान्य जन भी हिस्सा लेते थे। अश्वमेघ के अवसर पर पौराणिक गाथाओं का पाठ होता था। अश्वमेघ यज्ञ का एक उद्देश्य शासक के प्रभुत्व को कायम रखना भी था। उपयुक्त यज्ञों की महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इनमें क षि उत्पादन में व द्धि के लिए भी अनुष्ठान होता था। जैसे वाजपेय यज्ञ तो खाद्य और पान से जुड़ा था और राजसूय यज्ञ के अंत में ऐसी ध्वन क्रिया थी जिसका उद्देश्य भूमि की कम हुई उर्वरा शक्ति का पुःन बढाना था।

विशाल यज्ञों के अतिरिक्त अथर्ववेद में अन्य यज्ञों का भी उल्लेख है, जिन्हें लोग अपने घरों में ही विधिपूर्वक करते थे। इन यज्ञों का मुख्य उद्देश्य धन में व द्धि तथा स्वर्ग की प्राप्ती था। यज्ञ सम्पन्न होन पर पुरोहित को दक्षिणा स्वरूप गाय, बैल, बछड़े, सोना तथा अनाज आदि दान दिया जाता था।

अथर्ववेद से पता चलता है कि यज्ञ-विधि पहले के काल की अपेक्षा अधिक पेचीदा और जटिल हो गई थी और इनमें रहस्यवाद का भी समावेश हो गया था। ब्राह्मण इस काल में मनुष्यों और देवताओं के बीच मध्यस्थ बन गया, जो उनकी प्राथनाँए देवताओं तक पहुंचाने का कार्य करता था। इसलिए समाज में ब्राह्मण वर्ग का वर्चस्व कायम हो गया, क्योंकि कोई भी यज्ञ उनके बिना सम्पन्न नही हो सकता था। हाँलाकि ब्राह्मणों के बढ़ते प्रभुत्व के खिलाफ प्रतिक्रिया उपनिषदों में शुरू हो गई थी।

उतरवैदिक कालीन धर्म की दूसरी धारा उपनिषदीय अद्धेत सिंद्धात में स्पष्ट होती है। उस काल में यह ब्राह्मणों के कर्मकांड पर एक गहरा आघात था। उपनिषदीय विचारकों में नए रूप से सिंद्धातों का प्रतिपादन किया, जिनमें कर्म, पुनर्जन्म और मोक्ष मुख्य थे। पुरोहितों की कर्मकाण्डिय व्यवस्था के विरोध का मुख्य कारण विस्त त पैमाने पर होने वाली क षि थी, क्योंकि यज्ञों में पशुबलि से क षि को काफी नुकसान पहुँचता था। यज्ञ प्रक्रिया चूंकि काफी खर्चीली हो गई थी जो आम आदमी की पहुँच से बाहर थी इसलिए इस धार्मिक प्रक्रिया के खिलाफ आवाज उठनी शुरू हुई और यज्ञापि कर्मकाण्डों के खिलाफ पांचाल, विदेह और पूर्वी भारत में जबरदस्त प्रतिक्रिया भी हुई। इस काल में रचे गए उपनिषदों ने इन कर्मकाण्ड़ों को नकार दिया और इन्होंने ब्रह्या और आत्मा के बीच अद्धेत (दोनों एक है) का मत प्रतिपादित किया। इन्होंने मोक्ष प्राप्ती के लिए सद्कर्मो, चार पुरूषार्थो

और आत्मिकज्ञान पर बल दिया। इसमें यद्याविद कर्मकाण्डों का कोई स्थान नही था। ज्ञान प्राप्ति के लिए नैतिकता पर बल दिया गया। लेकिन यह इतना गूढ़ ज्ञान था कि उस काल की जनता इसे समझ नही सकी। छन्योग्य उपनिषद और व हदारण्यक उपनिषदों में जीवन, मरण, पुनर्जन्म के विषय में दार्शनिक चिन्तन बहुत व्यापक और स्पष्ट है। इसमें मनुष्य और परमात्मा के बीच के संबध को समझने की कोशिश थी जिसकी परिणती अद्वेत में हुई, अर्थात् अस्तित्व की एकात्मकता में विश्वास व्यक्त किया गया।

अथर्ववेद से स्पष्ट प्रमाण है कि धर्म में स्थानीय लोक परम्पराओं और विश्वासों का समावेश किया गया। जैसे विभिन्न बिमारियों में व द्धि और उन्हें दूर करने के लिए अथर्ववेद में मंत्र है, अपने शत्रु का नाश करने तथा स्वयं लाभ की प्राप्ती के लिए अलग-2 मंत्र थे। इस काल में प्रचलित विश्वासों और अंधविश्वासों को भी धर्म में शामिल किया गया। देवताओं का इस काल में लौकिकरण किया गया और सामान्य जनता के साथ इस काल के देवताओं को जोड़ा गया। जैसे सूर्य देवता इस काल में भूत-प्रेत भगाता था और पूषण जो ऋग्वैदिक काल में क षि का देवता था, इस काल में सौहद्य की स्थापना और बच्चों के सरक्षित जन्म के लिए पूजा जाने लगा।

स्पष्ट है कि उतरवैदिक काल में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे। यह क षि विस्तार, सामाजिक विभेदीकरण, राजतंत्र के उद्भव तथा धार्मिक विश्वासों और क त्यों में परिवर्तन से प्रमाणित होता है। यह वह काल था जब उतरी भारत के इतिहास में आगे और भी विकास की नींव डाली गयी थी, जो ईसा पूर्व छठी शताब्दी से स्पष्ट होती है।

ई०पू० छठी शताब्दी का काल धार्मिक द ष्टि से क्रान्ति अथवा महान परिवर्तन का काल माना जाता है। इस समय परम्परागत वैदिक धर्म एवं समाज में व्यापक कुरीतियों, पाखण्डो, छुआ-छात आदि के विरूद्ध आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। यह आन्दोलन कोई आकस्मिक घटना नही थी, वरन् चिरकाल से संचित हो रहे असंतोष की परिणति थी। वैदि धर्म के कर्मकाण्डो तथा यज्ञीय विधि-विधानों के विरूद्ध प्रतिक्रिया प्रस्तुतः उतर-वैदिक काल में ही प्रारम्भ हो चुकी थी। वैदिक धर्म की व्याख्या एक नये सिरे से की गई तथा यज्ञ एवं कर्मकाण्डों की निन्दा करते हुए धर्म के नैतिक पक्ष पर बल दिया गया शरीर को मिथ्या बताकर आत्मा की अमरता के सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ।

राजनीतिक क्षेत्र में मगध अपने आस पड़ोस के अन्य राज्यों पर अपनी श्रेष्ठता स्थापित कर रहा था। एवं एक विशाल साम्राज्य के रूप में उभर रहा था। उसी समय धार्मिक क्षेत्रों में हो रहे परिवर्तनों का केन्द्र भी यहीं बना नही बल्कि विश्व स्तर पर भी परिवर्तनों का युग था। इस समय भारत में ही नही बल्कि विश्व के अन्य देशों में भी प्राचीन मान्यताओं को चुनौती दीजा रही थी। जो काम यूनान में हैरक्लीटस पाईथागोरस, ईरान में जेरूथष्ट और चीन में कन्फयूशियस व लाओत्से (ताओ) कर रहे थे, वही काम इस समय भारत में महावीर स्वामी, महात्मा बुद्ध कर रहे थे। इस मानवतावादी विचारधारा ने भू-मध्य सागर से प्रशान्त महासागर तक मानव मस्तिष्क में खलबली मचा रखी थी। यह विचारधारा स्पष्ट रूप से तत्कालीन धर्म-दर्शन के विरूद्ध असन्तोष को प्रकट कर रही थी। यह स्पष्ट रूकरना कठिन है कि विश्व-भर के इस समाज-सुधारकों में आपस में कोई सम्बन्ध था या नहीं। परन्तु यह स्पष्ट है कि सभी ने प्रचलित धर्मो की उन पुरानी मान्यताओं का विरोध किया जो मानव के विकास में बाधक थी।

इस बौद्धिक क्रान्ति के लिए तात्कालिन सामाजिक व आर्थिक कारण भी कम उतरदायी नही थें। समाज में वर्ग-व्यवस्था का विक त स्वरूप 'जाति' के रूप विकसित हो चुका था। ब्राहमण विशेषाधिकार युक्त तथा शुद्र अधिकार विहिन वर्ग बने हुए थे। किन्तु लोहे के प्रयोग ने क षि में क्रान्ति ला दी, जिससे उत्पादन बढ़ा, उद्योग धन्धें बढ़े। फलस्वरूप एक शक्तिशाली व्यापारी वर्ग का उदय होता है। दूसरी और क्षत्रियों की राजनीतिक शक्ति में व द्धि हुई। अब क्षत्रिय व वैश्य दोनों ने ब्राहम्णों से सामाजिक प्रतिस्पर्धा शुरू कर की और ब्राहम्णों का विरोध किया। फलतः समाज में नयी विचारधारा का प्रवेश हुआ। क षि की अपयोगिता बढ़ जाने से पशुओं का महत्व भी बढ़ गया तथा बलि प्रथा एवं अश्वमेघ यज्ञ आदि का विरोध किया गया। परिणामस्वरूप नये सुधारवादी विचारों वाले धर्म का मार्ग प्रशस्त हो गया, जिसकी सफलता ने लोगों को बड़ी शीध्रता से आकर्षित कर लिया। ये नए सुधारवादी धर्म थे-'जैन' एवं 'बौद्ध धर्म'।

अध्याय-2

Age of Reason & Revolt

a. जैन धर्म

(Jainism)

छठी शताब्दी ईसा पूर्व के धर्म-सुधार आन्दोलन में जैन धर्म का विशिष्ट स्थान हैं। जिसके संस्थापक महावीर स्वामी थे। जैन श्रुतियों के अनुसार, जैन धर्म की उत्पत्ति एवं विकास के लिए 24 तीर्थाकर उत्तरदायी थे। इनमें से पहले बाईस की ऐतिहासिकता संदिग्ध हैं। परन्तु अन्तिम दो तीर्थाकर पार्श्वनाथ और महावीर की ऐतिहासिकता को बौद्ध ग्रन्थों ने प्रमाणित किया है। जैन सम्प्रदाय के अनुयायियों का विश्वास है महावीर स्वामी 24 वें तथा अन्तिम तीर्थकर थे। किन्तु कुछ जैन अनुयायी प्रथम तीर्थकर ऋ ष्भदेव को जैन धर्म का संस्थापक मानते है। जो भी हो इतना सत्य तो अवश्य हैं कि जैन धर्म के 24 वें तीर्थकरों में महावीर स्वामी के काल में जैन धर्म का काफी प्रचार-प्रसार हुआ। ऋ ष्भदेव का नाम ऋ ग्वेद में भी आता है। महावीर स्वामी 24 वें तथा अन्तिम तीर्थकर थे। 23वें तीर्थकर पार्श्वनाथ थे।

पार्श्वनाथः

जैन श्रुतियों के अनुसार 23 वें तीर्थाकर पार्श्वनाथ बनारस के राजा अश्वसेन एवं रानी वामा के पुत्र थे। उनका काल महावीर स्वामी से 250 वर्ष पहले माना जाता हैं। उन्होंने 30 वर्ष की आयु में सिंहासन का परित्याग कर दिया और सन्यासी हो गए। 83 दिन की घोर तप्स्या के बाद इन्हें ज्ञान की प्राप्ति हुई। जैन श्रुतिओं के अनुसार इन्होंने 70 वर्ष तक धर्म का प्रचार किया। पार्श्वनाथ 'पदार्थ' की अन्नतता में विश्वास करते थे। इनके अनुयायियों को निर्ग्रथ कहा जाता था। पार्श्वनाथ के समय में निर्ग्रथ संप्रदाय सुसंगठित था। निर्ग्रथों के चार गणों (संघो) मे से प्रत्येक गण एक गणधर के अंतर्गत था। पार्श्वनाथ भी वैदिक धर्म के कर्मकाण्ड तथा देववाद के कुट आलोचक थे। इन्होंने जाति प्रथा पर भी प्रहार किया। प्रत्येक व्यक्ति को ये मोक्ष का अधिकारी मानते थे चाहे वह किसी जाति का हो। नारियों को भी इन्होने अपने धर्म में प्रवेश दिया था। उनकी मूल शिक्षा थी प्राणियों की हिंसा न करना, सदा सत्य बोलना, चोरी न करना तथा संपति न रखना । महावीर स्वामी के माता-पिता की पार्श्वनाथ के अनुयायी थे।

महावीर स्वामीः

महावीर स्वामी का मूल नाम वर्धमान था। इनका जन्म वैशाली के पास कुड़ीग्राम में जात क नामक कुल के राजा सिद्धार्थ के घर 540 ई०पू० हुआ। इनकी माता त्रीशला लिच्छवी राजा गणराज्य के मुखिया चेटक की पुत्री थी। महावीर का बचपन एक राजकुमार का रहा तथा हर प्रकार की सुविधाओं से पूर्ण था। इनकी पत्नी का नाम यशोदा तथा पुत्री का नाम प्रियदर्शनी था। 30 वर्ष की आयु तक इनके माता-पिता की म त्यु हो चुकी थी एवं महावीर स्वामी ग हस्थ जीवन से ऊब चुके थे। फलतः इन्होंने परिवार के सभी सदस्यों के समक्ष घर त्यागने का प्रस्ताव रखा जो अन्नतः स्वीकार कर लिया गया तथा इन्होंने अपने बड़े भाई नन्दीवर्धन से आज्ञा लेकर घर त्याग दिया। पहले उन्होंने एक वस्त्र धारण किया और फिर उसका भी तेरह मास के उपरान्त परित्याग कर दिया तथा बाद में 'नग्न भिक्षु' की भान्ति भ्रमण करने लगे। घोर तपस्या करते हुए 12 वर्ष तक एक सन्यासी का जीवन व्यतीत किया। लोगों ने उन पर पत्थर फैंके तथा कुते छोड़े, लेकिन महावीर स्वामी अपने तप मार्ग पर अटल रहे। अपनी तपस्या के 13वें वर्ष में, 42 वर्ष की आयु में आधुनिक बिहार में ऋ जुपालिका (केवालिन) नदी के तट पर जम्भिभय ग्राम (ज म्भिका ग्राम) में उन्हें ज्ञान केवलिन की प्राप्ति हुई। बाद में उनकी प्रसिद्धि "महावीर (सर्वोच्च यौद्धा)" या "जिन" (विजयी) के नामों से हुई। उनको "निग्रंथ" (बन्धनों से मुक्त) के नाम से भी जाना जाता था।

अगले 30 वर्षो तक वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करते रहे और कोसल, मगध तथा अन्य पूर्वी क्षेत्रों में

अपने विचारों का प्रचार किया। वह एक वर्ष में आठ माह विचरन करते थे और वर्षा ऋतु के चार माह पूर्वी भारत के किसी प्रसिद्ध नगर में व्यतीत करते। इनकी पत्नी यशोदा, पुत्री प्रियदर्शनी, दामाद जमाली के अतिरिक्त इनके शिष्यों में वैशाली का शासक चेटक, अवन्ति का शाशक प्रद्योत, मगध नरेश बिम्बिसार, कौशाबी व वैशाली के मतल शासक अपने परिवारों सहित थे। इस धर्म प्रचार के चलते हुए 72 वर्ष की अवस्था में पावापुरी (नालन्दा जिला) में 486ई०पू० में इन्हें निर्वाण की प्राप्ति हुई।

जैनधर्म के सिद्धान्तः-
(Priniciple of Janisim)

जैनधर्म में संसार दुखःमूलक माना गया है। मनुष्य जरा (व द्धावस्था) तथा म त्यु से ग्रस्त है। व्यक्ति को सांसारिक जीवन की त ष्णाएं घेरे रहती है। संपति संचय के साथ ही मनुष्य की कामना रूपी पिपासा बढ़ती जाती है। जिसका कोई अन्त नही है। काम-भोग विष के समान है। जो अततः दुःख को ही उत्पन्न करते है। संसार-त्याग तथा सन्यास ही व्यक्ति को सच्चे सुख की ओर ले जा सकता है। जैन धर्म के अनुसार स ष्टिकर्ता ईश्वार नही हैं। किन्तु संसार को एक वास्तविक तथ्य माना गया है जो अनादि काल से विद्यमान है। जैन धर्म मे भी सांसारिक त ष्णा-बंधन से मुक्ति को 'निर्वान' कहा गया है। महावीर स्वामी द्वारा जो बातें कही गई है वे किसी गूढ़ दर्शन को इंगित नही करती बल्कि आम व्यक्ति उस चिन्तन को बड़ी सरलता से समझा सकता था। इनमें एक अन्य बात यह भी हैं कि उनका यह सारा चिन्तन-दर्शन उनका मौलिक नही हैं। बल्कि अच्छे विचारों का संयोजन है जो उस समय की समाज में व्याप्त थे। महावीर के उपदेश समाज में फैली उन बुराईयों का विरोध कर रहे थे जिनके कारण समाज का विकास अवरूद्ध हो रहा था। इनका वर्णन इस प्रकार है-

(1) त्रिरत्न :

महावीर स्वामी ने मानव जीवन में अठारह पायों का वर्णन किया है- (i) झूठ (ii) चोरी (iii) मैथून (iv) क्रोध (v) हिंसा (vi) द्वतय मूर्छा (vii) लोभ (viii) माया (ix) मान (x) मोह (xi) कलह (xii) द्वेष (xiii) दोषारोपण (xiv) चुगली (xv) निंदा (xvi) असंयम (xvii) माथा म शा (xviii) मिथ्या-दर्शन

रूपी शतय

1. निर्वाण की प्राप्ति के लिए इनसे बचना अनिवार्य है। इनसे बचने के लिए निम्नलिखित तीन आदर्श वाक्यों को जीवन में अपनाना अनिवार्य है। 1. यही आदर्श वाक्य त्रिरत्न के नाम से जाने जाते है।

(i) सत्य विश्वास- मनुष्य का अपने ऊपर तथा जैन मत के सभी तीर्थकरों पर विश्वास होना चाहिए।

(ii) सत्य ज्ञान - मनुष्य का ज्ञान मिथ्या पर आधारित न होकर सत्य की खोज की ओर होना चाहिए।

(iii) सत्य कर्म - मनुष्य का कर्म महाव्रतों पर आधारित होना चाहिए, उसे ऐसा कुछ नही करना चाहिए जो वह अपने लिए नही चाहता।

(2) पांच महाव्रत या अणुव त :

महावीर स्वामी ने ग हस्थ के जीवन का पवित्र एवं सुखमय बनाने के लिए पांच महाव्रत बताएं :

(i) अहिंसा :-

यह जैन धर्म का सबसे महत्वपूर्ण सिद्धान्त है, जिसका संबंध मन, वचन व कर्म तीनों से है। जैन धर्म के अनुसार सभी जीवन समान है। किसी जीव को मारने या हानि पहुंचाने का विचार मन मे उत्पन्न होना भी हिंसा हैं। किसी को छेड़ना, चिढ़ाना, कठोर शब्द बोलना, मारना या पीड़ा देना भी हिंसा का ही रूप है। पैदल चलने या भोजन करने से भी किसी जीव की हत्या नहीं होनी चाहिए।

(ii) अम षा (सत्य वचन) :-

मनुष्य के वचन सदा सत्य एवं मधुर होने चाहिए। सत्य बोलने से आत्मा शुद्ध होती है। क्रोध व मोह की स्थिति में मनुष्य को मौन रहना चाहिए।

(iii) अस्तेय (चोरी न करना) :-

चोरी करना पाप है तथा असत्य भी, बिना किसी की अनुमति के किसी की वस्तुओं का संग्रह अनुचित है। यह संग्रह मोह-माया को बढ़ाता है। यह दूसरे अर्थो में हिंसा भी है।

(iv) अपरिग्रह (संग्रह न करना):-

जैन धर्म भौतिक वस्तुओं का त्याग व सम्पति का संग्रह न करने पर बल देता है।

(v) बह्मचार्य:-

मनुष्य को भोग वासना से दूर रहकर संयमपूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहिए।

(3) कठोर तपस्या :

महावीर स्वामी ने तपस्या के मार्ग को महत्वपूर्ण बताया है। उनके अनुसार तपस्या से शरीर को जितना अधिक कष्ट होगा, लक्ष्य को प्राप्त करना उतना ही आसान होगा। उनके अनुसार कष्ट व समस्याएं मनुष्य को परिपक्व बनाती है। व्यक्ति जितने अधिक कष्ट उठाएगा, उनका जीवन उतना ही अधिक सन्तुलित होगा।

(4) तीर्थकरों में विश्वास :

जैन अनुयायी 24 वें तीर्थकरों में अटूट विश्वास रखते थे। वे इन्हें सर्वशक्तिमान तथा सर्वज्ञ मानते थे। तीर्थकरों में महावीर स्वामी को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था।

(5) आत्मा, मोक्ष व कर्म सिद्धान्त :

ब्रहामण धर्म (वैदिक धर्म) की भांति महावीर स्वामी भी आत्मा के अस्तित्व में विश्वास रखते थे। यह छोटी अथवा बड़ी नहीं होती तथा इसका अस्तित्व शरीर के साथ समाप्त नहीं हो जाता। उनके चिन्तन में कर्म सिद्धान्त को भी महत्व दिया गया है। जिसके अनुसार कर्म ही मनुष्य के भविष्य को निर्धारित करते है तथा वर्तमान के आधार पर ही अगले जन्म का निर्धारण होता है।

(6) ईश्वर के बारे में :

महावीर स्वामी ने अपने चिन्तन में ईश्वर के अस्तित्व को नकारा है, वे कहते है कि संसार में ऐसा कोई नियन्त्रक नही हैं जो इस पूरी व्यवस्था की देखभाल करता हो। इसलिए ईश्वर व अन्य किसी दैवी-देवताओं की उपासना का कोई औचित्य नहीं है। बल्कि मनुष्य के कर्म व आत्मा ही पूर्ण शक्ति रखती है।

(7) ब्राहमणों की सर्वोच्चता का विरोध :

महावीर स्वामी ने समाज के सभी वर्गो को समान बताया है। उनके अनुसार ब्राहमण भी समाज के अन्य लोगों की तरह सामान्य व्यक्ति थे। वे देव पुरूष नही है। उन्होंने ब्राहमणों की नीति का विरोध किया।

(8) वेंदो व संस्क त के बारे में :

जैन धर्म ने इस बात को पूरी तरह से मिथ्या बताया है कि वेद मानव क त नही हैं। उन्होंने वेदों की पवित्रता का भी विरोध किया। महावीर स्वामी ने इन्हें सामान्य पुस्तकों के समान बताते हुए स्पष्ट किया है कि धर्म विशेष के लोगों ने अपने स्वार्थ की पूर्ति हेतु इनकी यह छवि बना दी। उन्होंने संस्क त को भी पवित्र भाषा स्वीकार नही किया। उनके अनुसार यह मुठ्ठी भर लोगों की भाषा हे। जो उस समय तक सम्मान नही पा सकती जब तक सर्व-साधारण इसको अच्छी तरह समझ न लें।

(9) यज्ञ, बलि व अन्धविश्वासों का विरोध :

जैन धर्म में इन सभी को महत्वहीन बताया गया है। समाज में प्रचलित इस प्रकार की सभी मान्यताओं का विरोध करते हुए उसने लोगों को सरल जीवन जीने के लिए कहा, क्योंकि खर्चीले यज्ञ, बलि व कर्मकाण्ड मनुष्य की आर्थिक स्थिति को न केवल खराब करते है, बल्कि समाज में कुछ लोगों के व्यवसाय का साधन भी बनते है।

(10) ज्ञान सिद्धान्त :

जैन धम्र में पवांच प्रकार के ज्ञान के महत्व पर बल दिया गया था। ये ज्ञान सिद्धान्त थे- मतिज्ञान, श्रुतिज्ञान,

अवधिज्ञा, मन पर्याय ज्ञान एवं कैवलय ज्ञान। ज्ञान के प्रति जैन धर्म का द ष्टिकोण स्यादवाद का है। स्यादवाद को अनेकान्तवाद भी कहा जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार ज्ञान को एंकागिक द ष्टि से न अपनाकर उसके सभी विविध पक्षों को देखना चाहिए।

जैन धर्म का विस्तार :
(The Growth of Jainism)

महावीर स्वामी ने अपने संघो को ग्यारह गणों में बांटा तथा पावा में चर्तुविध संघ की स्थापना की। महावीर के ग्यारह शिष्य थे जिनको गन्धर्व था सम्प्रदायों का प्रमुख कहा जाता था। आर्य सुघर्मा अकेला ऐसा गन्धर्व था जो महावीर की म त्यु के पश्चात भी जीवित रहा और जो जैन धर्म का प्रथम 'थेरा' या मुख्य उपदेशक हुआ। राजा नंद के काल में जैन धर्म के संचालन का कार्य दो 'थेरो' (आचार्यो) द्वारा किया जाता थाः-

(i) सम्भूताविजय और (ii) भद्रबाहू (i) छठे थेरा (आचार्य) भद्रबाहू, मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के समकालिन थे।

धीरे-धीरे महावीर के समर्थक सारे देश में फैल गए। जैन धर्म को शाही संरक्षण की क पा भी रही। जैन अनुश्रुतियों के अनुसार, अजातशत्रु का उत्तराधिकारी उदयन, जैन धर्म का अनुयायी था। सिकन्दर के भारत पर आक्रमण के समय जैन भिक्षुकों को सिन्धु नदी के किनारे भी पाया गया था। चन्द्रगुप्त मौर्य जैन धर्म का अनुयायी था। और उसने भद्रबाहू के साथ दक्षिण की और प्रावास किया तथा जैन धर्म का प्रचार किया। पहली सदी. ई० में मथुरा एवं उज्जैन जैन धर्म के प्रधान केन्द्र बन गए।

बौद्ध धर्म की तुलना में जैन धर्म की सफलता शानदार थी। इसकी सफलता का एक मुख्य कारण था कि महावीर एवं उसके अनुयायियों ने संस्क त के स्थान पर लोकप्रिय भाषा (प्राक त, धार्मिक साहित्य को अर्ध-मगधी में लिखा गया) का प्रयोंग किया। जनता के लिए सरल एवं घरेलू निर्देशों ने लोगों को आकर्षित किया।

जैन सभायें :

चन्द्र गुप्त मौर्य के शासन की समाप्ति के समीप दक्षिण बिहार में भयंकर अकाल पड़ा। यह बाहरह वर्षो तक चला। भद्रबाहू और उनके शिष्यों ने कर्नाटक राज्य में श्रावण बेल गोला की और विस्थापन किया। अन्य जैन मुनि स्थूलबाहुभद्र के नेत त्व में मगध में ही रह गए। उन्होंने पाटलीपुत्र में 300 ई०पू० के आस-पास सभा का आयोजन किया। इस सभा में महावीर स्वामी की पवित्र शिक्षाओं को 12 अंगों में विभाजित किया गया।

दूसरी जैन सभा का आयोजन 512 ई० में गुजरात में वल्लभी नामक स्थान पर देवर्धिमणी क्षमा श्रमण की अध्यक्षता में किया गया। इसका मुख्य उदेश्य धार्मिक शास्त्रों को एकत्र एवं उनकों पुनः क्रम से संकलित करना था। किन्तु प्रथम सभा के संकलित बारहवां अंग इस समय खो गया था। शेष बचे हुए अंगो की अर्धमगधी में लिखा गया।

सम्प्रदाय :

जैन धर्म में फूट पड़ने का समय लगभग 300 ई०पू० माना जाता है। महावीर के समय में ही एक वस्त्र धारण करने को लेकर मतभेद स्पष्ट होने लगे थे। श्रावण बेल गोल से मगध वापस लौटने के बाद भद्रबाहु के अनुयायियों ने इस निर्णय को मानने से इन्दकार कर दिया कि 14 पर्व खो गए थे। मगध में ठहरने वालों तथा प्रस्थान करने वालों में मतभेद बढते ही गए। मगध में ठहरने वाले सफेद वस्त्रों को धारण करने के अभ्यस्त हो चुके थे और महावीर की शिक्षाओं से दूर होने लगे जबकि पहले वाले नग्न अवस्था में रहते और कठोरता से महवीर की शिक्षाओं का अनुसरण करते। जैन धर्म का प्रथम विभाजन दिगम्बर (नग्न रहने वालों) और श्वेताम्बर (सफेद वस्त्र धारण करने वालो) के बीच हुआ। अगली शताब्दियों में पुनः दोनों सम्प्रदायों में कई विभाजन हुए। इनमें महत्वपूर्ण वह सम्प्रदाय था जिसने मूर्ति-पूजा को त्याग दिया और ग्रंथो की पूजा करने लगे। वे श्वेताम्बर सम्प्रदाय में "तेरापन्थी" कहलाये और दिगम्बर सम्प्रदाय में समवास कहलाये। यह सम्प्रदाय छठीं ईसवीं में अस्तित्व में आया।

जैन धर्म सीमित क्यों रहा?
(Why Jainism was Restricted?

जैन धर्म में तत्कालीन समाज को प्रभावित करने की अच्छी बातें थी जिसके कारण इसका विकास हुआ। इसके साथ-साथ कुछ मौलिक दोष भी थे जो इसके अधिक विकास में बाधक रहें, समय के साथ-साथ इसमें कुछ दोष भी आ गए। जिसके कारण यह पतन की और अग्रसर हो गया तथा समाज के सीमित से हिस्से में अपनी जगह बना पाया। जबकि इसका समकालिन धर्म बौद्ध धर्म विश्व के अधिकतर हिस्सों में अपनी जगह बना पाया। इस बारे में समझने के लिए कि यह धर्म सीमित क्यों रहा कुछ कारणों को जानना अनिवार्य है।

जैन धर्म का सबसे प्रमुख सिद्धान्त अहिंसा का सिद्धान्त है जो कि अति कठोर है। यदि इसका पूरी तरह से पालन किया जाता तो मनुष्य द्वारा आजीविका कमाना भी कठिन था। अतः यह सिद्धान्त सभी के लिए व्यावहारिक नहीं था। कठोर तपस्या का सिद्धान्त भी अहिंसा के सिद्धान्त के भान्ति जटिल है। शरीर को अधिकाधिक कष्ट देकर अनुभव प्राप्त करना सामान्य जीवन जीने वाले लोगो के लिए काफी कठिन था। जैन धर्म की कार्य-प्रणाली व चिन्तन आरम्भ में ठीक था, लेकिन बाद में यह अपने को ब्रहामण धर्म से अलग नही कर पाया तो लोगों ने अपने पुराने धर्म की और लौटना उचित समझा।

जैन धर्म के सिद्धान्त में जन-सामान्य को कही-कही विरोधाभ्यास भी नजर आया। जिसको समझना उनके लिए आसान न था। जैन धर्म कर्म व आत्मा में विश्वास करता है, परन्तु परमात्मा के अस्तित्व को नकारता है। भले ही जैन मत कर्म व आत्मा की व्याख्या अलग ढंग से की गई हो, परन्तु आम व्यक्ति को इसमें साफ तौर पर विरोधाभ्यास दिखाई देता है। प्रारम्भ में जैन धर्म को राजकीय संरक्षण प्राप्त था जो कि समय के साथ-साथ कम होता गया और इस धर्म के प्रचार में भी गिरावट आ गई। जैन धर्म का सीमित रहने का एक अति महत्वपूर्ण कारण इसका विभाजन रहा जैन धर्म अपने अन्दर एकता नहीं रख सका। यह दिगम्बर व श्वेताम्बर दो भागों में विभाजित हो गया। इन दोनों मतों ने एक-दूसरे को हीन दिखाने का प्रयास किया जिससे लोगों को इनकी कमजोरियों का भी पता चला। इनकी जीवन-शैली से लोग इस बारे में सोचने लगे, क्योकि दिगम्बर पुरातन पंथी थे व नग्न रहते थे, जबकि श्वेताम्बर समय के साथ बदलना चाहते थे एवं सफेद वस्त्र धारण करते थे। इस तरह से जैन धर्म समय के बहाव में अपने को उतना बेहतर न रख पाया जैसा कि प्रारम्भ में था।

पार्श्वनाथ तथा महावीर की शिक्षाओं में अंतरः

पार्श्वनाथ ने अंहिसा, सत्य, अस्तेय तथा 'बहिद्धादाणओं वेरमणं' के चतुर्याभ धर्म की व्यवस्था की थी। महावीर ने इसमे पंचम व्रत ब्रहमर्चाय की व द्धि की। साथ ही पार्श्वनाथ वस्त्र धारण के विरूद्ध नहीं थे। किन्तु महावीर स्वामी ने सांसारिकता से पूर्णरूपेण अनासक्ति के लिए नगन्नता को आवश्यक माना। नग्नता से काया-कलेश तथा अपरिग्रह को प्रोत्साहन मिलता है। साथ ही लज्जा आदि अनेक सांसारिक मान्यताओं के भ्रम से भिक्षु मुक्त हो जाता है। आगे चलकर वस्त्र धारण करने तथा निर्वस्त्रता के आधार पर जैन धर्म श्वेताम्बर तथा दिगम्बर दो सम्प्रदायों में विभक्त हो गया।

अध्याय-2

Age of Reason & Revolt

b. बौद्ध धर्म

(Buddhism)

गौतम बुद्ध और बौद्ध धर्म की उत्पति :-

कौशल देश के उतर में कपिलवस्तु शाक्य क्षत्रियों का एक छोटा-सा गणराज्य था। यहाँ शुद्धोदन नामक एक राजा राज्य करते थे। 563 ई॰पू॰ इन्ही शुद्धोदन की कोलियवंशीय पत्नी महामाया अथवा मायादेवी के गर्म से गौतम का जन्म हुआ था। यह जन्म नेपाल की तराई में स्थित लुम्बिनी वन में हुआ था जो कपिलवस्तु से लगभग 14 मील की दूरी पर है। कालान्तर में यहीं पर सम्राट अशोक ने एक स्तम्भ स्थापित करवाया था जिस पर आज भी 'हिद बुझे जाते साक्यगुनिति हिद भगवा जातेति' (यहां शाक्य मुनि बुद्ध उत्पन्न हुए थे यहां भगवान उत्पन्न हुए थे) पढा जा सकता है। जन्म के सातवें दिन इनकी माता का निधन हो गया एवं इनका पालन पोषण सौतेली मां गौतमी ने किया। इसी कारण ये गौतम कहलाए। बालक गौतम को देखकर कालदेव तथा ब्राह्मण कौण्डिन्य ने भविष्यवाणी की थी कि यह बालक चक्रवर्ती राजा अथवा सन्यासी होगा। बालक का नाम सिद्धार्थ रखा गया और बड़े होने पर एक क्षत्रिय राजकुमार को दी जाने वाली शिक्षांए-पुस्तकीय ज्ञान, युद्ध प्रणाली, घुडसवारी, मतलयुद्ध, अस्त्र-शस्त्र प्रयोग आदि-उन्हें प्रदान की गई। किन्तु सिद्धार्थ अल्प आयु से ही चिंतनशील थे। वे जम्बू व क्ष के नीचे प्रायः ध्यानमग्न बैठे रहते थे। गौतम के प्रक त्या चिन्तनशील होने के कारण उनका इन सब सांसारिक विषयों में अनुरक्त न होता था। गौतम का प्रारम्भिक जीवन बड़ी सुख-सम द्धि के बीच बीता। उनके रहने के लिए तीन ऋतुओं के अनुरूप प थक्-प थक् तीन प्रासाद बनवाये गए थे जिनमें ऐश्वर्य की समस्त सामग्री एकत्र की गई थी। इसी प्रकार राजकुमार के घूमने फिरने के लिए अनेक रम्य उपवनों का निर्माण हुआ था। जिनमें अति मनोहरी कुंज और निर्झरादिक थे। न त्य, वाद्य, संगीत के सरस वातारण में सिद्धार्थ संसारिक दुःख की कल्पना न कर सकेंगें, ऐसे पिता शुद्धोधन का विचार था। इसी विचार से 16 वर्ष की आयु में सिद्धार्थ का विवाह यशोधरा (इनके अन्य नाम गोपा, बिंना तथा भद्रकच्छा भी उल्लिखित है) से कर दिया। इनसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। किन्तु सिद्धार्थ प्रसन्न न हुए वरन् उसे मोह-बंधन मानकर 'राहू' कहा और उसका नाम राहूल रख दिया।

त्रिपिटक में अनेक ऐसे द श्यों और घटनाओं का उल्लेख है जिनसे गौतम के वैराग्य प्रधान स्वभाव को उद्धीपन मिला। कहते है कि नगर-दर्शन के हेतु भिन्न-भिन्न अवसरों पर बाहर जाते हुए गौतम को मार्ग में पहले जर्जर शरीर व द्ध, फिर व्यथापूर्ण रोगी, फिर म तक और सबसे बाद को वीतराग प्रसन्नचित सन्यासी के दर्शन हुए। राजप्रसाद के वैभवशाली-विलासमय जीवन से विषमता वाले ये द श्यत्रमय निश्चय ही गौतम को सन्यास की ओर मोड़ने वाले थे।

संसार से गौतम का मन उचटता देख कर शुद्धोधन को चिन्ता हुई और उन्होंने एक बार फिर गौतम को विलासिता की ओर उन्मुख करने का प्रयास किया। एक रात वे अति सुन्दर वेश्याओं के मध्य अकेले छोड़ दिये गए। उन रमणियों ने अनेक हाव-भावों से गौतम को रिझाने का प्रयत्न किया। उन्मन गौतम के ऊपर उनका कोई प्रभाव न पड़ा और वे वही सो गए। गणिकाएं भी निद्रामग्न हो गई। राजकुमार गौतम की नींद सहसा टूटी तो साफ-श्रंगार विहीन गणिकांए निद्रावस्था में उन्हें बड़ी विद्रूय तथा भयानक दिखाई दी। किसी के बाल बिखरे थे, कुछ लगभग निर्वस्त्र थी और उनमें से कुछ भयावह खर्राटे भर रही थी। गौतम में ससांर त्याग की भावना अब द ढ़ हो चुकी थी। अन्त में उन्होंने सांसरिक दुःखों से निव ति का मार्ग खोजने के लिए अपनी पत्नी तथा शिशु का सोते हुए ही छोड़ कर 29 वर्ष की अवस्था में ग हत्याग कर दिया इस घटना को बौद्ध साहित्य में महाभिनिष्कमण कहा जाता है।

सांसारिक दुख उन्मूलन के लिए ज्ञान की खोज की अभिलाषा में सिद्धार्थ अनेक आचार्यो के आश्रम में गए। इनमें एक थे आभार कालाम तथा दूसरे रूद्रक रामपुत्र। यहां सिद्धार्थ ने अनेक प्रकार के कठिन योगाभ्यास सीखें किन्तु उन्हें संतोष नही हुआ। गौतम उरूवेला पहुँचे। उन्हें वहां कौण्डिन्य आदि 5 ब्राह्मण मिले। तथा उन्होंने घोर तपस्या प्रारंभ की, अन्न-जल ग्रहण न्यूनतम कर दिया। वे सुख कर नर-कंकाल के समान हो गए किन्तु ज्ञान की प्राप्ति नही हुई। अतः उन्होंने इस कठिन तपस्या को त्याग दिया और सुजाता नामक कन्या के हाथो भोजन ग्रहण किया।

इस कारण इन 5 ब्राह्मणों ने इनका साथ छोड़ दिया। उखेला के बाद वे गया चले गए और उस स्थान पर एक वट व क्ष (पीपल) के नीचे ध्यान लगाया। आठ दिन की समाधि के उपरान्त 35 वर्ष की आयु में वैसाखी मास की पूर्णिमा की रात्रि को उन्हें सच्चे ज्ञान की प्राप्ति हुई। इससे वे बौद्ध (ज्ञानी) अर्थात बुद्ध कहलाए तथा गया 'बौद्ध गया' के रूप में विख्यात हो गया।

ज्ञान-प्राप्ति के बाद उन्होंने पहला उपदेश ऋषिपतन (सारनाथ) में पांच शिष्यों को दिया जो 'धर्म-चक्र परिवर्तन' के नाम से जाना जाता है। यहीं पर प्रथम बुद्ध संघ की स्थापना हुई। सारनाथ के बाद वे मगध गए जहां के शासक बिम्बिसार ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। अजातशत्रु, कौशल नरेश प्रसेनचित, धनी व्यापारी अनाथपिड़क इत्यादि के अतिरिक्त बुद्ध` पिता, मौसी, पत्नी व पुत्र ने भी इस धर्म को स्वीकार कर लिया। 40 वर्ष तक विभिन्न क्षेत्रों में प्रचार करते हुए, कुशीनगर में 80 वर्ष की अवस्था में उन्हें निर्वाण प्राप्त हुआ।

बौद्ध धर्म की शिक्षांए तथा सिंद्धात :-
(Teaching & Principles of Buddhism)

बुद्ध के महापरिनिर्वाण के तुरंत बाद ही बौद्ध धर्म की पहली संगीति हुई। इसका उद्देश्य बुद्ध वचनों को सुरक्षित करना था। बौद्ध धर्म के बारे में हमें विशाद ज्ञान पालि त्रिपिटक से ही प्राप्त होता है। मूल बौद्ध धर्म कोई प थक् दर्शन नही है क्योंकि महात्मा बुद्ध ने सतासंबधी किसी प्रश्न पर कभी अपना विचार प्रकट नही किया। वे इस प्रकार के प्रश्नों पर होने वाद-विवादों को अनावश्यक समझते थे। अपने समय के तार्किकों के वाद-विवाद के पचड़े को देख कर महात्मा बुद्ध ने स्वंय अपने अनुयायियों से कहा था कि भिक्षुको! इसे कहते है मतों में जा पड़ना, मतों की गहनता, मतों का कान्तार, मतों का दिखावा तथा मतों का बन्धन। इन मतों के बंधन में बधा हुआ आदमी जिसने सदधर्म को नही सुना वह जन्म, बुढापें तथा म त्यु से मुक्त नही होता। शोक से रोने-पीटने से, पीड़ित होने से चिन्तित, होने से भी वह मुक्त नही होता। मैं कहता हूँ कि वह दुःख से पार नही होता। अतः आज जो कुछ भी बौद्ध दर्शन के नाम से प्रख्यात हैं वह बुद्ध की म त्यु के पश्चात् का विकास है। वह विशुद्ध मौलिक बौद्ध धर्म के अन्तर्गत नही आता।

बौद्ध धर्म का मूलाधार 'चार आर्य सत्य' है। इस धर्म के सारे सिंद्धात तथा बाद में विकसित विभिन्न दार्शनिक मत-वादों के ये ही आधार है।

(i). जीवन में दुःख सत्य है। एवं क्षणिक सुखों को सुख मानना भी अदूरदर्शिता है।

(ii) दुख समुदाय-दुःख का कारण त ष्णा है, इन्द्रियों को जो वस्तुएं प्रिय लगती है, उनकों प्राप्त करने की इच्छा त ष्णा है।

(iii) दुःख निरोध-दुःखों से मुक्त होने के लिए उसके कारण क निवारण आवश्यक है। अर्थात् त ष्णा पर विषय पाकर दुःखों से मुक्ति पाई जा सकती है।

(iv) दुःख निरोध-प्रतिपदा (दुःख निवारक मार्ग) अर्थात् अष्टांगिक मार्ग। दुःखों के निवारण एवं त ष्णा पर नियंत्रण पाने तथा निर्वाण प्राप्त करने का मार्ग अष्ट मार्ग (मध्य मार्ग) है।

बुद्ध के अनुसार जन्म भी दुःख है, जरा (व द्धावस्था) भी दुःख है, व्याधि भी दुःख है, अप्रिय मिलन भी दुःख है, प्रिय वियोग भी दुःख है। संसार को दुःखमय देखकर ही बुद्ध ने कहा था 'सब्बं दुःख' अर्थात् सभी वस्तुएं दुःखमय है।

अष्टांगिक मार्ग में निम्नलिखित सिद्धान्त समहित है।

(i) साम्यक् दष्टि : इसका अर्थ है इच्छा के कारण ही इस संसार में दुःख व्यापक है। इच्छा का परित्याग ही मुक्ति का मार्ग है।

(ii) सम्यक् संकल्प : यह लिप्सा और विलासिता से छुटकारा दिलाता है। इसका उद्देश्य मानवता को प्यार करना ओर दूसरों को प्रसन्न रखना है।

(iii) सम्यक् वाचन : मनुष्य को झूठ, निन्दा व अप्रिय वचन नही बोलने चाहिए तथा वाणी म दु होनी चाहिए।

(iii) सम्यक् कर्म : मनुष्य को हिंसा के कर्म पूर्ण रूप से संयमशील होने चाहिए जिसमें अहिसां व इन्द्रिया सयंम के अतिरिक्त, कर्म, दान, सदाचार, दया इत्यादि का समावेश होना चाहिए।

(v) सम्यक् जीविका : अर्थात् आदमी को ईमानदारी से अर्जित साधनों द्वारा जीवन-यापन करना चाहिए।

(vi) सम्यक् प्रयासः इससे तात्पर्य है कि किसी की भी बुरे विचारों से छुटकारा पाने के लिए इन्द्रियों पर नियंत्रण होना चाहिए। कोई भी मानसिक अभ्यास के द्वारा अपनी इच्छाओं एवं मोह को नष्ट कर सकता है।

(vii) सम्यक् स्म ति : इसका अर्थ है कि शरीर नश्वर है और सत्य का ध्यान करने से ही सांसारिक बुराईयों से छुटकारा पाया जा सकता है।

(viii) सम्यक् समधि : इसका अनुसरण करने से शान्ति प्राप्त होगी। ध्यान से ही वास्तविक सत्य प्राप्त किया जा सकता है।

बौद्ध मत ने कर्म के सिद्धांत पर बल दिया। वर्तमान का निर्णय भूतकाल के कार्य करते है। किसी व्यक्ति की इस जीवन और अगले जीवन की दशा उसके कर्मो पर निर्भर करती है। प्रत्येक व्यक्ति अपने भाग्य का निर्माता है अपने कर्मो को भोगने के लिए हम बार-बार जन्म लेते है। अगर कोई व्यक्ति किसी भी तरह का पाप नही करता है तो उसका पुनर्जन्म नही होगा। इस प्रकार बुद्ध के उपदेशों का अनिवार्य तत्व या सार 'कर्म दर्शन' है। बुद्ध के निर्वाण का प्रचार किया। उनके अनुसार यदि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का अन्तिम उद्देश्य है। इसका तात्पर्य है सभी इच्छाओं से छुटकारा, दुःखों का अन्त जिससे अन्ततः पुनर्जन्म से मुक्ति मिलती है। इच्छाओं की समाप्ति की प्रक्रिया के द्वारा कोई भी 'निर्वान' पा सकता है। इसलिए, बुद्ध ने उपदेश दिया कि इच्छा को समाप्त करना ही वास्तविक समस्या है। पूजा और बलि इच्छा को समाप्त नही कर सकेंगें। इस प्रकार, वैदिक धर्म में होने वाले अनुष्ठानों एवं यज्ञों के विपरित बुद्ध ने व्यक्तिगत नैतिकता पर बल दिया।

बुद्ध ने न ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकारा और न ही नकारा। वह व्यक्ति और उसके कार्यो के विषय में अधिक चिन्तित थे। बौद्ध मत ने आत्मा के अस्तित्व को भी स्वीकार नही किया। बौद्ध धर्म मूलतः अनीश्वरवादी है। स ष्टि का कारण ईश्वर को नही माना गया है। तर्क यह है कि यदि ईश्वर को संसार का रचियता माना जाए तो उसे दुःख को उत्पन्न करने वाला भी मानना पड़ेगा। वास्तव में बुद्ध ने ईश्वर के स्थान पर मानव प्रतिष्ठा पर बल दिया। महात्मा बुद्ध के अनुसार मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वंय है तथा उसे कर्मो का फल मिलता है। इसी आधार पर उसके भविष्य के जन्मों का निर्धारण भी होता है। उनके चिन्तन में आत्मा के अस्तित्व को नकारा गया है। वे स्पष्ट करते है कि जन्म आत्मा का नही होता बल्कि अनित्य मानव अंहकार का होता है, जिसका आधार मनुष्य के कर्म होते है।

महात्मा बुद्ध ने अपने चिन्तन में नैतिकता, मात भाव व आत्मशुद्धि को संयुक्त रूप से रखा है एवं स्पष्ट किया है कि नैतिकता इसांन व पशु में अन्तर करती है जिससे मात भाव बढ़ता है जो कि मानव समाज की एक आवश्यकता भी है। यह तभी संभव है जबकि व्यक्ति आत्मशुद्धि पर बल दे। महात्मा बुद्ध ने नैतिकता पर बल देते हुए आचरण के बारे में दस बाते अपनाने का सुझाव दिया जिसे दस शील कहा जाता है। अंहिसा, झूठ का परित्याग, चोरी न करना, वस्तुओं का सग्रंह न करना, भोग विलासी न बनना, सुगन्धित पदार्थो का परित्याग, सबकी भलाई करना, किसी से घ णा न करना, मन को शुद्ध रखना, नशे का सेवन न करना। उनके इस उपदेश का सार बहुजन हितात व बहुजन सुखाय पर आधारित है महात्मा बुद्ध ने समाज में प्रचलित सभी प्रकार के मिथ्या-आडम्बरों का विरोध किया। उनके अनुसार यज्ञ-बलि, तपस्या, मूर्ति-पूजा इत्यादि का खण्डन किया इसके अलावा उतरवैदिक काल में समाज को जिन चार वर्गो में विभाजित किया था, बुद्ध उसमें विश्वास व्यक्त करते है। इससे समाज में भेदभाव को बढ़ावा मिला। बुद्ध के अनुसार शूद्र व ब्राह्मण दोनों के लिए समान रूप से अष्ट-मार्ग का सिद्धांत निर्वाण का मार्ग है। कोई भी व्यक्ति जन्म के आधार पर छोटा अथवा बड़ा नही होता अपितु उसके कर्म इसका आधार होते है।

महात्मा बुद्ध के चिंतन में विश्व के लिए नई व महत्वूपर्ण बात क्षणिकवाद का सिद्धान्त है। जिसके अनुसार संसार की सभी वस्तुएं क्षणिक (नश्वर) व निरन्तर परिवर्तनशील है। वे केवल प्रवाह रूप से स्थाई दिखती है, जैसे नदी का पानी सदैव बहाव

में होता है।, परन्तु किनारे से देखने वाले व्यक्ति को वह स्थिर दिखाई देता है। इसी प्रकार संसार भी हर क्षण परिवर्तनशील है। परन्तु हमें क्षण भर में हो रहे परिवर्तन का आभास नही होता है। मनुष्य पदार्थो को स्थायी समझकर अपनी लालसा का हिस्सा बनाने की भूल कर बैठता है अतः मनुष्य को प्रक ति मे चल रहे क्षणिक परिवर्तन को समझकर व्यर्थ की उलझनों में नही फँसना चाहिए।

बौद्ध मत का विकास :-
(Growth of Buddhism)

बुद्ध के जीवन काल में ही बड़ी संख्या में लोगो ने बौद्ध मत को स्वीकार कर लिया था। उदाहरण के लिए मगध, कौशल और कौसम्बी की जनता ने बौद्ध मत को स्वीकार किया। शाक्य, वज्जि और मल्ल जनपदों की जनता ने भी इसका अनुसरण किया। अशोक एवं कनिष्क ने बौद्ध मत को राज्य धर्म बनाया और यह मध्य एशिया, पश्चिम एशिया और श्रीलंका में फैल गया। बौद्ध धर्म जनता के बड़े हिस्सों में लोकप्रिय होने के अनेक कारण थे। व्यावहारिक नैतिकता पर बल देना, मानव जाति की सहज स्वीक त समाधान और साधारण दर्शन ने जनता को बौद्ध मत की और आकर्षित किया। बौद्ध धर्म उस समय के अनुकूल था। लोहे के व्यापक प्रयोग ने क षि अर्थव्यवस्था को विकसित किया। क षि विकास ने पशुधन संरक्षण की आवश्यकता को जन्म दिया। बौद्ध धर्म अपने अहिंसा के सिद्धान्त द्वारा इस आवश्यकता को पूरा करता था।

गौतम बुद्ध के व्यक्तित्व ने भी बौद्ध धर्म को लोकप्रिय बनाया। उनकी बौद्धिकता ने शिक्षित वर्ग को उनके आकर्षक व्यक्तित्व व त्यागमय जीवन ने साधारण जन को अपनी तरफ आकर्षित किया। भिक्षुओं ने बौद्ध मत के विचारों को व्यक्त करने के लिए उस समय की लोकप्रिय भाषा पाली में किया। संस्क त भाषा के प्रयोग करने के कारण ब्राह्मण धर्म सीमा में बंध गया था। क्योंकि संस्क त भाषा उस समय की जन-भाषा नही थी। अत् बौद्ध धर्म का विस्तार तेजी से हुआ। राजाओं के द्वारा संरक्षण प्रदान किये जाने के कारण बौद्ध धर्म का विस्तार तेजी से हुआ। उदाहरण के लिए ऐसी धारणा है कि अशोक ने अपने पुत्र महेन्द्र तथा पुत्री संगमित्रा को श्रीलंका में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए भेजा। उसने बहुत से बौद्ध विहारों को स्थापित किया और संघ के लिए उदार भाव से दान आदि भी दिया।

बौद्ध धर्म ने भारतीय संस्क ति को जीवन के सभी क्षेत्रों में सम्पन्न बनाया। धर्म के क्षेत्र में उसने मूर्ति पूजा को लोकप्रिय बनाया तथा सगठित जीवन को आरम्भ किया। नारी तथा शूद्रों पर जो धार्मिक अपात्रता की भावना थी, उसे समाप्त कर सामाजिक समता का संदेश दिया गया। बौद्ध धर्म ने शिक्षा को सार्वलौकिक बनाया, विवेकवाद का प्रसार किया तथा नालन्दा, विक्रमशिला जैसे विश्वविद्यालयों को जन्म दिया। साहित्य के क्षेत्र में ज्ञान-विज्ञान व दर्शन को नागार्जुन, वसुमित्र, अश्वघोष, पार्श्वनाथ जैसे विद्वानों ने सम्पन्न बनाया। कला के क्षेत्र में सांची, भारहुत, बौद्ध गया, अमरावती के स्तूप बौद्ध स्थापत्य के श्रेष्ठ उदाहरण है। मूर्तिकला के क्षेत्र में गांधार शैली, मथुरा शैली तथा सारनाथ शैली का विकास हुआ। अजन्ता व बाध गुफा चित्रों का चित्रण करने में बौद्ध धर्म व बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित विषयों को लिया गया। त्रूटिरहित रेखांकन, सशक्त अभिव्यक्ति तथा रंगों का सुन्दर समन्वय बौद्ध चित्रकला की मुख्य विशेषतांए है।

बौद्ध साहित्य :-
(Buddhist Literature)

बौद्ध साहित्य मुख्यतः त्रियिटकों में समाहित है।

इस साहित्य को तीन भागों में बांटा गया है :-

(i) सुत्त-पिटक : इसके पांच काय है जिनमें धार्मिक सम्भाषण तथा बुद्ध के संवाद संकलित है। पांचवे निकाय में जातक कथायें (बुद्ध के जन्म से सम्बद्ध कहानियां) है।

(ii) विनय पिटक : इसमें भिक्षु-भिक्षुणियों के संघ, उनके दैनिक जीवन संबधी नियमों का वर्णन किया गया है। इस पिटक के तीन भाग है। सुप्तविभाग, खन्दका एवं परिवार पाठ।

(iii) अभिधम्म-पिटक : इसक सात भाग है। इसमें बुद्ध के दार्शनिक विचारों का विवरण है इसकों प्रश्न-उत्तर के रूप में लिया गया है।

इसके अलावा दापवंश तथा महावंश-इसमें तत्कालीन भारत की सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक दशा तथा श्रीलंका के राजवंशो का वर्णन किया गया है। दोनों ग्रथों की रचना श्रीलंका में पाली भाषा में की गई थी। मिलिन्दपन्ह नामक ग्रंथ में यूनानी शासक मिलिन्द तथा बौद्ध भिक्षु नागसेन में दार्शनिक विषय को लेकर हुए वाद-विवाद का वर्णन किया गया है बुद्ध के पूर्व जन्म की कथाएं तथा बुद्धकालीन धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक जीवन का उल्लेख जातक कथाओं में किया गया है। यह पाली भाषा में लिखी गई है। संस्क त में लिखित ग्रंथ महावस्तु में बुद्ध की अद्भूत शक्ति तथा बोधिसत्व की प्रतिष्ठा वर्णन किया गया है।

बौद्ध-संघ

संघ बौद्ध मत की धार्मिक व्यवस्था थी। यह अच्छी प्रकार से संगठित एवं शक्तिशाली संस्था थी और इसने बौद्धमत को लोकप्रिय बनाया 15 वर्ष से अधिक आयु वाले सभी नागरिकों के लिए इसकी सदस्यता खुली थी चाहे वे किसी भी जाति के हो। अपराधी, क ष्ठ रोगी तथा संक्रामक रोग से पीड़ित लोगों को संघ की सदस्यता नही दी जाती थी। प्रारम्भ में गौतम बुद्ध महिलाओं को संघ की सदस्यता नही दी जाती थी। प्रारम्भ में गौतम बुद्ध महिलाओं को संघ का सदस्य बनाने के पक्ष में नही थे। लेकिन उनके मुख्य शिष्य आनन्द एवं उनकी धाय मां महाप्रजापति गौतमी के लगातार निवेदन करने पर उन्होंने उनकों संघ में प्रवेश दिया।

भिक्षुओं को प्रवेश लेने पर विधिपूर्वक अपना मुंडन कराना एवं पीले वस्त्र या गेरूए रंग का लिबास पहनना पड़ता था। भिक्षुओं से आशा की जाती थी कि वे नित्य बौद्ध मत के प्रचार के लिए जायेंगे और भिक्षा प्राप्त करेगें। वर्षा ऋतु के चार महीनों में वे एक निश्चित बिस्तर लगाने तथा समाधि करते थे। इसका आश्रय या 'वशा' कहा जाता था। संघ लोगों को शिक्षा देने का काम भी करता था। ब्राह्मणवाद के विपरीत बौद्ध मत में समाज के सभी लोग शिक्षा ग्रहण कर सकते थे। स्वाभाचिक रूप से जिन लोगों को ब्राह्मणों ने शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार से वंचित कर दिया था। उनको बौद्ध मत में शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हो गया और इस प्रकार शिक्षा समाज के काफी तबकों में फैल गई। संघ का संचालन जनंतात्रिक सिद्धांतों के अनुसार होता था और अपने सदस्यों को अनुशासित करने की शक्ति भी इसी में निहित थी। यहां पर भिक्षुओं एवं भिक्षुणियों के लिए एक आचार-संहिता थी और वे इसका पालन करते थे। गलती करने वाले सदस्य को संघ दंडित कर सकता था।

बौद्ध मत की सभायें (बौद्ध संगीति)

अनुश्रुतियों के अनुसार बुद्ध की म त्यु के थोड़े समय बाद 483 ई॰पू॰ में राजग ह के पास सप्तपर्णि गुफा में बौद्ध मत की प्रथम सभा हुई इस सभा की अध्यक्षता महाकस्यप ने की, इसमें 500 बौद्ध भिक्षुओं ने भाग लिया। इस संगीति का आयोजन तत्कालीन मगध नरेश अजातशत्रु के सरंक्षण में हुआ। बुद्ध की शिक्षा को पिटकों में विभाजित किया गया, जिनके नाम इस प्रकार है -विनय पिटक और सुत्क पिटक। विन्य पिटक की रचना उपाली के नेत त्व में की गई और सुत्तपिटक की रचना आनन्द के नेत त्व में की गई।

दूसरी बौद्ध संगीति, बौद्ध भिक्षुओं में उत्पन्न आपसी मतभेद को दूर करने के लिए 300 ई॰पू॰ में वैशाली में कालाशेक के शाशनकाल में हुई। इसमें लगभग 700 भिक्षुओं ने भाग लिया। पाटलीपुत्र तथा वैशाली के भिक्षुओं ने कुछ नियमों का निर्धारण किया परन्तु इन नियमों को कौशाम्बी व अवन्ति के भिक्षुओं के द्वारा बुद्ध की शिक्षा के प्रतिकूल घोषित कर दिया गया। दोनों विरोधी गुटों के बीच कोई भी समझौता कराने में सभा असफल रही। बौद्ध धर्म का विभाजन स्थायी तौर पर दो बौद्ध सम्प्रदायों-स्थविरवादी व महांसधिक में हो गया। पहले सम्प्रदाय ने विनय-पिटक में वर्णित रूढ़िवादी विचारों को अपनाया और दूसरे में नये नियमों का समर्थन किया और फिर उनमें परिवर्तन हुए।

तीसरी सभा का अयोजन अशोक के शासनकाल में मोग्गालिपुतत्स्सि की अध्यक्षता में 247 ई॰पू॰ में पाटली पुत्र में हुआ। इस संगीति में लगभग 1000 भिक्षुओं ने भाग लिया। इस सभा में सिद्धांतों को दार्शनिक विवेचना को संकलित किया गया तथा इसको अभिध्म्भ-पिटक के नाम से जाना जाता है। इस सभा में बौद्धमत का असंतुष्टों एवं नये परिवर्तनों से मुक्त कराने का प्रयास किया गया।

चतुर्थ बौद्ध संगीति का आयोजन कश्मीर के निकट कुण्डमावन ने कनिष्क के शासनकाल में हुआ। वसुमित्र इस सभा के अध्यक्ष व अश्वघोष उपाध्यक्ष थे। संगीति में उतरी भारत के हीनयान सम्प्रदाय को मानने वाले एकत्रित हुए। तीन पिटकों पर तीन

टीकाओं (भाष्यों) इसने उन विवादग्रस्त मतभेद वाले प्रश्नों का निबटारा किया जो श्रावस्तीवासियों एवं कश्मीर तथा गन्धार के प्रचारकों के मध्य उत्पन्न हो गए थे।

बौद्ध धर्म के सम्प्रदाय :-

वैशाली में आयोजित दूसरी सीमा में बौद्ध धर्म दो सम्प्रदायों में विभाजित हो गया- स्थरिवरवादी व महांसाधिक। स्थविरवादी धीरे-धीरे ग्यारह सम्प्रदायों और महासांधिक सात सम्प्रदायों में बंट गए। ये 18 सम्प्रदाय 'हीनयान' मत में संगठित हुए। स्थविरवादी कठोर भिक्षुक जीवन और मूल निदेशक कड़े अनुशासिकत नियमों का अनुसरण करते थे। वह समूह जिसने संशोधित नियमों का माना, वह महासंधिक कहलाया।

महायान सम्प्रदाय का विकास चौथी बौद्ध सभा के बाद हुआ। हीनयान सम्प्रदाय जो बुद्ध की रूढ़िवादी शिक्षा में विश्वास करता था, का जिस गुट ने विरोध किया और जिन्होंने नये विचारों को स्वीकार किया, वे लोग 'महायान' सम्प्रदाय के समर्थक कहलाये। उन्होंने बुद्ध की प्रतिमा बनाई और ईश्वर की भांति उसकी पूजा की।

बौद्ध धर्म का पतन :-
(Decline of Bhddhism)

बौद्ध धर्म का उद्‌भव व विकास ब्राह्मण वर्ग में प्रचलित दुर्गुणों की प्रतिक्रिया का परिणाम था। इसी कारण लोग इस धर्म को त्यागकर इसमें आ गए। समय के साथ-साथ धीरे-धीरे वे सारे दोष इस धर्म में भी आ गए एवं यह धर्म अपनी लोकप्रियता खोने लगा। महात्मा बुद्ध की प्रमिमाएं बनान, तंत्र-मंत्र के धर्म में प्रवेश ने इस धर्म के आकर्षण को खो दिया। शंकराचार्य व कुमारिल्न भट्‌ट जैसे विद्वानों के प्रयासों से ब्राह्मण धर्म फिर से लोकप्रियता अर्जित करने लगा राजकीय सरंक्षण के अभाव, बौद्ध धर्म के विभाजन के कारण भी यह मत पतन की ओर अग्रसर हो चला।

अध्याय-3
Agrarian Empires
a. मौर्य साम्राज्य
(The Mauryas)

जिस समय सिकन्दर अपने विश्व विजय के अभियान पर भारत की ओर आया तो यहां मगध में एक शक्तिशाली नन्द साम्राज्य का राज्य था ये नन्द राजा अपनी निम्न उत्पत्ति एवं गलत नीतियें के कारण प्रजा में काफी अलोकप्रिय हो चुके थे परन्तु फिर भी सिकन्दर की सेना ने उनसे मुकाबला न करना उचित समझा तथा उतर पश्चिमी भारत के छोटे-छोटे गणराजयों को विजित कर वापिस युनान जाना ही ठीक समझा कुछ यूनानी लेखक मानते हैं कि नन्द वंश का उन्मूलन करने के लिए सहायता मांगने चन्द्रगुप्त सिकन्दर से भी मिला था इस तथ्य में सच्चाई हो य न हो परन्तु उस समय चन्द्रगुप्त ने अपने साथी चाणक्य की सहायता से एक सेना इक्कठी कर उतरपश्चिमी भारत में सिकन्दर के आक्रमण के कारण आई रिक्कता का लाभ उठा कर इस क्षेत्र को जती लिया। बाद में उसने मगध पर आक्रमण कर ३२१ ई०पू० के आसपास मौर्य साम्राज्य की स्थापना की ली। उधर सिकन्दर की अकस्मक बैबीलोन में म त्यु के उपरान्त उसका साम्राज्य उसके जनरलों ने आपस में बांट लिया। सैल्युकस के हिस्से बैबीलोन से भारत तक का क्षेत्र आया तथा उसने अपने राज्य के खोए हुए हिस्से पुनः प्राप्त करते हेतु भारत पर आक्रमण कर दिया युनानी लेखक तो इस युद्ध के परिणाम के बारे में मौन है परन्तु इसमें सैल्युकस की हार हुई तथा उसे अपनी बेटी का विवाह चन्द्रगुप्त से कर वैवाहिक सबंध स्थापित करने पड़े। उसे अपने राजदूत मैगस्थनीज ;डमहंजींदमेमद्ध को चन्द्रगुप्त के दरबार में भेजना पड़ा।

चन्द्रगुप्त का पुत्र बिन्दुसार 297 ई०पू० में राजगद्दी पर बैठा जिसने अमित्रघात तथा अमित्रखात इत्यादि उपाधियां धारण की। उसने किन-किन प्रदेशों को जीता इसका विवरण तो हमारे पास नही है परन्तु प्रारंभिक तमिल कवियों ने मौर्यो के रथों के गरजते हुए चलने का वर्णन किया है। जो शायद इसी के काल का ही वर्णन हो, क्योंकि अशोक ने तो केवल कलिंग को ही विजित किय था तथा चन्द्रगुप्त के दक्षिण विजय की हो इसके प्रमाण नही है। बिन्दुसार के पश्चात् राज्य ंसिहासन के लिए उसके पुत्रें की बीच संघर्ष चलता रहा जो 273 ई०पू० से अशोक के राज्याभिषेक 269 ई०पू० से तक चलता रहा। कुछ विद्ववान यह मानते है कि अशोक ने राज्य तो 273 ई०पू० में ही प्रारम्भ किया परन्तु उसका राज्यभिषेक 269 ई०पू० में हुआ। कसिंग विजय के पश्चात् अशोक ने धम्भ विजय को अपना लिया तथा यह नीति व्यक्तिगत तथा राजनैतिक दोनों स्तरों पर अपनाई इसके कारण राजा और प्रजा के बीच सम्बन्धों में मूलभूत परिवर्तन आ गए। जिसका असर उस काल के समाज, राजनीति एवं धर्म पर प्रचूर रूप से पड़ा।

चन्द्रगुप्त ने चाणक्य की सलाह पर जो केन्द्रिय प्रशासन व्यवस्था का प्रारंभ किया उसे अशोक ने न केवल जारी रखा। अपितु उसमें कुछ प्रशासनिक सुधार भी किए। धम्भमहामात्रों, स्त्रीअध्यक्ष महामात्रों की नियुक्ति कर धर्म तथा स्त्रियों की भलाई के कार्य किए प्रजा की भलाई के लिए राज्जुकों की नियुक्ति की गई। इसके अतिरिक्त चन्द्रगुप्त तथा बिन्दुसार की तरह ही विदेशी ताकतों से मित्रता के सम्बन्ध बनाए रखे।

मौर्यकाल मे अर्थव्यवस्था काफी सम द्ध थी शहरीकरण की प्रक्रिया जो छटी शताब्दी ई०पू० प्रारंभ हुई थी उसका आगे विकास किया गया इस काल में कई राजमार्गो जैसे उत्तरामथ, दक्षिणापथ राजमार्ग इत्यादि का निर्माण कर ने केवल केन्द्रीय प्रशासन को बल दिया अपितु व्यापार में भी इसके कारण प्रगति हुई। गंगा घाटी से पश्चिमी मध्य भारत, दक्षिणी भारत तक व्यापार का प्रसार हुआ व्यापार पर राज्य का नियंत्रण था इसके साथ-2 व्यापार तथा वाणिज्य को अवरूद्ध करने वाले को कड़ी सदा

को प्रावधान कर व्यापार को बढ़ावा दिय गया। इस काल में सामाजिक, आर्थिक परिवर्तनों का प्रारंभा हुआ तथा बौद्ध धर्म का काफी प्रसार हुआ।

मौर्यकाल की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी पूरे भारत को एक सूत्र में बाधंना एवं एक संशक्त केन्द्रिय शासन व्यवस्था का प्रचलन जिसमें क षि, व्यापार एवं उद्योग पर राज्य का पूरा नियंत्रण था यद्यपि व्यापार एवं वाणिज्य में इस काल मे बहुत विकास हुआ परन्तु राज्य की आर्थिकता का मुख्य आधार क षि ही था।

मौर्य कालीन सामाजिक स्थिति
(Social Condition of The Mauryas)

मौर्य कालीन समाज एवं सामाजिक व्यवस्था को जानने के लिए हम कौटिल्य का अर्थशास्त्र, अशोक के अभिलेख तथा यूनानी राजदूत मैगस्थनीज क त इंडिका पर आश्रित है। इसके अतिरिक्त बौद्ध साहित्य में भी यदा कदा इस काल के संदर्भ में लिखी बातें मिल जाती है। परन्तु इस साहित्य में लिखी हुई बातों को हम पूर्णत्य सही नही मान सकते क्योंकि उस समय लिखने की कला का विकास नही हुआ था तथा इन ग्रन्थों का सग्लन बाद में हुआ। इसलिए इनमें लिक तिया होना स्वभाविक ही था।

वर्ण व्यवस्था :-

मौर्यकाल में समाज चार वर्गो में बंटा हुआ था। अशोक के अभिलेखों में अनेक वर्णो का जिक्र है। ब्राह्मणों का स्थान श्रमणों के साथ आदरपूर्ण था। त तीय शिलालेख में कहा गया है कि ब्राह्मणों और श्रमणों की सेवा करने उतम हैं वैश्य या ग हपति अधिकाशतः व्यापार गतिविधियों में सलिप्त थे। क्षत्रिय वर्ण का अभिलेखों में कही भी उल्लेख नही है। धर्मशास्त्रों के अनुसार कौटिलय ने भी चारों वर्णो के व्यवसाय निर्धारित किए। किन्तु शुद्ध को शिल्पाकार और सेवाव ति के अतिरिक्त क षि, पशुपालन और वाणिज्य से आजिविका चलाने की अनुमति थी। इन्हें सम्मिलित रूप में 'वार्ता' कहा गया है। निश्चित है इस व्यवस्था शुद्र के आर्थिक सुधार पर प्रभाव उसकी सामाजिक स्थिति पर ही प्रभाव पड़ा होगा। कौटिल्य द्वारा निर्धारित शूद्रों के व्यवसाय वास्तविकता के अधिक निकट हैं अर्थशास्त्र में कहा गया है कि आर्य अस्थाई वितियों के कारण दास के रूप में कार्य कर सकता है। या वह धन कमाने के विचार से भी ऐसा कर सकता है। इस स्थिति के कारण कुछ विद्वानों का मत है कि मौर्यकालीन वर्ण-व्यवस्था दास प्रथा पर निर्भर थी। इन संबधों के विस्त त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि दास प्रथा यूनानी गुलाम प्रथा से सर्वदा भिन्न थी। और इसी कारण मेगस्थनीण ने भारत में दास प्रथा न होने की बात कही है। समय के ब्राह्मणों का विशिष्ट स्थान था किंतु मनु तथा पूर्वगामी धर्मसूत्रों की भांति इस तथ्य को बार-बार दुहराने का प्रयास अर्थशास्त्र में नही किया गया है। ब्राह्मणादि चार वर्णो के अतिरिक्त कौटिल्य ने अनेक वर्णसंकर जातियों का भी उल्लेख किया है। इनकी उत्पति धर्मशास्त्रों की भांति विभिन्न वर्णो के अनुलोम और प्रतिलोम विवाहों में बताई गई है। जिन वर्णसंकर जातियों का उल्लेख है वे है अम्बष्ठ निषाद, पारशव, रथकार, क्षता, वेदेहक, मागध, सूत, पुतलकस, वेण, चांडाल, श्वपाक इत्यादि। इनमें से कुछ आदिवासी जातियां थी, जो निश्चित व्यवसाय से आजीविका चलाती थी। कौटिल्य ने चांड़ालों के अतिरिक्त अन्य सभी वर्णसंकर जातियों को शूद्ध माना है। इनके अतिरिक्त तंतुवाय (जुलाहे), रजक (धोबी), दर्जी, सुनार, लुहार, बढ़ई आदि व्यवसाय पर आधारित वर्ग, जाति का रूप धारण कर चूके थे। अर्थशास्त्र में इन सबका समावेश शूद्र वर्ण के अंतर्गत किया गया है। अशोक के शिलालेखों में दास और कर्मकर का उल्लेख है। जो शूद्र वर्ग के अंदर ही समविष्ट किए गए है। शूद्र वर्ण में दासों के प्रति अच्छा व्यवहार नही किया जाता था। इसलिए अशोक के अपने अभिलेखों में उनके प्रति अच्छा व्यवहार करने के आदेश देने पड़ते थे। अर्थशास्त्र में चारों वर्णो तथा उनके वर्णविहित कर्त्तव्यों का वर्णन है। मैगस्थनीण ने मौयकालीन समाज को सात वर्गो में बांटने का उल्लेख अपनी पुस्तक इंडिका में किया है। जिनमें (1) दार्शनिक (2) किसान (3) अहरी (4) कारीगर या शिल्पी (5) सैनिक (6) निरिक्षक (7) सभासद तथा अन्य शासक वर्ग। मैगस्थनीज ने लिखा है कि कोई भी व्यक्ति अपनी जाति के बाहर विाह नही कर सकता, न वह अपने व्यवसाय को दूसरी जाति के व्यवसाय ने बदल सकता, न वह अपने व्यवसाय को दूसरी जाति के व्यवसाय ने बदल सकता था। केवल ब्राह्मणों को ही अपनी विशेष स्थिति के कारण यह अधिकार प्राप्त था। इसे देखने से लगता है कि वह भारतीय वर्ण व्यवस्था से भलीभांति परिचित नही था। एक और तथ्य मैगस्थनीज की इस गलत बयानी पर आधारित है कि भारत में आकाल कभी नही पड़ा। सोगौड़ तथा महास्थान स्थित मौर्यकालीन शिला लेखों द्वारा हम जानते है कि यह कथन सत्य नही था आकालों से महान क्षति हुई थी और राज्यों आम जनता को राहत देने के कार्य में सक्रिय रूप

से संलग्न था। मैगस्थनीज ने कहा है कि भारत में कोई दास प्रथा नही थी। और एरियन तथा स्ट्रबो दोनों ने इसकी पुष्टि की है। इसके विपरीत बौद्ध साहित्य में तीन प्रकार के दासों का वर्णन मिलता है। ऐसे दास जो अपने पिता से उतराधिकार में दासता प्राप्त करते थे, ऐसे दास जो खरीदे जाते थे या उपहार में प्राप्त होते थे तथा ऐसे दास जो दासों जो दासों के घरों में जन्म लेते थे। अर्थशास्त्र में कहा गया है कि एक दास को डेढ़ पण प्रति महीना दिया जाता था। और उसे तथा उसके परिवार को भोजन दिया जाता था। इस प्रकार मौर्यकाल में घरेलू दास प्रथा प्रचलित थी, किन्तु दास प्रथा निश्चय ही मौर्यकालीन आर्थिक व्यवस्था का आधार नही थी। प्रथम अवस्था में वह सरल जीवन व्यतीत करता था। उसका जीवन ज्ञान उपदेशों के श्रमण एवं लोगों को विधादान में व्यतीत होता था। दूसरी अवस्था में वह विवाह करता था तथा सुखमय जीवन में प्रवेश करता था। इस वर्ग के लोग वनों में तपस्या करते थे और साधना का जीवन व्यतीत करते थे। श्रमणों के एक अन्य वर्ग में चिकित्सक आते थे जो निःशुल्क लोगों की बिमारियों का इलाज करते थे। समाज इसके बदले इस वर्ग का भरण पोषण करता था। ऐसा प्रतित होता है। कि मैगस्थनीज ने इस वर्ग का उल्लेख यूनानी समाज के आधार पर किया है तथा वह भारतीय संस्क ति से अधिक परिचित नही था।

इस काल में विभिन्न जातियों के अपने-अपने कार्य अधिकार अलग-अलग थे। अर्थशास्त्र के अतिरिक्त धर्मसूत्रों में भी इसका उल्लेख है। अर्थशास्त्र के अनुसार ब्राह्मण का काम अध्यापन, अध्ययन, यज्ञ, भजन, दान तथा प्रतिग्रह इत्यादि था। श्रत्रियों के कार्यो के अध्ययन, भजन, दान, शस्त्रजीव (शास्त्रों के आधार पर जीविका), मूल रक्षण अथवा लोगों की रक्षा करना था। वैश्यों के कार्यो में अध्ययन, भजन, दान, क षि, पशुपालन, वाणिज्य इत्यादि थे। जबकि शूद्रों के कार्यो में द्विजातिशुश्रुशा अथवा द्विज जातियों के कार्य करना, वार्ता (लोगों के धन की रक्षा करना), कारूकर्म (कलांए) तथा कुशीलवकर्म इत्यादि थे। अर्थशास्त्र से पता चलता है कि मनु के अनुसार ब्राह्मण सबसे सर्वोतम थे क्योंकि वे ज्ञानी थे। उन्हें ब्रहम ज्ञान था। उन्हें ही शिक्षक, पुजारी, न्यायधिक्ष, प्रधानमंत्री, धर्मपरिषद का सदस्य तथा न्याय सबंधी आयोग का सदस्य रखा जा सकता था। परन्तु आपातकाल में ब्राह्मणों को उनसे निचले वर्ग का काम भी करने का अधिकार था। ब्राह्मणों को किसी भी अपराध के लिए दण्ड दिया जा सकता था परन्तु म त्युदंड उनके लिए पूर्णतय् निषेध था।

शूद्रों का सरकारों का अधिकार नही था तााि न ही वे पवित्र ग्रन्थों को पढ़ व सुन सकते थे। शेष सामाजिक अधिकार उन्हें प्राप्त थे। कई ग्रन्थों में तो शूद्र शिक्षक एवं विद्यार्थी होने का भी वर्णन मिलता है। जिससे हमें शूद्रों के पढ़ने लिखने का पता चलता है। जातक कथाओं में शूद्रो के साथ चाण्डालों का भी वर्णन है जोकि शहर से बाहर निवास करते थे, जिनके दर्शन मात्र को ही अपशकुन माना जाता था।

बौद्ध तथा जैन साक्ष्यों में जाति प्रथा का चित्रण काफी भिन्न मिलता है। इनमें क्षत्रियों का स्थान प्रथम है। यद्यपि उन्हें ब्राह्मणों से कम श्रेष्ठ माना जाता था। बौद्ध साक्ष्यों के अनुसार इन जातियों के अतिरिक्त बहुत सी मिक्षित जातियां, अलग-अलग काम करने वाले लोगों की बन ुकी थी। परन्तु सामान्य धारणा के अनुसार ये जातियां अन्तरजातिय विवाहों के कारण पैदा हुई।

बौद्ध साहित्य के अनुसार इस काल में जाति का किसी काम से पूर्णतया सम्बन्ध नही था। इनमें एक क्षत्रिय के कुम्हार, टोकरी बनाने वाला, फूलों के हार बनाने तथा खाना बनाने वाले के रूप में वर्णन मिलता है। इसी तरह सेठ्ठी (वैश्य) का ऐक दर्जी तथा कुम्हार का काम करते बताया गया है। परन्तु फिर भी उनकी जाति की गरिमा को कोई नुकसान नही हुआ।

ब्राह्मण जातक में ब्राह्मणों को निम्नलिखित दस कार्य करते दर्शाया गया है। (1) चिकित्सक का काम (2) नौकर तथा कोचवान (3) कर इक्त्र करना (4) भूमि खोदने वाला (5) फल तथा मिठाईया बेचना (6) क षक (7) पूजारी जोकि शास्त्रों की व्याख्या करता था। (8) पुलिस का कार्य (9) शिकारी (10) माझिक के रूप में राजा के कार्य करने वाला। इसके अतिरिक्त वासेत्थ सुत्र में भी ब्राह्मणों को क षक, भूमिहार, यूत, दस्तकार, बलिहारी, दस्तकार के रूप में वर्णन किया गया है। इन सभी कार्यो के बाद भी एक ब्राह्मण किसान का बौद्धसत्व का स्वरूप माना है। जैन तथा बौद्ध ग्रन्थों में सामान्य ब्राह्मण किसान को बोद्धिसत्व का स्वरूप माना है। जैन तथा बौद्ध ग्रन्थों में सामान्य ब्राह्मणा को या तो एक साधारण नागरिक के रूप में समाज की सेवा करते या वापस अथवा ऋषि के रूप में जंगल के आश्रमों में रहने वाला बताय गया है।

इन चार जातियों के अतिरिक्त जाति साहित्य में बहुत सी हीन जातियों का वर्णन किया गया है। जो हीन कार्य करते थे। जिनमें छकड़े बनाने वाले, चटाई बनाने वाले, नाई, कुम्हार, बुनकार, चर्मकार इत्यादि थे। इनमें से कुछ को तो मतीभेद बताया गया

हैं जोकि आर्यो के सामाजिक व्यवस्था से बाहर थे। विन्यसुत्र विमंग में इनमें चाण्डाल, वेग निषाद, रथकर तथा पुक्कुस इत्यादि थे।

आश्रम व्यवस्था :-

इस काल में मनुष्य के जीवन को चार आश्रमों या अवस्थाओं में बांटा हुआ था। अर्थशास्त्र में भी इस प्रकार का वर्णन मिलता हैं जिस प्रकार वैदिक साहित्य का धर्मसूत्र भी इस तथ्य की पुष्टि करते है। प्रथम आश्रम ब्रह्मचार्य का है। जिसमें पठन-पाठन का कार्य किया जाता था। ब्रह्मचारी गुरू के घर या आश्रम में रह कर पठता था। ब्रह्मचारी दो प्रकार के थे (1) उपकुर्वाण, जोकि शिक्षापूर्ण होने के उपरान्त विवाह कर ग हस्थ हो सकता था। (2) नैष्यिक, जोकि पूरे जीवन विद्यार्थी रह कर ब्रह्मचार्य का पालन करता था।

दूसरा आश्रम ग हस्थ आश्रम था। जिसमें वैवाहिक जीवन व्यतीत किया जाता था। इस आश्रम में देवताओं के ऋण को यज्ञ द्वारा तथा पित ऋण को सन्तानोत्पति कर चुकाया जाता था। ऋषि ऋण ज्ञान तथा धार्मिक उत्सवों (पर्वन के दिनों में), धर्म कर्म के कार्यो एवं दान द्वारा चुकाया जाता था।

तीसरा आश्रम बाणप्रस्थ आश्रम जिसे बौद्ध साहित्य में भिक्षु कहा गया है। इसमें अनिश्चय (कुछ इक्कठा न करना) (2) ऊद्र्दद्यग्रेत (3) बरसात के दिनों में एक ही जगह निवास करना (4) गावों में जाकर भिक्षा मांगना (5) अपने लिए स्वंय वस्त्र बुनना (6) फूल-पते न तोड़ना तथा भोजन के लिए बीजों को खराब न करने के नियम थे। इस आश्रम में भिक्षु अपना भरण पोषण केवल भिक्षा में मिले भोजन पर ही करते थें

चौथा आश्रम सन्यास या परिव्रजक आश्रम था। जिसमें एक भिक्षु सभी ससंकारिक वस्तुओं को त्याग कर जंगल में प्रस्थान कर जाता था जहां वह जंगल में ही निवास कर वही के कंदमूल व फल खा कर अपना गुजारा करता था। परिव्रजक सत्य, असत्य, दुख-सुख वेदों को छोड़ कर आत्मन का ध्यान करता था। कौटिल्य के अनुसार सभी आश्रमों में अहिंसा, सत्य बोलना, शुद्धता, ईष्या न करना, दूसरों का सम्मान करना इत्यादि कार्य सम्मलित थे।

पारिवारिक जीवन :-
(Family Life)

इस काल के समाज में संयुक्त परिवार प्रणाली प्रचलित थी। पिता घर का मुखिया होता था तथा उसकी आज्ञा का पालन करना पुत्र का धर्म था। इस काल में हमें बहुत से ऐसे उदाहरण मिलते है जिससे परिवार के भिन्न-2 सदस्यों के बीच सौहदर्य पूर्ण सम्बन्ध थे। बड़ो के प्रति छोटों का आदर भाव था। पति-पत्नी, पत्नी तथा उसके सास-ससुर, भाई व बहनों के बीच स्नेहपूर्ण सम्बन्ध थे। इसके विपरीत ऐसे उदाहरण भी मिलते है कि सास या बहु एक दूसरे से तंग आ कर सन्यासिन बन जाती थी। एक स्थान पर तो बहु ने अपने आपकों मारने के लिए जाल बुना तथा एक अन्य स्थान पर चार बहुओं ने अपने ससुर को घर से निकाल दिया। एक अन्य स्थान पर एक पुत्र इसलिए शादी करने से मना कर रहा है कि पत्नियां सामान्यत् पति-पत्नी के संबध इस काल में सौहदर्य पूर्ण थे। यद्यपि मैगस्थनीज व जातक साहित्य ने पति-पत्नी के संबधों में सतांन प्राप्ति न होने का भी वर्णन किया है। सामान्यतः समाज में पुरूष एक ही विवाह करते थे। परन्तु बहुपत्नी विवाह का वर्णन भी इस काल में मिलता है। मैगस्थनीय ने लिखा है कि भारतीय पुरूष बहुत सी स्त्रियों से विवाह (बहु विवाह प्रथा) करते थे। ये विवाह कभी सध्धर्मीयता के लिए, कभी खुशी के लिए या संतान प्राप्ति के लिए विवाह किए जाते थे। जो पत्नी पति की जाति से ही संबध रखती थी उसकी घर में काफी प्रतिष्ठा होती थी तथा उसकी संतान को ही अपने पिता की सम्पति का कानूनी उतराधिकारी माना जाता था। बाकि पुत्रों को उनकी माता की जाति के अनुसार अधिकार मिलते थे। इस प्रकार हम देखते है कि इससे परिवार में शान्ति भंग होने तथा सामान्य सम्बन्धों में कड़वाहट होना स्वभाविक था। बहुपत्नि विवाहों से पत्नी पर अत्याचार होना तथा उसके पारिवारिक स्थिति में हीनता आना स्वाभाविचक था। बहुपत्नी विवाह इस काल में था या नही यह कह पाना कठिन है। विधवान ब हस्पति द्वारा उल्लेखित कुले कन्याप्रदान तथा महाभारत के दौपद्धि विवाह को इस काल का मानने से इस प्रथा के प्रचलन को मान्यता मिलती है। परन्तु इस बात पर संदेह है कि ये साक्ष्य इसी काल के है या नही।

विवाह तथा स्त्री की स्थिति :-
(Conditon of Women & Marriage)

इस काल में सामान्यतः विवाह अपनी ही जात में किया जाता था। यद्यपि अन्तरजातिय विवाहों के प्रचलन को उल्लेख भी है। एक ही जाति में भी विवाह पर कुछ प्रतिबंध थे जैसे कि एक ही गोत्र या प्रवर (सगोत्र) था सपिण्ड़ विवाह इत्यादि। धर्मसूत्रों के अनुसार इ काल में आठ प्रकार के विवाहों का प्रचलन था :-

1. ब्रह्या विवाह, जिसमें एक सुसंस्क त पुरूष से पिता अपनी कन्या (गहनों, रत्न, मणियां पहने) का विवाह करता था।
2. द्धैव विवाह जिसमें यज्ञ को करने वाले पुजारी से पिता अपनी कन्या का विवाह करता था।
3. आर्श विवाह, जिसमें वर स एक गाय या बैल प्राप्त कर पिता अपनी कन्या का विवाह वर से करता था।
4. प्राजापत्य विवाह, जिसमें पिता अपनी कन्या का विवाह मन्त्रोउच्चरण के बाद वर से करता था।
5. असुर विवाह, जिसमें वर पक्ष वाले वधु को तथा उसके परिजनो को धन देते थे।
6. गान्धर्व विवाह : इसमें पुरूष व स्त्री एक दूसरे की सहमती से प्रेम विवाह करते थे।
7. राक्षस विवाह : इसमें वर द्वारा कन्या का उसके पिता के घर से अपहरण करके उससे विवाह किया जाता था।
8. पैशाच विवाह : इसमें पुरूष कन्या से मद् अवस्था में होते हुए कन्या से विवाह करता था।

इनमें से ब्रहम, दैव, आर्श, प्राजापत्य तथा गान्धर्व इत्यादि विवाहों को विभिन्न साक्ष्यों में ठीक माना गया है। जबकि पैशाच विवाह कसे सभी साक्ष्यों ने बुरा माना है तथा राक्षस विवाह केवल क्षत्रियों में होना स्वीकारा गया है। मैगस्थानीय ने भी अपने वितरण में भारतीय विवाह में एक बैलों की जोड़ी कन्या पक्ष को देने की बात कही है। जोकि इस काल में आर्श प्रकार के विवाह के प्रचलन का द्योतक है। ऊपरलिखित विवाह प्रकारों में प्रथम चार को अधिकतर साक्ष्यों में ठीक माना है क्योंकि इनमें कन्या के माता-पिता वर की योग्यता के आधार पर अपनी पुत्री की शादी करते थे।

विवाह में दहेज प्रथा नही थी। यवन विधवान नियर्कस ने भी लिखा है कि भारतीय बिना दहेज के विवाह करते थे तथा युवती को विवाह योग्य होने पर उसका पिता विभिन्न समारोहों में जाता था जहां पर मल्ल युद्ध, मुक्केबाजी, दौड़ या अन्य कार्यो में विजयी पुरूष से कन्या का विवाह किया जाता था। यह स्वयवंर का ही एक सुधरा हुआ रूप प्रतीत होता है।

विवाह के लिए कन्या की आयु के बारे में भी इस काल में अलग-अलग मत है। सामान्यतः व्यस्क होने पर ही कन्या का विवाह किया जाता था। बौद्ध साहित्य इस साक्ष्य को प्रमाणित करते हैं परन्तु सूत्र साहित्य में लड़कियों को कम उम्र में शादी के प्रमाण मिलते हैं इस प्रकार हम देखते है कि इस काल में यद्यपि व्यस्क होने पर ही कन्या की शादी हआ करती थी परन्तु बाल-विवाह के भी प्रमाण मिलते है। यदि कोई पिता अपनी व्यस्क लड़की की शादी नही करता था तो यह उसके लिए एक पाप माना जाता था। साक्ष्यों के अनुसार इस अवस्था में कन्या स्वंय अपने लिए वर ढूढ़ सकती थी। यह इन्तजार तीन महीने से तीन साल हो सकता था।

यद्यपि बाल-विवाह एक सामान्य प्रथा नही थी। परन्तु फिर भी विवाह की आयु कम होने से स्त्रियों की सामान्य शिक्षा तथा संस्क ति पर बुरा प्रभाव पड़ा । दूसरी और उनकी कौमार्य पर अधिक जोर दिया जाने लगा तथा साथ ही अपने पति का बिना प्रश्न के आज्ञा पालन करना भी स्त्रियों की स्थिति में गिरावट के मुख्य कारणों में से एक थे।

स्त्री शिक्षा :-
(Women Education)

इस काल में हमें स्त्री शिक्षा के प्रमाण मिलते है। तथा वे अच्छी पढ़ी लिखी हुआ करती थी। स्त्रियां घर तथा समाज में प्रतिष्ठित स्थान रखती थी। इस काल में दो प्रकार की स्त्री विधार्थियों का वर्णन है। एक ब्रह्यवादिनी जो कि जीवनपर्यन्त ग्रन्थों का अध्ययन करती थी। दूसरी सध्योद्धाहा (Sadyodvaha) जोकि विवाह होने तक शिक्षा ग्रहण करती थी। पणिवी इस काल में शिक्षक उपध्याया तथा उपाध्यायी का वर्ण करता हैं बौद्ध तथा जैन साक्ष्य की ब्रह्यवादिनी, से सम्बन्धित शिक्षित बौद्ध भिक्षुणियां जिनकी क तियां थेरी गाथा में संकलित है। इसी प्रकार जैन साहित्य में जयंन्ती नामक स्त्री का वर्णन है। जिसने स्वंय दर्शनशास्त्र में भगवान महावीर से वाद-विवाद किया था।

इस काल में स्त्रियों को पढ़ाई के अतिरिक्त, संगीत, न त्य तथा चित्रकला में भी निपुणता प्रदान की जाती थी। कुछ स्त्रियां सैन्य कला की शिक्षा की प्राप्त करती थी। साहित्य में शाक्तीवी का वर्णन इसे सिद्ध करता है। मैस्थनीण के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य के अंगरक्षक स्त्रियां ही थी। जब वह शिकार पर जाता था तो कुछ स्त्रिंया रथ पर कुछ छोड़ों व हाथियों पर भी साथ जाती थी तथा वे अस्त्रशस्त्रों से इस प्रकार लैसं होती थी कि मानों वे युद्ध करने जा रही हो। कौटिल्य भी स्त्री अंगरक्षकों के होने का प्रमाण देता है।

इस काल में लड़कों की तरह लड़कियों का भी उपनयन संस्कार हुआ करता था। विवाह योग्य कन्या की कौमार्य पर अधिक बन देने से धीरे-धीरे विधवा विवाह पर असर पड़ने लगा। यद्यपि अर्थशास्त्र तथा धर्मसूत्रों में विधवा या स्त्री का पुनः विवाह के प्रमाण है। पुनः विवाह के लिए कुछ नियम स्थापित किए गए थे। जैसे पुनः विवाह वही स्त्रियां ही कर सकती थी जिसका पति या तो मर चुका हो, साधु बन गया हो, पति विदेश में बस गया हो, या काफी वर्षो से वापिस न आया हो। इसके अतिरिक्त स्त्री अपने पति के जीवित रहते भी पुनः विवाह कर सकती थी। जैसे कि पति का नंपुसक हो जाना या जाति से बाहर निकाल दिया गया हो।

परिवार में स्त्रियों की स्थिति स्म तिकाल की अपेक्षा अब अधिक सुरक्षित थी। किन्तु फिर भी मौर्यकाल में स्त्रियों की स्थिति को अधिक उन्नत नही कहा जा सकता। उन्हें बाहर जाने की स्वंतंत्रता नही थी। संभ्रात घर की स्त्रियां प्रायः घर के ही अंदर रहती थी। कौटिल्य ने ऐसी स्त्रियों को 'अनिष्कासिनी' कहा है।

विवाह विच्छेद : -
(Divorce)

इस काल में विवाह विच्छेद होने के भी प्रमाण है। अर्थशास्त्र के अनुसार यदि पति दुराचारी हो, विदेश चला गया हो, राजा से विद्रोह कर दिया हो, पति से पत्नी को जान का खतरा हो तो पत्नी पति से तलाक ले सकती थी। पति-पत्नी अपनी अपसी सहमति से भी तलाक ले सकते थे। इस प्रकार हम देखते है कि इस आधार पर स्त्री और पुरूष दोनों को समान अधिकार प्राप्त थे।

सती प्रथा :-
(Sati)

कौटिल्य के अर्थशास्त्र से सती प्रथा के प्रचलित होने का कोई प्रमाण नही मिलता। इस समय के धर्मशास्त्र इस प्रथा के विरूद्ध थे। बौद्ध तथा जैन अनुश्रुतियों में भी इसका उल्लेख नही है किन्तु यूनानी लेखकों ने उतर-पश्चिम में सैनिकों की स्त्रियों के सती होने का उल्लेख किया है। यौद्धा वर्ग की स्त्रियों में सती की वह प्रथा प्रचलित रही होगी। जोकि कभी-कभी सवैन्धिक हुआ करती था कभी-कभी विधवा को उसके पति की चिता के साथ जबरदस्ती जला दिया जाता था। यूनानी इतिहासकारों ने लिखा है कि 316 ई.पूर्व बुद्ध में जब एक भारतीय सेनापति वीरगति को प्राप्त हो गया तो उसकी विधवा उसके साथ सती हो गई।

गणिकाएं :-

किसी भी काल में स्त्री दशा का विवरण जब तक पूरा नही होता जब तक वेश्याव ति का वर्णन न करें। इस काल में भी इस प्रकार की स्त्रियों थी। स्वतंत्र रूप से वेश्याव ति करने वाली स्त्रियां 'रूपा जीवा' कहलाती थी। इनके कार्यो का निरिक्षण गणिकाध्यक्ष तथा एक राजपुरूष करता था। बौद्ध साक्ष्यों से हमें वैशाली की नगरवधुवों का वर्णन मिलता है। जिनके पास राजा, राजकुमार तथा अन्य अमीर लोग जाया करते थे। गणिकाओं को प्रमाण में प्रतिष्ठित स्थान की प्राप्ति थी। आम्रपाली को तो स्त्री रत्न तक की उपाधि मिली हुई थी। गणिकाएं अपनी आय का एक भाग राज्य को कर के रूप में देती थी। राज्य की और से उनके अधिकर भी सुरक्षित थे तथा उनेस दूर्व्यवाहर करने वालों को जुर्माना किया जाता था। कई वेश्याओं को तो जासूस के रूप में रखा जाता था। सुन्दरता, आयु, गुणों के आधार पर उनकी आय 1000 पण प्रति वर्ष हो सकती थी। वेश्याएं राजदरबार में भी जाती थी।

इसके अतिरिक्त स्त्रियों को गणिकाओं के रूप में, चमरधारी, दाता धारण करने के लिए , स्वर्ण कुम्भ उठाने के लिए, पंखा करने के अतिरिक्त रसोई, स्नानग्रह तथा राजा के हरम में भी नियुक्ति की जाती थी।

दास प्रथा :-
(Slavery)

यह प्रथा तो भारत में वैदिक काल से ही प्रचलित थी तथा इस काल में भी यह प्रचलन में थी। इसके बारे में यूनानी लेखक अलग-अलग विवरण देते है। अशोक के अभिलेखों में भी दास सेवकों, भ त्यों और अन्य प्रकार के श्रम जीविकों का उल्लेख है अर्थशास्त्र में तो दास प्रकार का विवरण काफी मात्रा में दिया है। ये दास प्रायः अनार्य हुआ करते थे। तथा खरीदे-बचे जा सकते थे। कभी-कभी तो आर्थिक संकट में कुछ लोग स्वंय को भी दास के रूप में बेच सकते थे। परन्तु उनकी संतान आर्य ही कहलाती थी। दासों के साथ इस समय अच्छा व्यवहार किया जाता था। यदि कारण है कि मैस्थनपीण इस प्रथा के प्रचलन के होने की पहचान नही सका। उसके अनुसार सभी भारतीय स्वतंत्र थे। उसका कहना है कि भारतीय विदेशीयों को दास नहीं बनाते थे। इस काल में दासों को अपनी व अपने माता-पिता की सम्पति पर अधिकार था। दास अपने मुल्य अदा कर अपनी स्वतंत्रता खरीद भी सकते थे।

खान पान :-
(Cousns)

इस काल में मांस खाने की काफी प्रव ति थी। स्वंय अशोक के अभिलेखों से पता चलता है कि उनक रंघनागार के लिए प्रतिदिन सैकड़ों पशुओं का वध किया जाता था। इसके अतिरिक्त अर्थशास्त्र में मांस बेचने वालों तथा पका मांस बेचने वालों का उल्लेख हें इसके अतिरिक्त पका चावल बेचने वालों का भी उल्लेख है। जो हमें बताता है कि लोग भोजन में अन्य चीजों के अतिरिक्त चावल भी खाते थे। बौद्ध तथा जैन साहित्यों से हमें चावल, फलियां, तिल, शहद, फल, मच्छली, मीट, मक्खन, घी, जड़ीबूटी आदि के साथ मांस में गोमांस इत्यादि का भी लोगों द्वारा खाने का वर्णन है। अर्थशास्त्र के अनुसार सरकार का यह कर्तव्य था कि वह जंगलों के पशु-पक्षियों के लिए तथा बूचड़ खानों की भी सुरक्षा करें।

मैगस्थनीज ने उस समय के खान पान पर लिखा है कि जब भारतीय खाने के लिए बैठते थे तो प्रत्येक के सामने एक तिपाई रखी जाती थी। जिस पर बर्तन में सबसे पहले उसमें चावल डाले जाते थे उसके उपरान्त अनेक पकवान परोसे जाते थे। पेय पदार्थो का इस काल में काफी विवरण मिलता है। अंगूर का रस, शहद विभिन्न फलो जैसें आम, जामून, केले तथा जड़ी बूटियों के पेय पदार्थ बनाए जाते थे। फूलों वाले पेय पदार्थ भी बहुत पसन्द किए जाते थे।

मदिरा पान :-
(Toxication)

इस काल में मदिरा पान का काफी प्रचलन था। मैगस्थनीज के अनुसार विशेष पदाधिकारियों के अतिरिक्त साधारण लोग मदिरा पान नही करते थे। उनका प्रयोग यज्ञ के अवसरों पर अधिक होता था। राजा तो इसका सेवन करते थे जिसका प्रमाण हमें बिन्दुसार के यूनानी दूत से यूनानी दार्शनिक एवम् यूनानी मदिरा की मांग करने से लगता है। अर्थशास्त्र में हमें मदिरा बनाने तथा उसके नियमों राज्य के इस उद्योग पर नियंत्रण को दर्शाते है। परन्तु प्रत्येक व्यक्ति का मदिरा एक निश्चित मात्रा में ही मिल सकती थी। तथा राज्य इसे एक दुर्ण्यसन मानता था। अर्थशास्त्र के अनुसार श्रत्रियों में मदिरा पान सामान्य था। ब्राह्यमणों को इसका सेवन निर्षिद था।

आमोद प्रमोद :-
(Fun & Floric)

इस काल में लोगों के आमोद प्रमोद का विवरण साहित्य तथा अभिलेखों से तथा विदेशी विवरणों से मिलता है। मैगस्थनीज ने विवाहों का वर्णन करते हुए लिखा है कि पिता कन्या का विवाह उससे करता था जो मतल युद्ध, मुक्केबाजी, दौड़ तथा अन्य क्रिडाओं में विजय प्राप्त करता था। यूनानी लेखकों ने मनुष्यों, हाथियों तथा अन्य पशुओं की लडाइयों से लोगों के मनोरंजन का वर्णन किया है। अर्थशास्त्र से पता चलता है कि साधारण जनता में तमाशे व प्रेक्षाएं लोकप्रिय थी। नर नर्तक, गायक, वादक मदारी, बाजीगर अलग-अलग बोलियां निकालने वाले लोगों का मनोरंजन करते थे। राज्य से इन्हें अनुमति लेनी पड़ती थी। अशोक के अभिलेखों से विहार यात्राओं का वर्णन मिलता है जहां राजा शिकार करते थे। मैगस्थनीय भी राजा के शिकार पर जाने का विस्तारपूर्वक वर्णन करता है।

वेशभूषा एवं गहने :-
(Attire & Jewellary)

इस काल के साहित्य, मूर्तिकला तथा विदेशियों के विवरण से हमें भारतीयों की वेशभूषा एवं गहनों का पता चलता है। नियरकस के अनुसार भारतीय दो सूती वस्त्र पहनते थे। एक नीचे पहनने का जो घूटनों से नीचे तक जाता था दूसरा कन्धों पर यह धोती तथा चद्दर ओठने का द्योतक है। आम लोग तथा स्त्रियां भी पगड़ी पहना करती थी जबकि राजा मुकुट धारण करते थे। साधु व सन्यासी घास-फूस को वस्त्रों के रूप में प्रयोग करते थे। यद्यपि सूती वस्त्रों का प्रचलन था। परन्तु रेशमी, ऊनी वस्त्रों का भी प्रयोग अमीर लोग करते थे। भारहुत एवं सांची की मूर्तिकला से हमें गहनों के प्रयोग का पता चलता है। दोनों पुरूष और स्त्रियां गहने पहनते थे। जोकि हार कुण्डल, अंगूठियां कमरबन्ध इत्यादि थे।

यद्यपि मूर्तियों इत्यादि से हमें स्त्रियों के पर्दा करने के कोई प्रभाव नही है। परन्तु अभिजात वर्ग की स्त्रियां सभाओं में एक विशेष प्रकार का पर्दा का प्रयोग करती थी। बौद्ध साहित्य में पर्दा प्रथा का वर्णन नही मिलता है। मैगस्थनीज का कथन है कि भारतीय लोगों का सोने से लगाव था। उनके कपड़ों पर सोने से कढाई की होती थी।

केश श्रंगार, कंघी करने, तेल, सुंगधित चीजों का प्रयोग लोग करते थे। तथा अन्य सौदंर्य प्रसाधनों का प्रयोग भी होता था। ब्राह्मण सिर मुण्डवाकर चोटी रखते थे तथा साधु लम्बी दाड़ी रखते थे नाखुन रंगने का रिवाज इस काल में था।

मौर्य कालीन अर्थव्यवस्था
(Economic Conditon of the Mauryas)

कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा मैगस्थनीज की इण्डिका से ज्ञात होता है कि क षि, पशुपालन तथा व्यापार एवम् वाणिज्य मौयकालीन अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार थे। इस काल में तीव्रगति से आर्थिक विकास हुआ, और एक प्रभावशाली व्यापारी वर्ग का उदय हुआ जिसने अपनी श्रेणियाँ (संगठन) बनाकर समाजिक व्यवस्था को प्रभावित किया। यह नया समाजिक वर्ग मुख्य रूप से नए विकसित हो रहे शहरों में रहने लगा। क षि अर्थव्यवस्था, हस्तशिल्प उत्पादन और वाणिज्यिक गतिविधियों के विकास के कारण इस काल में निम्नलिखित परिवर्तन हुए ' तकनीक का विकास, मुद्रा का चलन और नगरीय केन्द्रो का तेजी से विकास हुआ। इस काल की भौतिक और सामाजिक विशेषताओं को समझने के लिए क षि, पशुपालन, शिल्प-उद्योग और वाणिज्यिक गतिविधियों के बारे में जानना जरूरी है।

क षि :-
(Agriculture)

मौर्यकालिन अर्थव्यवस्था की बुनियाद क षि पर टिकी थी अर्थशास्त्र में स्थायी बस्तियाँ बसाने पर जोर दिया गया है ताकि क षि अर्थव्यवस्था का विस्तार हो सके। इन बस्तियों से भूमि कर की प्राप्ति होती थी और ये राजकीय आय का स्थायी स्त्रोत था। राम शरण शर्मा के अनुसार इस काल में गंगा के मैदान के अधिकांश इलाकों में खेती की जाने लगी और इसके साथ-साथ दूरस्थ इलकों में भी क षीय अर्थव्यवस्था स्थापित करने का प्रयास किया जाने लगा। क षि के विकास से किसान का महत्व धीरे-2 बढ़ने लगा। यूनानी लेखक मैगस्थनीज अपने विवरण में लिखता है कि मौर्यकालीन समाज सात भागों में विभक्त था। इसमें प्रथम दार्शनिक और द्वितीय स्थान पर किसान था। हांलाकि उसका समाज का विभाजन संबधी द ष्टिकोण पूर्ण उचित नही है, लेकिन यह महत्पूर्ण बात है कि क षि में लगे किसानों की बड़ी संख्या ने उसका ध्यान आक ष्ट किया उसके अनुसार यहाँ की भूमि उपजाऊ थी और किसानों को हानि नही पहुँचाई जाती थी, लेकिन इस कथन पर विश्वास करना कठिन है। क्योंकि कांलिग युद्ध मरने वालो की संख्या 1,50,000 बतायी गयी है, जिनमें काफी क षक भी शामिल होगें। किसी भी मौर्यकालीन स्त्रोत में किसान को भूमि का मालिक नही बताया गया है।

क षि विकास की सफलता का महत्वपूर्ण कारण था राज्य द्वारा सिंचाई सुविधा प्रदान करना। क षकों की भलाई के लिए जल-आपूर्ति संबधी कुछ नियम बनाए गए थे। मेगस्थनीज के अनुसार जमीन मापने और खेत में पानी पहुँचाने वाली नालियों का निरीक्षण करने के लिए अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी। राज्य द्वारा कम वर्षा वाले क्षेत्रों में सिचांई सुविधा के लिए तालाब, कुएँ और बांध इत्यादि का निर्माण किया जाता था, जिन्हें सेतुबन्ध कहते थे। चन्द्रगुप्त मौर्य के एक राज्यपाल पुष्यगुप्त

ने गिरनार के निकट सौराष्ट्र में एक बांध का निर्माण करवाया था, जिससे एक विशाल झील का निर्माण हुआ, जो सुदर्शन झील के नाम से जानी जाती है। यह झील पाँचवी श०ई० तक सिचांई का साधन बनी रही। मौर्य शासकों द्वारा लागू की गयी सिचांई परियोजनाओं से राज्य को एक निश्चित आय प्राप्त होने लगी। राज्य की आमदनी का स्थायी और अनिवार्य स्त्रोत भू-राजस्व प्रणाली को व्यवस्थित किया गया।

अर्थशास्त्र में ऐसी भूमि की चर्चा है जिन पर राज्य अथवा राजा का सीधा नियंत्रण था। इसके अतिरिक्त जमीन की बिक्री का भी जिक्र है जिससे पता चलता है कि व्यक्ति का जमीन पर पुश्तैनी अधिकार था लेकिन किसी भी स्त्रोत में इन्हें भूमि का मालिक नही माना गया है। उर्वरता की द ष्टि से भूमि का वर्गीकरण किया जाता था। इसी आधार पर राजस्व की दर उपज के ¼ भाग से ½ भाग तक रखी जाती थी। भू-राजस्व निर्धारण और करों का सारा रिकार्ड रखने के लिए अलग विभाग था, जिसका अध्यक्ष समहर्ता कहलाता था। कोषाध्यक्ष सत्रिधाता के नमा से जाना जाता था। चूंकि राजस्व वस्तु के रूप में भी प्राप्त किया जाता था। अतः इस प्रकार की आय को सग्रंहित करना सत्रिघाता का ही कार्य था। यूनानी विवरणां के अनुसार, किसान कर के रूप में कुल उपज का ¼ भाग राज्य को देते थे। भूमि कर (भाग) राजस्व का मुख्य आधार था, जो कुछ उपज का 1/6 भाग था। लेकिन मौर्यकाल में यह ¼ था। इनके अनुसार किसान सामूहिक रूप में होता था, जिसमें कई गाँव शामिल होते थें किसानों को इनके अतिरिक्त सिचांई कर और बलि कर भी देना पड़ता था। बलि कर वैदिक काल से चला आ रहा था लेकिन मौर्यकाल में इसका स्वरूप कैसा था यह स्पष्ट नही है। इसके अतिरिक्त गाँव को उनके क्षेत्र से गुजरती हुई राजकीय सेना के लिए खाद्य सामग्री का प्रबन्ध करना पड़ता था। अर्थशास्त्र में आपात स्थिति के दौरान लागू किए जाने वालें करों का भी उल्लेख है जिनमें प्रमुख है युद्ध कर जिसे प्रणय कहा जाता है। इसका शहिदक अर्थ है प्रेम से दिया गया उपहार, यह उपज का 1/3 या ¼ भाग होता था। आपातकाल में किसानों को दो फसल उगाने के लिए बाध्य किया जा सकता था। इस बात पर जोर दिया गया है कि अकाल के दौनान इस प्रकार का कदम उठाना जरूरी होता था, क्योंकि इस दौनान करों की वसूली काफी कम हो जाती होगी। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में भू-राजस्व व्यवस्था की विस्त त विवेचना की है, क्योंकि भू-राजस्व मौर्यकाल की अर्थव्यवस्था का आधार थी। अर्थशास्त्र में भूमि की उर्वरता के आधार पर विभिन्न गांवों में अलग-2 राजस्व की दरें निर्धारित की गयी है। आर्थिक कार्यकलापों पर सरकारी नियंत्रण इस व्यवस्था की विशेषता थी, जैसे राजस्व एकत्रित करने वाले अधिकारियों पर राज्य का नियंत्रण था। इससे पूरे राज्य करने वाले अधिकारियों पर राज्य का निंयत्रण था। इससे पूरे राज्य में एक स्थायी कर प्रणाली स्थापित की जा सकी। राज्य को जो भू-राजस्व प्राप्त होता था उससे साम्राज्य की वितिय जरूरते, सरकारी तंत्र की नींव रखी जा सकी।

क षि अर्थव्यवस्था ने मौर्य साम्राज्य को एक शक्तिशाली आर्थिक आधार प्रदान किया, जिसे व्यापारिक अर्थव्यवस्था ने और द ढ़ बना दिया। इस काल का विकसित व्यापार लम्बे आर्थिक परिवर्तनों का एक हिस्सा था जिसकी शुरूआत इस काल से पूर्व हो चुकी थी। इस शुरूआत का आधार था-नई धातुओं की खोज, उन्हें गलाने और शुद्ध करने की तकनीक तथा लोहे के औजार। मौर्य काल में उतरी भारत में अनेक नगरों का विकास हुआ, नई बस्तियों के विस्तार से लोगों का आवागमन बढ़ा , जिससे व्यापार में व द्धि हुई। व्यापार के अनेक तरीके प्रचलित थे। जो उत्पादन के तरीके और इसके संगठन से जुड़ा हुआ था। हस्तशिल्प उद्योग या कारीगर उत्पादन उद्योग श्रेणियों के रूप में संगठित हो गए थे। लेकिन इस काल में शिल्पियों की संख्या में व द्धि हुई। प्रत्येक श्रेणी नगर के एक भाग में बसी हुई थी जिसके सदस्य परस्पर साथ रहकर कार्य करते ाि। हस्तशिल्प उद्योग अधिकाशंतया वशांनुगत होता था। श्रेणियां राज्य के नियंत्रण में काम करती थी और इन्हें सरकार से लाइसेंस लेना पड़ता था। श्रेणियां इस काल में काफी शक्तिशाली हो गई थी और इनकी सामाजिक प्रतिष्ठा में भी काफी व द्धि हुई।

मैगस्थनीज ने भी श्रेणियो की गणना सात भारतीय जाति में की है। विभिन्न प्रकार के धातुकर्मी, बुनकर, बढ़ई, चर्मकर, कुम्भकार और चित्रकार आदि इस काल की प्रमुख श्रेणियाँ थी इस काल में गंगा घाटी में पाए गए उतरी काली चमकदार पालिश किए म दभाण्ड विशिष्टीकरण हस्तशिल्प के उतम नमूने है। शिल्पकार या दस्तकार पीढ़ी-दर-पीढ़ी एक ही शिल्प से जुड़े होने के कारण अपनी दस्तकारी कार्य में उद्योग का रूप धारण कर लिया था। शिल्पियों के समान व्यापारी भी श्रेणियों में विभक्त थे। खनन एवम् खनिज पदार्थो के व्यापार पर राज्य का एकाधिकार था, यानि कच्चा माल राज्य के नियत्रंण में था। इनके समुचित उपयोग से क षि का विकास और उत्पादन में व द्धि हुई जिससे राज्य सुद ढ़ हुआ। नई खानों का पता लगाने और उनकी व्यवस्था करने के लिए एक खान अध्यक्ष (आकाराध्यक्ष) होता था। नमक खनन के क्षेत्र पर भी राज्य का एकाधिकार था। विभिन्न प्रकार

की धातुओं का प्रयोग सिक्कें ढ़ालने के लिए ही नही बल्कि उनके अस्त्र-शस्त्र तथा भी बनाए जाते थे। लोहे के अस्त्र-शस्त्र तथा औजार बनाने वालों पर नियुक्त लोह अधीक्षक (लोहाध्यक्ष) कहलाता था।

मौर्यकालीन सर्वाधिक विकसित उद्योग सूती वस्त्र उद्योग था। अर्थशास्त्र में जिक्र है कि काशी, मगध, वंग (पूर्वी बंगाल) पुंड्रू (पश्चिमी बंगाल), कलिंग और मालवा सूती वस्त्रों के विख्यात केन्द्र थे। बंगाल मलमल के लिए विश्वविख्यात केन्द्र था। सूती वस्त्र भंडौच बन्दरगाह से पश्चिमी देशें को निर्यात किया जाता था। मेगस्थनीज ने भारतीय वस्त्रों की काफी प्रशंसा की है। इस काल में काशी और पुन्ड्रू में रेशमी वस्त्र बनते थे। संभवतः रेशम और रेशमी वस्त्र चीने से आयात किए जाते थे। वस्त्रों पर सोने की कढ़ाई और कशीदाकारी भी की जाती थी। अर्थशास्त्र में विभिन्न धातुओं के आभूषण बनाने वाले, बर्तन, अस्त्र-शस्त्र लकड़ी का कार्य, पत्थर तराशने का व्यवसाय, मणिकारी, शराब बनाना और क षि उपकरण तैयार करने वाले विभिन्न व्यवसायों का उल्लेख किया गया है।

मौर्य शासकों द्वारा व्यापारिक मार्गो पर सुरक्षा व्यवस्था लागू किए जाने के कारण व्यापारिक गतिविधियों को विशेष प्रोत्साहन मिला। व्यापारी वर्ग का सुरक्षा प्रदान करने के लिए विभिन्न नियम भी बनाए गए। इस काल के प्रमुख व्यापारिक केन्द्र नदी के किनारे स्थित थे, इनमें मुख्य थे कौशांबी, वाराणसी, वैशाली, राजग ह और चम्पा आदि। इनमें से ज्यादातर नगर स्थल मार्ग द्वारा भी एक-दूसरे से जुड़े हुए थे। राजमार्गो ने व्यापार के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया प्रमुख मार्ग निम्न थे।

पहला प्रमुख राजमार्ग पाटलीपुत्र से तक्षशिला तक बना था। यह मार्ग वाराणसी, कोशांबी, और मथुरा होते हुए तक्षशिला पहुँचती थी, जो 1300 मील लम्बा था। पाटली पुत्र से पूर्व की तरफ यह मार्ग ताम्रलिप्ति तक जाता था। यह मार्ग आजा ग्रांड ट्रंक रोड के नाम से जाना जाता था। उतरी पथ मार्ग वैशाली होता हुआ श्रावस्ती और कपिलवस्तु तक जाता था। कपिलवस्तु से यह पेशावर तक जाता था। दक्षिणा पथ मार्ग कोशांबी से मथुरा, विदिशा और उज्जैन होते हुए भंडौच बन्दरगाह तक जाता था। यह मार्ग आगे नर्मदा के दक्षिण-पश्चिम तक जाता था। यह मार्ग दक्षिणी मार्ग के नाम से जाना जाता था। यहाँ से भारतीय वस्तुएँ पश्चिमी देशों को भेजी जाती थी। दक्षिण-पूर्वी मार्ग पाटलीपुत्र से श्रावस्ती से गुजरता हुआ गोदावरी नदी के तटीय नगर प्रतिष्ठान तक जाता था। वहां से कलिंग होता हुआ दक्षिण की ओर मुड़कर आन्ध्र और कर्नाटक तक जाता था। पश्चिम-एशिया के देशों की ओर जाने वाला मार्ग तक्षशिला से गुजरता था। स्थल मार्ग के अतिरिक्त समुद्री मार्ग से भी व्यापारिक गतिविधियों होती थी। दक्षिणापथ के पूर्वी तट पर ताम्रलिटित में सबसे महत्वपूर्ण बन्दरगाह था। जहां से गंगा और यमुना के मैदान की वस्तुएँ पूर्वी देशों को जाती थी। जहाज श्रीलंका से होते हुए पूर्वी देशों को जाते थे। पश्चिमी तट पर भडौंच बन्दरगाह से सोपारा होते हुए जहाज पश्चिमी देशों को जाते थे। रेशमी वस्त्र और रेशम के धागे स्थल मार्ग द्वारा चीन से बैक्ट्रिया और वहां से भंडोच बन्दरगाह से कोरोमंडल तट पर लाए जाते थे।

मौर्य शासकों का सभी मार्गो पर पूर्ण नियंत्रण होने के कारण व्यापारिक मार्ग सुरक्षित थे। दक्षिणी मार्ग व्यापारिक गतिविधियों से अधिक लाभदायक थे जबकि उतरीपथ मार्ग को व्यापारी सुरक्षित मार्ग होने के कारण ज्यादा पंसद करते थे। आन्तरिक व्यापर उतरी क्षेत्रों से कम्बल, खाल और घोडे दक्षिण को निर्यात होते थे, दक्षिण से हीरे, मोती, शंख, सोना और कीमती पत्थर आते थे। सुगम व्यापारिक मार्गो के कारण आन्तरिक व्यापार भी उन्नत अवस्था में था। जबकि दूसरे देशों के साथ स्थल और समुद्री दोनों मार्ग से व्यापार होता था। स्थल मार्ग तक्षशिला से गुजरता हुए पश्चिमी देशों को जाता था, जबकि समुद्री मार्ग तहत पश्चिमी समुद्र तट से जहाज फारस की खाड़ी होते हुए आदेन तट जाते थे। मिस्र और चीन से भी भारतीय व्यापरियों के व्यापरिक संबध थे। भारतीय व्यापरियों द्वारा इन देशों को काली मिर्च, दाल चीन, मसालों, हीरे, मोती, सूती वस्त्र, हाथी दांत की वस्तुएं, कीमती पत्थर, मोर और तोते आदि वस्तुएं निर्यात की जाती थी। चीन से रेशम तथा रेशमी वस्त्र आयात किए जाते थे। मिस्र से घोड़े, लोहा और शिलाजीत आयात किए जाते थे। इनके अतिरिक्त शीशे के बर्तन तथा टीन, तांबा और सीसा भी विदेशों से मगवाँए जाते थे। विदेशी व्यापार के कारण तक्षशिला, मथुरा, कौशाम्बी, वाराणसी, पाटलीपुत्र, वैशाली, उज्जयिनी, प्रतिष्ठान, काशी और मथुरा नगरों के व्यापारी बहुत धनी हो गए थे।

मौर्यकालीन शहरी अर्थव्यवस्था का अन्य महत्वपूर्ण पहलू यह था कि व्यापरिक विकास से मुद्रा का चलान बढ़ा और लेने-देन मुद्रा में होने लगा। सम्पूर्ण मुद्रा प्रणाली पर राज्य का पूरा नियंत्रण था। अर्थशास्त्र में मुद्रा के बढ़ते महत्व को दर्शाया गया है। संभवतः इस काल में अधिकारियों को वेतन भी नकदी के तौर पर दिया जाता था। अर्थशास्त्र में उल्लेख है कि 48000

पण और 60,000 पण के बीच वार्षिक वेतन देने का प्रावधान था। अर्थशास्त्र से यह भी ज्ञात होता है सिक्के ढालने के लिए सरकारी साल थी और अधिकारी उसका निरिक्षण करते थे। कौटिल्य ने चांदी और तांबे के विभिन्न प्रकार के सिक्कों का उल्लेख किया है। चांदी के सिक्के चार प्रकार के थे-पण, अर्द्धपण, पाद और अष्टभाग। माशक, अर्धमाशक, काकणी और अर्धकाकणी तांबे के सिक्के थे। इस शक्तिशाली नकदी अर्थव्यवस्था को सुचारू ढंग से चलाने के लिए सिक्कों की ढ़लाई और चांदी तथा तांबे जैसी धातुओं का महत्व बढ़ गया होगा। इस काल के चांदी के पंच मार्क्ड (आहत सिक्के) सिक्के इस बात के प्रमाण है कि मौर्य शासकों में मुद्रा प्रणाली को सुव्यवस्थित रूप से लागू किया। आहत सिक्के मुख्य रूप से उतरप्रदेश और बिहार के क्षत्र में पाए गए है, जो मौर्य साम्राज्य का केन्द्रीय स्थल था।

अध्याय-3
Agrariam Empires
b.गुप्त साम्राज्य
(The Guptas)

गुप्त साम्राज्य
(Gupta Empire)

प्रारम्भिक गुप्त राजाओं ने जिस स्थान से अपना राजनैतिक जीवन का प्रारम्भ किया इस का ठीक-ठीक पता हमें नही है। एलन का विचार है कि उनका उदय पाटली पुत्र के आस पास हुआ जबकि डी.सी. गांगुली न चीनी यात्री इतिसिंग के साक्षयों के आधार पर उन्हें बंगाल के मुर्शीदाबाद से सम्बन्धित माना है, पुराणो के अनुसार प्रारम्भिक गुप्त राजाओं का राज्य गंगा के आस पास को क्षेत्र (अनुनंगा) प्रयाग, मगध इत्यादि था इसके आधार पर अधिकतर विद्यवान पूर्वी उत्तर प्रदेश के क्षेत्र को गुप्त राजाओं का आदि स्थान मानते है।

गुप्त वंश का प्रथम शासक श्री गुप्त था जबकि कुछ विद्यवान इसे गुप्त मानते हैं उनके अनुसार श्री आदर सूचक ही है। उनके पश्चात् उनका पुत्र घटोत्कच राजा बना ये दोनों किसी अन्य शक्ति के आधीन राजा थे राखल दास बैनर्जी काशी प्रसाद जयसवाल, यट्टोपाध्याय, एस के मैटी इत्यादि विद्यवानों का मत है कि ये कुषाणों (Kushanas) के आधीन थे। घटोत्कच ने अपने पुत्र का विवाह उस समय के शक्तिशाली राज्य लिच्छवी की राजकुमार से करवा अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाई, ऐसा भी माना जाता है कि कुछ क्षेत्र दहेज के रूप में चन्द्रगुप्त का संयुक्त राज्य चलता था। चन्द्रगुप्त पहला गुप्त सम्राट था जिसने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। परन्तु इसके राज्य विस्तार का अधिक ज्ञान साक्ष्यों की कमी के कारण हमारे पास नही है। समुन्द्र गुप्त की प्रयाग प्रशक्ति से पता चलता है कि उसने अहिछत्रा तथा मथुरा के नागों को हराया, जिसका अर्थ है कि चन्द्रगुप्त प्रथम की राज्य सीमा प्रयाग से पश्चिमी मे नही थी। इसी तरह पूर्व मे भी उसका राज्य पाटलीपुत्र से अधिक दूर नही था क्योंकि बंगाल उसके राज्य मे नहीं था जिसे सर्वप्रथम समुन्द्रगुप्त ने जीता था।

समुन्द्रगुप्त इस वंश का पहला राजा था। जिसने राज्य का विस्तार दूर दूर तक किया। सर्वप्रथम उसने दक्षिणापथ के 12 राजाओं को हराया अतरा पथ के दूसरे अभियान में दस राज्यों को हराया इसके अतिरिक्त आटविंक राज्यों, सीमान्त राज्यों तथा गणराज्यों को हराया उसे उत्तर भारत के राजाओं को तो अपने साम्राज्य में मिला लिया तथा दक्षिण के राजाओं को गरूड़ मुद्रांक दे गुप्तराज्य की ओर से राज्य करने छोड़ दिया, उसका शासन 380 ई. के लगभग तक रहा उसके पश्चात् कुछ वर्ष रामगुप्त राजा बना रहा परन्तु वह एक कमजोर शासक सिद्ध हुआ तथा शकों का मुकाबला न कर सका। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने उसे मार कर राज्य छीन लिया और शकों को हरा पश्चिमी भारत का क्षेत्र अपने राज्य में मिला लिया। 414-415 ई० तक उसका एक छत्र राज्य चलता रहा तथा उसे विक्रमादित्त्य भी कहा जाता है। इसके पश्चात् कुमार गुप्त राजा बना उसने गुप्त साम्राज्य को कायम राजा उसके काल में पुण्यमित्रों ने आक्रमण किया जिसे वह हराने मे सफल हुआ तथा राज्य को कोई क्षति नही हुई। सकन्द गुप्त के काल में (455-67) में हुणों ने आक्रमण किया जो इतना शसक्त था कि उसे उन्हें हरने में सकन्दगुप्त को कठिनाई हुई इन युद्धों का प्रभाव गुप्त सम्राज्य की अर्थव्यवस्था पर पड़ा जिसका स्पष्ट प्रमाण हमें सकन्द गुप्त के कम प्रकार तथा मात्रा में सिक्कों के प्रचलन से मिलता है। इसके अतिरिक्त सिक्कों में सोने की मात्रा भी पहले से कम हो गई सकन्दगुप्त के बाद के राजा इतने बड़े साम्राज्य को बचा नही पाए तथा इसका ह्रास होता चला गया। इसी बीच इनके सामान्त राजा स्वतन्त्र होते चले गए जिनमें मध्य भारत के औलिकर तथा पश्चिमी भारत के मैत्रक इत्यादि प्रमुख वंश है।

गुप्त काल का भारतीय इतिहास में काफी महत्व है एक तो यह इतना विशाल सम्राज्य था इनके काल मे कला साहित्य उद्योग व्यापार इत्यादि में भरपूर उन्नति हुई हिन्दु धर्म का र्व्वस्व पुनः स्थापित हुआ प्रशासन में भी उन्होंनें एक विभिन्न नीति को अपनाया। समुन्द्र गुप्त ने दक्षिणापथ के राजाओं को अपने आधीन राज्य नहीं की कूट दे दी तथा उन पर सीध प्रशासन नही चलाया बल्कि उन्हें राज्य का चिन्ह गरूड़ मुद्राकं चलाया बल्कि उन्हें राज्य का चिन्ह गरूड़ मुद्राकं वे राज्य चलाते रहने दिया। इस तरह एक अर्ध सामन्ती प्रथा का प्रचलन किया। गुप्त साम्राज्य के काल के अन्तिम दिनों मे आर्थिक बदहाली के कारण वाणिज्य, व्यापार मे अवनति हुई जिससे नगरों का ह्रास होना प्रारम्भ हो गया तथा धीरे-धीरे सामन्ती प्रथा का प्रचलन भारत में प्रारम्भ हो गया।

गुप्तकालीन सामाजिक स्थिति
(Social Condition of the Gupta Period)

गुप्त साम्राज्य के उत्थान के साथ ही बौद्ध तथा जैन धर्म का प्रचलन काफी कम हो गया था और इसके स्थान पर एक सद्ढ़ ब्राह्मण तंत्र की स्थापना हुई और सामाज में वर्ण व्यवस्था को प्राथमिकता दी जाने लगी। इस काल तक आते-आते बाहर से भारत आई बहुत सी विदेशी जातियां भी भारत सभ्यता एवम् संस्क ति में सम्मिलित हो गई थी और उन्हें भी भारतीय वर्ण-व्यवस्था में शामिल कर लिया गया। इस काल में भौतिक सम द्धि के कारण लोगों का जीवन स्तर काफी उच्च था। इस काल के साहित्य में विभिन्न शहरों में रहने वाले निवासियों के अलग-2 अन्दाज और जीवन की झलक मिलती है।

सामाजिक विभाजन :-

गुप्तकालीन समाज चार वर्णो में विभाजित था। इस काल के स्म तिकारों ने प्रत्येक वर्ण के कार्य एवम् कर्त्तव्यों के बारे में लिखा है। वे शहरों और गांव के अलग-2 क्षेत्रों में रहते थे। व हतसंहिता में इस बात का उल्लेख मिलता है। इस काल में ब्राह्मण तथा क्षत्रिय अपने वर्ण के अतिरिक्त आपतकाल में दूसरे वर्ण के निम्न कार्य भी कर सकते थे। इस काल के एक अभिलेख में दो क्षत्रिय व्यापारियों का वर्णन है, जो ऊपरी गंगा घाटी में निवास करता था। मंदसौर अभिलेख से पता चलता हैं कि इस काल में इंशम बुनकरों की श्रेणी के लोगों ने अपना व्यवसाय छोड़कर कोई अन्य व्यवसाय अपना लिया था। इस काल के एक ग्रंथ में तो ब्राह्मण चोरों की विन्धय क्षेत्र में बस्तियों का भी उल्लेख मिलता है।

वैवाहिक संबध सामान्यतः अपने वर्ण या जाति में ही सम्पन्न किए जाते थे, लेकिन इस काल में अर्न्तजातीय विवाहों का भी उल्लेख मिलता है। अनुलोम और प्रतिलोम दोनों तरह के विवाह प्रचलित थे। जैसे चन्द्रगुप्त II ने अपनी पुत्री का विवाह ब्राह्मण वर्ण में वाकाटक वंश के राजकुमार से किया था। इस काल के संस्क त नाटकों में ब्राह्मणों एवम् क्षत्रियों द्वारा गणिकाओं और दासियों से विवाह करने के प्रमाण मिलते है। जैसे : ब्राह्मण चारूपत्त ने बसन्तसेना तथा ब्राह्मण शर्विलिका ने दासी मदनिका से विवाह किए थे। ब्राह्मणों का समाज में प्रतिष्ठित स्थान था। किसी भी अपराध के लिए उसे म त्यु दंड नही दिया जा सकता था। इस काल की स्म तियों के अनुसार जघंन्य अपराध के लिए ब्राह्मणों को म त्युदंड नही बल्कि देश निकाला दिया जाता था। बौद्ध एवम् चीनी साक्ष्य भी ब्राह्मणों की उच्च स्थिति का उल्लेख करते है। क्षत्रियों का कार्य मुख्यतः सैनिक या शासकीय गतिविधियों का था। लेकिन आपात्काल में वे व्यापारिक गतिविधियाँ भी करते थे। वैश्य वर्ण व्यापारिक गतिविधियों से जुड़ा हुआ था और इनके लिए इस काल में वणिज्य तथा श्रेष्ठिन शब्दों का वर्णन हुआ है। इन्होंने अपनी व्यापारिक श्रेणियाँ बुनाई हुई थी। शूद्र का स्थान सबसे निम्न था और उसका कार्य ऊपरी तीन वर्णो की सेवा करना तथा क षि इत्यादि कार्यो में वैश्यों को मदद करना था।

मिश्रित जातियाँ :-
(Mixed Castes)

इस काल में अर्न्तजातिय विवाहों के कारण बहुत सी मिश्रित जातियों की उत्पति हुई। इनमें सबसे निम्न स्थान चाण्डालों का था। ब्राह्मण स्त्री और शूद्र पुरूष से इनकी उत्पति मानी गई है। स्म तिकारों के अनुसार इन्हें सबसे हीन कार्य करने पड़ते थे जैसेः लावारिस लाशों का अंतिम संस्कार तथा पशु काटना इत्यादि। ब्राह्मणों के अनसार चाण्डाल नगरों से बाहर निवास करते थे और नगरों में प्रवेश के दौरान व ढोल बजाकर अपने आने की सूचना देते थे ताकि उनसे किसी का सर्म्पक ना हो सके।

राजा द्वाराभ उनके अलग चिन्ह लगाए जाते थे। स्म तिकारों ने उनकी दूसरी जातियों से सम्पर्क के कठोर नियम बनाए थे। इस काल में चाण्ड़ालों को माँस खाने वाला तथा अस्प श्य कहा है।

जंगली कबीले :-
(Aforeginous)

विन्धय तथा अन्य जंगलों मे पलिन्द, शबर, फिरात इत्यादि अनेक कबीले निवास करते थे। गुप्त साहित्य में हमें इनके सामाजिक रीति-रिवाजों और धर्म के बारे में जानकारी मिलती है। ये अपने देवी-देवताओं के आगे मानव मांस की भेंट चढ़ाते थे। इनकका जीवन शिकार पर निर्भर था, ये शराब और मांस का सेवन करते थे तथा विवाह के लिए औरतोां का अगवा करते थे।

दास :-
(Slave)

गुप्त काल में दासों का भी एक वर्ग था। इस काल के स्म तिकारों ने उनके लिए अलग नियम निर्धारित किए थे। कात्यायन, चानक्लक्य तथा नारद ने लिखा है कि ब्राह्मण को कभी दास नही बनाया जा सकता तथा सजा के रूप में क्षत्रिय और वैश्य को दास बनाया जा सकता था।

कात्यायन के अनुसार यदि कोई स्त्री दास से शादी कर ले तो वह भी दास बन जाती थी यदि दास अपने मालिक से पुत्र पैदा कर लेती तो उसे आजाद कर लिया जाता था। नारद स्वयं, कर्जे के कारण, जुए में हारने के कारण को दासत्व में जाने के बारे में भी उल्लेख करत है। इस काल में दासों के प्रति बुरा व्यवहार नही किया जाता था।

विवाह :-
(Marriage)

इस काल में अनुलोम और प्रतिलोम विवाहों के अतिरिक्त आठ प्रकार के विवाहों का प्रचलन इस काल में था। लेकिन पहले के काल की अपेक्षा महिलाओं के विवाह की आयु में कमी आ गई थी। कुछ स्म तियों में तो यहाँ तक उल्लेख है कि लडकियों का विवाह व्यस्क होने से पूर्व ही कर दिया जाता था। विष्णु पुराणे में वर की आयु वधु से तीन गुणा होने का सुझाव है। परन्तु वात्यायन उस समय की परिस्थितियों के अनुसार कन्या के विवह के लिए आयु निर्धारण की वकालत करता है। परन्तु इस काल के साहित्य में प्रेम विवाहों के उल्लेख से तो यही निष्कर्ष निकलता है कि व्यस्क होने पर ही विवाह किया जाता था। वात्सायन अपने ही वर्ण या जाति से विवाह को उचित मानते है। अअपने से उच्च वर्ण में स्त्री से विवाह तथा प्रेम वर्जित था। वात्सायन के अनुसार प्रतिलोम विवाह की इस काल में मनाही थी तथा अपनी जाति में भी अनुलोम विवाह अपने समान वर्ण या जाति में ही मान्य था।

स्म तिकार एवम् वात्सायन उस विवह को उचित मानते है जिसमें दोनों पक्षों के माता-पिता मौजूद होते थे। वात्सायन वधु चुनाव का तरीका तााि उसके गुणों पर विस्तार से चर्चा करता है। जिन कन्याओं में कोई विक ति होती थी, उनसे विवाह करना उचित नही माना जाता था। विवाह अवसर पर वधु को सुन्दर वस्त्रों में वर पक्ष के लागों के साथ भोजन के बाद एवम अन्य रिवाजों के उपरान्त कन्यादान के रूप में धन दिया जाता था, इस प्रकार के रिवाज चारों अनुलोम विवाहों (ब्राह्य, प्राजापत्य, आर्ष तथा दैव) में प्रचलित थे।

वात्सायन के अनुसार कोई भी युवक विभिन्न परिस्थितियों में कन्या से प्रेम प्रसंग द्वारा या बलपूर्वक विवाह कर सकता था। स्म तियों में कन्या द्वारा स्वयं अपना वर चुनने का भी वर्णन है। लेकिन निम्न जाति के पुरूष, बूढ़े, जुआरी तथा पहले से विवाहित पुरूष से विवाह अच्छा नहीं माना जाता था। गांघर्व या प्रेमविवाह के अतिरिक्त राक्षस विवाह, जिसमें कन्या का अपहरण कर जबरदस्ती विवाह किया जाता है, पैशाच विवाह में कोई धार्मिक क्रियाएँ नही की जाती थी। वात्यायन पैशाच विवाह को राक्षस विवाह से अच्छा मानते है क्योंकि इसमें हिंसा नही होती थी। गाल्धर्व विवाह उतम विवाह माना गया है। क्योंकि इसमें वर-वधु की सहमति होती है, जबकि अनुलोम विवाह में परिवार वाले बिना वर-वधु की पंसद के विवाह सम्पन्न करवाते है।

गुप्तकालीन साहित्य में ऐसे ही प्रमाण है जबकि लड़का या लड़की के पैदा होने से पहले ही उनके विवाह निश्चित कर दिए जाते थे; परन्तु यह प्रथा वास्तव में कितनी व्यवहारिक थी यह कहना कठिन है।

स्त्रियों की स्थिति :-
(Condition of Women)

गुप्तकाल में स्त्रियों की स्थिति बेहतर थी तथा उन्हें शिक्षा का अधिकार था। विशेषकर उच्चवर्ग की स्त्रियों को बहुत स्वतंत्रता प्राप्त थी। कामसूत्र से पता चलता है कि उच्चवर्ग तिाि राजकन्याओं को शास्त्रों का अच्छा ज्ञान था। वातसायन अंगविद्या के 64 कलाओं का वर्णन करते है जिन्हें कन्याओं को आना जरूरी था इसमें श्लोक पूरा करना धातु ज्ञान, औषधियों का ज्ञान, लेपों का ज्ञान, लेखांकन तथा खर्चो का हिसाब रखना शामिल था। गुप्तकालीन साहित्य में उच्चवर्ग की कनयाओं का आश्रमो में रहकर शिक्षा प्राप्त करने का उल्लेख है, इसी वर्ग की कन्याओं को संगीत और न त्य की शिक्षा, ग्रहण करने का भी अधिकार था, अमरकोष में उपाच्चाया तथा उपाध्यायी स्त्री शिक्षिकाओं का उल्लेख है तथा साथ ही वैदिक मंत्रों की आचार्या का भी उल्लेख है।

ग हस्थ आश्रम तथा पति-पत्नि के कर्त्तव्य :-

विवाह के पश्चात् वर-वधु ग हस्थ आश्रम में प्रवेश कर सकते थे तथा इसी आश्रम में मनुष्य देवऋण तथा पित ऋण चुका सकता है। पित ऋण चुकाने के लिए सन्तानोत्पति जरूरी है। मनु लिखता है कि देव ऋण के लिए पति-पत्नि को सयुंक्त रूप से धार्मिक कर्त्तव्य करने जरूरी थे। इसलिए आशा की जाती थी कि पति-पत्नि दोनों की म त्युपर्यन्त एक-दूसरे के प्रति निष्ठा रखे। मनु ने पति के अपराधा करने पर दण्ड देने का अधिकार दिया है। बौद्यायन में यदि पति-पत्नि दोनों में कोई भी सहवास करना अस्वीकार करे तो उसे दंड देने का विधान है।

आर्थिक द ष्टि से पति-पत्नि में से कोई भी किसी का ऋणी नही माना जाता था, क्योंकि उन दोनों की सम्पति का विभाजन नही हो सकता था। परन्तु यदि पत्नी ने कोई ऋण लिया हो तो उसे चुकाने का उतरदायित्व पति को होता था, परन्तु याज्ञयवल्क्य के अनुसार पत्नी को संविदा करके ऋण लेने का अधिकार था और ऋण चुकाने का उतरदायित्व भी उसी का होता था। यज्ञवल्क्य के अनुसार पत्नी पति की सम्पति के विभाजन की मांग नही कर सकती थी किन्तु यदि विभाजन किया जाता है तो पति के कुछ धन से स्त्री, स्त्रीधन के रूप में प्राप्त करती थी, जो उसके पुत्र के हिस्से के रूप में होता था। इस प्रकार पति की सम्पदा में भी स्त्री का अधिकार माना जाता था। यदि पत्नी कोई अपराध करती थी तो पति उसे प्रायश्चित् करने का समय देता था।

सामान्यतः एक विवाह प्रणाली प्रचलित थी। लेकिन एक से ज्यादा विवाहों का भी उल्लेख मिलता है। जैसे : मनु क अनुसार यदि पत्नी बिमार हो तो पति का उसकी सहमति से दूसरी स्त्री से विवाह का अधिकार था। याज्ञवल्न्य के अनुसार पति यदि दूसरी स्त्री से विवाह कर भी लेतो पहली पत्नी के भरण-पोषण का उतरदायित्व उसी का है।, याज्ञवल्क्य ने स्वयं दो विवाह किए हुए थे। धर्मशास्त्रों के अनुसार यदि किसी का पति कई वर्षो तक लापता रहे, सन्यासी हो जाए, उसकी म त्यु हो जाए तथा उसके नपुसक होने की स्थिति मे स्त्री दूसरा विवाह कर सकती थी। याज्ञवल्क्य व्याधिचारी पत्नी को त्यागने की सलाह देता है जबकि मनु ऐसी स्त्री को स्वीकारने के पक्ष में तर्क देता है।

विधवा -विवाह :-
(Widow-Marriage)

वैदिक काल में तथा उसके बाद ग ह्य सूत्रों के काल तक विधवा विवाह तथा नियोग प्रथा की अनुमति थी तथा विधवा के पुत्र को पुनर्भव कहा गया है और उसका स्थान निम्न नही माना गया। लेकिन बौद्यायान तथा गौतम ने अपने धर्मसूत्रों में तथा मनुंस्म ति में विधवा के पुत्र का स्थान नीचा कर दिया गया। इसलिए इस काल में उसी स्थिति पहले की अपेक्षा गिर गई। धर्मसूत्रकार विधवा के लिए तपस्विनी का जीवन व्यतीत करने का विधान करते है। इस काल में विधवा के सती होने के प्रमाण नही मिलते यद्यपि कुछ लेखकों ने इसके बारे में लिखा है। अमरकोष से हमें विधवा के पुःनविवाह के प्रमाण मिलते है। कात्यायन भी इसी प्रकार का वर्णन लिखता है।

गणिकाएँ तथा देवदासियां :-

वात्सायन के कामसूत्र तथा अन्य साहित्यिक क तियों से इस काल की गणिकाओ का वर्णन मिलता है। ज्यादातर गणिकाओं का इस काल में उच्च सामाजिक प्रतिष्ठ प्राप्त थी। परन्तु सामान्यतः गणिकाओ को निम्न उत्साही वाली तथा लालची माना

जाता था जो दूसरों के पैसे ऐठने में माहिर थी। इसके अतिरिक्त एक अन्य वर्ग की कन्याओं का देवदासियां कहा जाता था जो मन्दिरों में गायन और न त्य करती थी। कालिदास ने उज्जैने के महाकाल मन्दिर में इस प्रकार की देवदासियों का वर्ण किया है।

यद्यपि गुप्तकालीन स्त्रियों की स्थिति में पहले की अपेक्षा कुछ गिरावट आई लेकिन दूसरी ओर कात्यायन ने स्त्रियों को सम्पति अधिकार देने की बात कही है। इस काल में अद्री तथा देवल ने डाकुओं द्वारा सताई स्त्रियों द्वारा पनुः अपनी प्रतिष्ठता पाने का सदंर्भ मिलता है। इस काल में स्त्रियां अपने सावर्जनिक अधिकारों का प्रयोगकरती थी। चन्द्रगुप्त I की रानी तो संयुक्त रूप से राज्य का भी कार्य करती थी। इसी प्रकार अश्वमेघ यज्ञ के दौरान रानी की उपस्थिती अनिवार्य थी। चन्द्रगुप्त II की पुत्री प्रभावती अपने पति की म त्यु के पश्चात् अपने अल्पव्यस्क पुत्र की संरक्षिका के रूप में राज्य कर रही थी। विवाहित स्त्रियां सामान्यतः जनसमूह में पर्दा करके आती थी जैसे कि अभिज्ञान शाकुन्तलम में शकुन्तला राजा के दरबारे में पर्दे में उपसिंति हुई। इसी प्रकार म च्छकटिक में भी नायिका में विवाह होने पर पर्दा धारण किया था। लेकिन इस काल की मूर्तियों तथा चित्रों में स्त्रियों को बिना किसी पर्दे के दर्शाया गया है।

गुप्तकालीन आर्थिक स्थिति
(Economic Condition of Guptas)

गुप्त काल की अर्थव्यवस्था एवम् ढांचे को जानने के लिए साहित्यिक एवम् अभिलेख महत्वपूर्ण साधन है। इसके अतिरिक्त सिक्कें, कला, वास्तुकला तथा विदेशी विवरण भी जानकारी प्राप्त करने के प्रमुख साक्ष्य है। इनके अतिरिक्त कालिदास की क तियां, वराहमिहिर की व हतंसहिता, वात्सायन का कामसूत्र तथा अमरकोष इत्यादि महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इस काल की प्रसिद्ध स्म तियों भी हमें महत्वपूर्ण जानकारीयां प्रदान करती है। जैसे नारद स्म ति,। ब हस्पति स्म ति तथा मनुस्म ति इत्यदि। यद्यपि स्म तियों के काल के बारे में विद्वानों में मतभेद है। चीनी यात्री फाह्यान के विवरण भी इस काल की समाजिक और आर्थिक स्थिती पर प्रकाश डालते हैं।

गुप्तकाल की अर्थव्यवस्था में क षि का काफी महत्व था इसके अतिरिक्त आंतरिक एवम् बाहरी व्यापार भी विस्त त पैमाने पर था। हांलाकि इस काल में पश्चिमी देशों के साथ व्यापार में कमी आई परन्तु दक्षिण-पूर्वी देशों के साथ व्यापार में विकास हुआ।

भमि स्वामित्व :-
(Land Ownership)

इस काल में क षि राज्य की आर्थिक व्यवस्था का आधार थी। उतर भारत, विशेषकर गंगा-यमुना दोआब का प्रदेश क षि कार्यो लिए उपयुक्त था। क षि व्यवस्था को जानने से पूर्व उस काल के भूमि प्रबन्ध का अध्ययन आवश्यक है कि इस काल में भूमि पर राजा का अधिकार था या व्यक्तिगत स्वामित्व अथवा इसकी मलकीयत सारे समुदाय की थी।

मनु के अनुसार जिसने सर्वप्रथम जंगल साफ करके खेती शुरू की भूमि पर उसी व्यक्ति का अधिकार है। परन्तु इस प्रकार जमीन पर स्थाई स्वामित्व ना होकर केवल सरंक्षण मात्र था। याज्ञयवल्क्य तथा ब हस्पति के अनुसार बिना मालिकाना अधिकार के भूमि रखना अवैध था। नारद लिखता है कि यदि कोई 30 वर्षो तक बिना किसी व्यवधान के भूमि जीतता है तो उसे उस भूमि से हटाया नही जा सकता ।

गौतम के अनुसार भूमि केवल उतराधिकार से खरीदकर, दान में प्राप्त कर तथा नई भूमि पर क षि करके प्राप्त की जा सकती है, मनु ने भूमि अधिकार के 7 कानूनी तरीके बताए है। उतराधिकार द्वारा, मैत्रीपूर्ण दान द्वारा, खरीदकर, विजय द्वारा, ब्याज के एवज में प्राप्ती, यज्ञ द्वारा दान स्वरूप प्राप्ती, तथा योग्यता के आधार पर प्राप्त भूमि। इसी प्रकार ब हस्पति ने भी 7 ढंग से भूमि प्राप्ती का वर्णन किया है जिनमें विवाह के दौरान दहेजस्वरूप तथा किसी संबधी की सन्तान न होने पर उसकी भूमि प्राप्त करना भी शामिल था।

वास्तविक रूप से देखें तो इस काल की समस्त भूमि पर राजा का स्वामित्व है। क षक जब तब खेती की भूमि पर कर देता है, तो वह जब तक उसका मालिक है अन्यथा नही। गुप्तकालीन अभिलेखों से समस्त गांव दान स्वरूप दिए जाने तथा कुछ

खेत दिए जाने के प्रमाण है। जो वेतन स्वरूप दी जाती थी और उससे प्राप्त आय पर दान ग्रहता का अधिकार होता था। दान स्वरूप दी गई भूमि या गांव पर राजा के कुछ अधिकार रहते थे जैसे, चोरों को दण्ड़ित का अधिकार। दानप्राप्तकर्ता भूमि पर कोई नया कर नही लगा सकता था और ना ही भूमि को बेचने का उसे अधिकार था। अभिलेखों में वर्णन है कि साधारणतः एक बार दान दी गई भूमि को वापिस नही लिया जा सकता। इस प्रकार की भूमि या गांव में खदानों का अधिकार राज्य का था।

इस काल में भूमि खरीदने के काफी कम प्रमाण मिलते हैं। भूमि खरीदने से पूर्व राज्य से आज्ञा लेना जरूरी था और इसके लिए उसे राजा को कानूनी तौर पर अर्जी देनी पड़ती थी। इस काल में भूमि लेन-देन के लिए कई नामों का उल्लेख पहली बार भरता है। यह अस्थाई स्वामित्व वाली भूमि थी तथ एक पीढ़ी से दूसरी पीढियों तक इस पर मालकीयत रहती थी, नीवीध र्म, भूमि को जायस्वाल महोदय स्थाई स्वामित्व वाली मानते है जबकि आर.जी. बसाक इसे अस्थाई मानते है। नीविधर्म अक्षय, घोषल और एस.के. मैद्दी इसे स्थाई स्वामित्व भूमि का घोत्तक बानते है। अप्रदाधर्म, इस भूमि पर स्वामित्व तो उसी का रहता था जिसे यह प्राप्त था लेकिन वह आगे किसी को नही दे सकता था। अप्रदाक्षयनीवी, इसमें भी स्वामित्व तो नीविधर्म की तरह स्थाई था परन्तु इसके मालिक को इसे समाप्त करने का अधिकार नही था।

संभवतः इस काल में भूमि पर किसानों की व्यक्तिगत मलिकयत बिल्कूल समाप्त नही हुई थी। छोटे किसान वर्षो से अपने परिवार के वंशानुगत रूप से जमीन के टुकड़े पर खेती करते आ रहे थे। लेकिन इस काल में ऐसी भूमि या गांव भी शासक भूमि-कर अधिकार के साथ ग हिता को दान में दे सकता था। इस कारण किसानों के निजि भूमि अधिकार पर प्रश्न चिन्ह भी लग जाता था।

इस काल से अनेक अभिलेखों में ब्राह्मणों, मठों तथा मन्दिरों को कर-मुक्त भमि दान में देने का उल्लेख है। ऐसे भूमि दान को अग्रहार कहा जाता था। दान स्वरूप भूमि पर ग्रहिता स्वंय नही बल्कि भूमिहर मजदूरों से खेती करवाता था। ऐसे क षकों को उपज का 1/5 हिस्सा नगद वेतन के रूप में दिया जाता था और इसकी जानकारी ब हस्पति तथा नारद स्म ति से मिलती है। इस काल में इस व्यवस्था से भूमिहीन क षक भूमिपतियों के अधिन होते चले गए और उनकी स्थिति दयनीय हो गई क्योंकि इस काल में दानस्वरूप सिर्फ भूमि ही नही बल्कि उस क्षेत्र के निवासी भी ग्रहिता के अधीन आते थे। कामसूत्र में वर्णन है कि क षकों की स्त्रियों से भूमिपति अनेक कार्य कराते थे। जैसे खेतों में कार्य करना, अन्न भण्डारों को भरना, घर का सफाई कार्य तथा सूत कातना इत्यादि। अभिलेखों से स्पष्ट है कि ग्रहिता को पुराने क षकों को हटाने तथा नए क षकों को भर्ती करने का अधिकार प्राप्त था। इस प्रणाली के तहत इस काल में क षि की स्थिति पहले की अपेक्षा खराब हुई।

धार्मिक अनुदान वाली भूमि से राज्य कर नही वसूलता था। लेकिन नगद वेतन के बदले दी जाने वाली भूमि से राज्य कर की वसूली करता था। भूमि दान तथा वेतन के खज में दी जाने वाली भूमि से क षि प्रणाली में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन आया और एक ऐसा वर्ग अस्तित्व में आया जिसका भूमि पर मालिकाना हक था। ऐसे जमींदार वर्ग का जिक्र इस काल से पहले कहीं नही हुआ।

भूमि के प्रकार :-
(Types of Land)

गुप्तकाल में हमें खेती योग्य भूमि, व्यर्थ भूमि, निवास स्थान वाली भूमि, बाग-बगीचे तथा चरागाह इत्यादि भूमि खण्ड़ों की जानकारी मिलती है। इसके अतिरिक्त क्षेत्र या खेत किल-बिना जोती भूमि, वाप-बोए हुए खेत इत्यादि का वर्णन मिलता है। अमरकोश से विभिन्न प्रकार की भूमि का वर्णन मिलता है। जैसे : उर्वरा, उसर, मरू, अप्रहत, शड्वस (घास वाली भूमि), पंकिल (कीचड़ युक्त भूमि), जल प्रायमनुपम (दलदली भूमि), कच्छ (पानी या समुद्र तट के किनारे वाली जमीन), शरकरा (पत्थरीली भूमि), नदीमात्रिका (नदी द्वारा सिंचिंत भूमि) तथा देवमात्रिक (वर्षा से सिंचित भूमि) इत्यादि का वर्णन मिलता है।

सिचांई :-
(Irrigation)

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि इस काल में क षि केवल वर्षा पर ही आधारित नही थी बल्कि नदियों द्वारा भी भूमि की सिंचाई की जाती थी। इसके अतिरिक्त झरनों, तालाब और कुओं से भी सिचांई की जाती थी। सिचांई व्यवस्था के लिए शासकों का

भी सहयोग मिलता था। गुप्त सम्राट स्कन्दगुप्त द्वारा सुदर्शन झील को ठीक करवाने के प्रमाण मिलते हैं। नारद स्म ति में बांधों को बनाने, ठीक करवाने के प्रमाण मिलते हैं। नारद स्म ति में बांधों को बनाने, ठीक करने तथा पुराने बांधों का पुःन प्रयोग में लाने का उल्लेख है। नहरों का भी इस काल में उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त वादि या बड़ा तालाब, कूद इत्यादि के भी प्रमाण मिलते है। अधिकतर सिंचाई के लिए क षक वर्षा पर ही निर्भर थे। कुओं से पानी निकालने के लिए इस काल में एक विशेष यंत्र था, जिसे रहट कहते थे। इससे नलियों के जरिए पानी खेतों तक पहुंचाया जाता था। इनके अतिरिक्त वर्षा के पानी का गड़ढों में एकत्रित करके भी सिंचाई की जाती थी।

क षि :-
(Agriculture)

क षि कर्म इस काल में अर्थव्यवस्था का मुख्य अंग थी तथा खेती पशुओं द्वारा की जाती थी। लकड़ी के हल में लाहें की फाल लगी होती थी, बैलों की जोड़ियां हल द्वारा भूमि को जोतती थी। अमरकोष में हल की फाल के 5 नामों का वर्णन मिलता है। ब हस्पति स्म ति भी लोहे के 12 पल वजन के हल के फाल का उल्लेख करते है जो कि 8 अंगूल लंबा तथा 4 अंगूल चौड़ा था। इस काल की मुख्य फसलें गेंहू, जौ, चावल, दालें, बाजरा, चना तथा सब्जियां, मसालें, तिलहन, रेशेदार पौधें, रंगों वाले पौधें जैसे -केसर, औषधियों चारा इत्यदि पैदा करने के प्रमाण मिलते है। नकदी फसलों में कपास और गन्ने की खेती की जाती थी।

इस काल में चावल की अनेक किस्में थी जैसे : शाली, कलमा, नीवार, उंच, श्यामक इत्यादि। इसके अतिरिक्त अमरकोष में हमें लाल चावल, पीले चावल आदि अन्य प्रकार के चावल उपजाने का उल्लेख मिलता है। फलों में विशेषतः सेब, अनार, अंगूर, अंजीर, आवंला, नारियल, सुपारी, खजूर, केला, संतरा और आम मुख्य थे। जबकि सब्जियों में मटर, ककड़ी, प्याज, बीन, लहसू, घीया, कद्दू का वर्णन है। रंगों वाली फसलों की भी खेती होती थी जैसे नील, केसर और हल्दी आदि। मसालो की खेती में अदरक हल्दी, जीरा, काली मिर्च, के प्रमाण है। कई प्रकार की जड़ी-बूटियों की खेती के भी अवशेष इस काल में मिलते है। फसलों के अतिरिक्त प्राक तिक सम्पदा के भी प्रमाण मिलते है जैसे जंगलों से ईधंन के लिए लकड़ी, जंगली जानवरों की खालें कस्तुरी, म गनामी, लाख, हाथी दांत, शहद, संदल प्राप्त होते थे।

अमरकोश ने 12 प्रकार की भूमि का उल्लेख इस काल में किया है। गुप्तकालीन अभिलेखों में भी कई प्रकार की भूमि का उल्लेख है। जैसे : आवासीय भूमि को वास्तु कहा जाता था, जो भूमि जोती नही जाती थी उसे सिल कहा जाता था। पशुओं का चारा चराने वाली भूमि को चरागाह कहा जाता था। भूमि का वर्गीकरण संभवतः आर्थिक आधार पर किया गया था।

पशुपालन :-
(Animal Husbandry)

क षि कर्म के अतिरिक्त पशुपालन का कार्य भी अर्थव्यवस्था का आधार था। जगंली जानवरों के अतिरिक्त पालतु जानवरों का भी वर्णन है। पालतु पशुओं में घोड़ा, भैंस, गाय, बैल, ऊंट, भेड़, बकरी, गधा, कुता और बिललियों का वर्णन है। जबकि जंगली जानवरों में शेर, चीता, लकडबग्घा, बन्दर, भालु, गैंडा, गीदड़, सहा, हिरण, कस्तूरी म ग, बारहसिंगा, हाथी, लोमड़ी इत्यादि का उल्लेख विभिन्न साक्ष्यों से प्राप्त होता है। पानी के जीवों में मछली, कछुआ, शार्क, शंख जीव, मकर इत्यादि का उल्लेख है। पक्षियों में कबूतर, बाज, उल्लु, कोयल, तोाता, बतख, मोर, चमगादड़, चिडियां का उल्लेख है। जिन्हें मांस, बाल तथा पंख के लिए तथा पशुओं में भेड़ से ऊन तथा कुछ अन्य पशुओं से खाल प्राप्त की जाती थी जिससे अनेक वस्तुएँ निर्मित की जाती थी।

भूमिकर :-
(Land Tax)

गुप्तकाल में प्रशासनिक उतरदायित्वों को निभाने के लिए राजस्व की क्या व्यवस्था थी यह स्पष्ट नही है। प्राचीन परम्परा के अनुसार राजा भूमि का मालिक माना जाता था और वह भूमि से उत्पन्न उत्पादन के एक भाग (साधारणतः 16) का अधिकारी था। गुप्तकाल में भी संभवतः कर इसी रूप में लिया जाता था जो कि उपज का ¼ से लेकर 1/6 भाग तक होता था। इस कर का भाग कहा जाता था और मुख्यतः अनाज के रूप में लिया जाता था। नारद स्म ति में उल्लेख है कि क षक राज्य को उपज का 1/6 भाग भूमिकर के रूप में देते थे। इस कर को भाग कहा जाता था कई बारे इसे नकदी के रूप में भी वसूला जाता था तब इसे हिरण कहा जाता था।

मनु के अनुसार जमीन की उर्वरता के अनुसार 1/6, 1/8 या 1/2 भाग कर के रूप में राज्य को दिया जाता था। एक अन्य भोग कर का उल्लेख मनुस्म ति में हुआ है कुछ इतिहासकारों के अनुसार यह मौर्यकालीन वह कर था जो चुंगी शुल्क के रूप में लिया जाता था। जबकि सोलेतर और सरकार के अनुसार यह काल में राजा को जो फल-फूल या तरकारी भेंट स्वरूप दी जाती थी उसे भोगकर कहा जाता था। इसी प्रकार की भेंट का उल्लेख हर्षचरित में भी हुआ है। जिससे यही अनुमान लगता है कि जब राजा अपने दल के साथ किसी गांव के समीप से गुजरता था तो, गांव की जनता राजा और कर्मचारियों को भेंट स्वरूप अपनी उपज का एक हिस्सा देती थी। राजा के उपभोग में लगने के कारण ही यह हिस्सा भोग कहलाया। गुप्तकालीन अभिलेखों में भाग और भोग का संयुक्त रूप से उल्लेख हुआ है। प्लीट महोदय इन्हें साधारण रूप से भूमिकर का पर्यायवाची मानते है। हांलाकि इस काल के अभिलेखों में 18 प्रकार के करों का वर्णन है, लेकिन तीन के ही नामों का उल्लेख मिलता है। उद्रंग और उपरिकर भी अन्य कर थे। ब्यूहलर का मत है कि उद्रंग राज्य को भोग का पर्यायवाची मानते है। घोषाल के अनुसार उंद्रग स्थायी किसानों से और उपरिकर अस्थायी किसानों से वसूल किया जात था। सचीन्द्र कुमार मैदी के अनुसार उंद्रग पुलिस टैक्स भी हो सकता है, जो स्थानीय पुलिस के खर्च के लिए प्रजा से लिया जाता था। घरसेन II के मलिय ताम्रलेख में वात-भूत कर का उल्लेख है। संभवतः वायु और पानी के देवताओं की पूजा के लिए यह एक लिया जाता था। एक अन्य कर हलिराकर के बारे में घोषाल के अनुसार यह कर हलों पर था। कुछ नए करों जैसे कि उपरिकर, उद्रंग तथा हलिकारक करों का वर्णन गुप्तकालीन अभिलेखों में पहली बार हुआ है।

बेगार :-

इस काल में क षि कर्म तथा व्यापार में मजदूर वर्ग मदद करता था जिन्हें बदले में वेतन दिया जाता था। इस काल में दासों का भी वर्णन मिलता है। नारद के अनुसार दासों को गिरवी रखा जा सकता था, दान दिया तथा बेचा जा सकता था। नारद के अनुसार धर्म को छोड़ने, नकारने पर राजा उसे दासता की सजा दे सकता था। अधिकतर दास युद्ध बन्दी होते थे। यद्यपि इस काल के साहित्य में दासों पर अत्याचारों का भी वर्णन है। लेकिन उन से अच्छा व्यवहार किया जाता था। आपस्तम्भ में इस प्रकार के बहुत से नियम हमें मिलते है। लेकिन उनके साथ अच्छा या बुरा व्यवहार उनके मालिक पर निर्भर करता था।

धातु शिल्प उद्योग :-

गुप्तकाल में धातु उद्योग काफी उन्नत अवस्था में था और विज्ञान को इस काल में काफी महत्व दिया जाता था। वात्सायनने तो इसे 64 कलाओं में से एक महत्वपूर्ण कला माना है। जिसका ज्ञान सभी को (स्त्रियों को भी) होना चाहिए। अमरकोश में कच्चे व पक्के सोने, लोहा और लोहे की खानों का उल्लेख है। ब हत्संहिता में भी खानों का उल्लेख है लेकिन इनमें से किसी भी ग्रंथ में चांदी की खानों का उल्लेख है लेकिन इनमें से किसी भी ग्रंथ में चांदी की खानों का जिक्र नही है इसका यह अर्थ है कि चांदी भारत की खानों से नही बल्कि इसका आयात संभवतः श्री लंका और अफगानिस्तान से किया जाता था। अमरकोश में सोना, लोहा, चांदी, तांबा, पीतल, सीसा और टीन विभिन्न प्रकार की धातुओं का उल्लेख है। स्पष्ट है कि गुप्तकाल में धातु शिल्प में काफी उन्नति हो चुकी थी।

लोहा (Iron) :-

महरौली स्थित लौह स्तम्भ इस काल के लौह शिल्प का श्रेष्ठ उदाहरण है। यह 28 फुट लम्बा और इसका व्यास 164 इंच है और इसका वजन 6 टन से अधिक है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें अभी तक जंग नही लगा है। इस काल में लुहार क षि में प्रयुक्त होने वाले औजार तथा दैनिक जरूरतों की पूर्ति वाले उपकरण एवम् सैनिक औजार बनाते थे। अमरकोष से पता चलता है इस काल में फावड़े, छेनियां, कुठार, हथोड़े, हसिया, फाल, जंजीरा, लोहे के चादर, तलवार और अन्य हथियार बनाए जाते थे।

सोना, तांबा, कांसा और पीतल :-
(Bronze, Gold, Copper & Silver)

सोने का प्रयोग आभूषण और गहने बनाने के लिए होता था। सुनार ज्यादातर नगरों में निवास करते थे। रघुवंश में सोने के शीशों का वर्णन है। इसी प्रकार चांदी का प्रयोग गहनों, सिक्कों और बर्तन बनाने के लिए किया जाता था। अमरकोश में तांबे की वस्तुएं बनाने वाले शिल्पी का भी उल्लेख है। तांबे और कांसे के अधिकतर बर्तन और मूर्तियां बनाई जाती थी। पीतल के

भी बर्तन बनाए जाते थे। तांबे के सिक्कें और मुहरें भी बनती थी। उतरप्रदेश से प्राप्त तांबे की बैठे हुए बुद्ध की मूर्ति और बिहार से प्राप्त कांसे की खड़े हुए बुद्ध की मूर्ति विशेष उल्लेखनीय है।

वस्त्र उद्योग :-
(Textile)

इस काल में वस्त्र उद्योग काफी प्रफल्लित था। इस काल की मूर्तियों, सिक्को और चित्रों में राजाओं और अन्य लोगों को विभिन्न प्रकार के परिधान धारण किए दर्शाया गया है। कताई और बुनाई का कार्य जीविका का एक साधन था। वस्त्र बुनाई के मुख्य केन्द्र गुजरात तथा बंगाल थे। वराहमिहिर से पता चलता है कि इस काल में वस्त्रों को रंगने की रसायनिक क्रिया से लोग परिचित थे। धनी व्यक्तियों के लिए इस काल में बारीक तथा निर्धन व्यक्तियों के लिए मोटा कपड़ा बनाया जाता था। जानवरों की खाल के भी वस्त्र धारण किए जाते थे। अमरकोश में रेशमी वस्त्र बुनाई का विस्त त वर्णन है कि किस प्रकार रेशम के कीड़ों से धागा लेकर उससे कपड़ा बनता था बाद में उसे रंगने की भी विधि बताई है। रेशमी वस्त्रों पर डिजाइनों मे हंशों की आक तियां बनाई जाती थी। चीन से रेशम का आयात किया जाता था। इस काल में धनी स्त्रियां रेशमी वस्त्र धारण करती थी, मन्दसौर अभिलेख में रेशम के जुलाहों की श्रेणियों का उल्लेख है। जो इस ओर संकेत करता है कि यह एक विकसित उद्योग था।

ऊनी वस्त्र उद्योग का भी वर्णन इस काल में मिलता है। फाह्यान में अमीरों द्वारा पहनने वाले ऊनी वस्त्रों का वर्णन किया है। ऊन से गरम वस्त्र तथा कम्बल बनाए जाते थे। नारद ने भी पहाड़ी बकरी के बालों द्वारा बनाए कम्बल का जिक्र किया है।

इसके अतिरिक्त इस काल में बढ़ई, लौहार, कुम्हार आदि शिल्पी अपने-अपने कार्यो में सिद्धहस्त थे। जहाज और नाव बनाने का उद्योग भी इस काल में उन्नत था क्योंकि आन्तरिक और विदेशी व्यापार में इनकी जरूरत थी। इस काल में बहुमूल्य मणियों, मोतियों हीरों, मणियों और सीपियों से भी सुन्दर गहने बनाए जाते थे।

म दमान्ड :-

धातु उद्योग के बाद सबसे महत्वपूर्ण उद्योग म दभांड बनाने का था। कुम्हार इस काल में विशेष प्रकार के लाल रंग के म दभांड बनाते थे। बर्तनों पर चित्रकारी भी की जाती थी। बर्तनों में हंडिया, कटोरे, मर्तबान तथा घड़े प्रमुख थे। कुम्हार बर्तनों के अतिरिक्त मुद्रांक और खिलौने भी बनाते थे। खिलौनों में अधिकतर देवी-देवताओं की मूर्तियां है।

चर्म उद्योग :-
(Leather Business)

अमरकोश से हमें न केवल जूते बनाने वालो का उल्लेख है बल्कि उनके औजारों तथा बनाई गई अन्य वस्तुओं का भी वर्णन हैं जैसे : जूते, पखें, बोतलें, छोटे बर्तन इत्यादि। म ग और चीते की खाल का प्रयोग उस काल में तपस्वी वस्त्र के तौर पर करते थे।

इस काल में हाथी दांत से अनेक वस्तुंए निर्मित की जाती थी जैसे खूंटी, पीढ़े और मुहरें तथा साज-सज्जा की वस्तुएं जिन्हें ज्यादातर अमीर व्यक्ति प्रयोग में लाते थे।

तेल उद्योग :-
(Oil Business)

स्कन्दगुप्त के काल में हमें तेलियों की श्रेणियों का उल्लेख मिलता है। इस काल में सरसों, तिल, अलसी और इगुडी का तेल निकाला जाता था। इंगुदी का तेल दीपक जलाने और चिकित्सा में काम में लाया जाता था। वनस्पति तेल का प्रयोग दीया जलाने, खाना पकाने और बालों में लगाने के लिए किया जाता था। कालिदास और वात्सायन में सुगन्धित तेलों का भी जिक्र किया है।

व्यापार एवम् वाणिज्य :-
(Trade and Commerce)

गुप्तकाल में अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग व्यापार और वाणिज्य था। इस कोल के अभिलेखों और मुद्राओं से पता चलता है कि आंतरिक और विदेशी व्यापार अपनी चर्म सीमा पर था। इस काल में भारत अन्तरराष्ट्रीय व्यापार का प्रमुख केन्द्र बन गया था।

आन्तरिक व्यापार :-
(Inland Trade)

अमरकोश तथा नारद और ब हस्पति स्म तियों में हमें गांव और नगरों के बाजारों और बाजार सम्बन्धी बनाए गए नियमों का वर्णन मिलता है। इन बाजारों में विभिन्न व्यापारी उत्पादित वस्तुओं का आदान -प्रदान करते थे, व्यापारी यहाँ से वस्तुएँ खरीदकर उन्हें उन स्थानों पर जाकर बेचते थे जहाँ उनकी मांग होती थी। कालीदास और वात्सायन शहर के बाजारों का वर्णन करते है कि किस प्रकार विपणी (बाजार) में सड़क के दोनों और बड़ी-बड़ी दुकाने थी। आपणमार्ग मुख्य बाजार था जिसे विशेष अवसरों पर काफी सजाया जाता था। इस काल में व्यापारियों का एक अगल वर्ग था, म च्छाकटिक का मदनिका इसी प्रकार का एक व्यापरी युवक था जिसने विदशों से काफी धन अर्जित किया था। इस काल में दोनों प्रकार के व्यापरियों का वर्णन है बड़ें व्यापारी (प्रधान व्यापरीणाह) तथा छोटे व्यापारी। बड़े व्यापारी वस्तुओं को वहां से खरीद कर बैलगाडियों द्वारा उन दूर-दराज के प्रदेशों में ले जाते थे जहाँ उनकी मांग होती थी। इस काल में हमें 2 प्रकार कें व्यापारिक संगठनों, श्रेष्ठी और सार्थवाह का पता चलता हैं। आधुनिक काल का सेठ शब्द श्रेष्ठिन से ही बना है। श्रेष्ठी इस काल में व्यापार भी करते थे तथा बैंकों के रूप में कार्य करते थे, जो व्यापरियों को ब्याज पर रूपया देते थे। संभवतः प्रधान व्यापारी का स्थान गुप्तकालीन नगरश्रेष्ठी के समकक्ष था। सार्थवाह, भ्रमणशील व्यापारी अथवा कारवां को कहते थे। श्रेष्ठी और सार्थवाह इन दोनें श्रेणियों का नगरीय जीवन में काफी महत्व था। शिलपियों की भी अपनी श्रेणियां थी और इन पर कुछ सामाजिक कार्यो का भी दायित्व होता था।

आन्तरिक व्यापार में ज्यादातर दैनिक उपभाग की वस्तुएँ शामिल थी। नारद ने निम्न वस्तुओं का वर्णन दिया है जिमें दूध, दही, घी, शहद, लाख, गरम मसालें, शराब, मांस, चावल, सोम जूस, फूल, तिलहन, फल, जहर, नमक, कपड़े, हथियार, रोटी, चमड़ा, हड्डियों, पशु, कम्बल, बर्तन, मणियां, अदरक, धातुएँ तथा दास और दायियां इत्यादि। इनमें से कुछ वस्तुएं व्यापारी दूर-दराज के क्षेत्रों से लाते थे जैसे काली मिर्च, चन्दन और मूंगा दक्षिण भारत से लाए जाते थे। हिमालय क्षेत्र से कस्तूरी केसर और याक की पूंछ के बाल, कंलिग, अंग तथा असम से हाथी और उतर पश्चिमी भारत से घोड़े मंगवाए जाते थे। व्यापारी बिहार से सोना, चांदी, लोहा, अबरक तथा मैसूर से सोना और समुद्री तट से नमक लाया जाता था।

व्यापार के लिए व्यापारिक श्रेणियों ने अपने-अपने नियम बनाए हुए थे। इसके अतिरिक्त नारद और ब हस्पति स्म ति में भी उल्लेख है कि यदि कोई खरीददार यह समझे कि उसने खराब चीज खरीदी है तो वह उसे तभी वापिस लौटा सकता था और पूरे पैसे वापिस ले सकता था लेकिन यदि वह अगले दिन लौटाता तो 1/30 के नुकसान से तीसरे दिन 1/15 के नुकसान से वापिस कर सकता था। इन नियमों से स्पष्ट है कि व्यापारी अपनी मनमानी नहीं कर सकते थे। दुधारू पशुओं को तीन दिन तक परखा जा सकता था। इसके अतिरिक्त बेइमान व्यापारी को खरीददार को मूल्य का दोगुना लौटाना पड़ता था, और उसे इतना ही भुगतान राज्य को भी करना पड़ता था।

इस काल में मुक्त व्यापार था, वस्तुओं के मूल्य पर राज्य का नियंत्रण नही था। इस काल में वस्तुओं का मूल्य मांग पर निर्भर होता था।

विदेशी व्यापार :-
(Foreign Trade)

विदेशी व्यापार जल और स्थल दोनों मांगों से होता था। इस काल में विदेशी व्यापार काफी उन्नत था। स्थल मार्ग से मध्य एशिया और चीन से व्यापार होता था। जबकि जल मार्ग से मिस्र, यूनान, रोम, पर्सिया, अरबदेशों, सीरिया, लंका, दक्षिण-पूर्वी देश, कम्बोडिया, स्याम, सुमात्रा, मलाया और चीन से व्यापार होता था। इस काल में अनेक प्रसिद्ध बन्दरगाह थे जिनमें सिन्धु, ओर्हथ (गुजरात, कल्याण, सिबोर (मुबंइ से दक्षिण की बन्दरगाह), माले (मालाबार), मनगरोथ (मनगलोर), नोलोपतन, पोण्डोपत्थ (मंगलौर-कालीकट के बीच) तथा ताम्र लिप्ती (ताम्लुक) इत्यादि का वर्णन कासमांस तथा फाह्यान के विवरणों से मिलता है। माले से मसालें बाहर भेजे जाते थे, कल्याण से वस्त्र, तांबा और तिलहन का व्यापार होता था। सिन्धु से कस्तूरी, अरिण्ड का तेल बाहर भेजा जाता था यहीं से पर्शिया के घोड़े भारत मंगवाए जाते थे। श्रीलंका से मनि, रत्न, मोती और चांदी मंगाई जाती थी।

चीन को भारत से बारासिंगे के सींग, कीमती पत्थर, रत्न, कपड़ा, सुंगधित पदार्थ और केसर भेजा जाता था तथा वहां से रेशमी वस्त्र मंगवाया जाता था। कम्बोडिया को भारत से मसाले, सुगंधित पदार्थ और केसर भेजा जाता था। पर्शिया से घोड़ों का आयात होता था। इस काल में कम्बोडिया, हिन्द, चीन इत्यादि में भारतीय व्यापारियों ने अपनी बस्तियाँ भी स्थापित कर ली थी।

रोम के साथ भी भारत का विदेशी व्यापार था। भारत से लोहा, सुगंधित तेल और पदार्थ, कीमती पत्थर, रेशमी तथा सूती वस्त्र, गर्म मसाले, अदरक, पान, चंदन तथा हाथी दांत से निर्मित वस्तुएँ भेजी जाती थी।

इथोपिया के साथ भी व्यापरिक संबध थे। वहां के शासक हेल्लिसथेक्यूस ने भारतीय व्यापरियों से रेशमी वस्त्र खरीद कर उन्हें रोमन व्यापारियों को बेचकर काफी धन कमाया था। इथोपिया के व्यापारी भी भारत से व्यापार करते थे।

व्यापार के लिए इस काल में व्यापारिक पत्रों (आर्डर) का भी प्रचलन था। बाहर भेजने वाली वस्तुओं के बंद पैकेट पर मुंद्राक लगा दिया जाता था। इस प्रकार की हजारों मोहरें विभिन्न स्थलों से प्राप्त हुई है। एक-स्थान से दूसरे स्थान पर भेजी जाने वाली वस्तुओं पर राज्य को शुल्क (कर) मिलता था इसे एकत्रित करने के लिए विशेष अधिकारी नियुक्त किए जाते थे। व्यापार एवम् वस्तुओं के मूल्य पर राज्य की दखलअंदाजी नही थी। लेकिन वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने पर राज्य चुंगी कर लेता था जो वस्तु की कीमत पर निर्धारित था।

इस काल में गुप्त शासकों ने व्यापारिक सुविधा के लिए विस्त त पैमाने पर मुद्राएँ ढाली। गुप्तकालीन हजारों सोने की मुद्राएं प्राप्त हुई है। इनका प्रयोग विदेशी व्यापार के लिए किया जाता था। पहले काल की अपेक्षा चांदी की मुद्रांए इस काल में भी जारी रही। चन्द्रगुप्त II ने चांदी के सिक्कों का प्रचलन किया संभवतः छोटे व्यापारी इनका प्रयोग करते थे। इसके अतिरिक्त छोटी मुद्रा के रूप में तांबे के सिक्कों का भी प्रचलन था। फाह्यान ने तो मध्य देश में कौड़ियों द्वारा व्यापार होने का उल्लेख किया है। संभवतः स्थानीय व्यापार कौड़ियों द्वारा किया जाता था, वह इस ओर इशारा करता है कि संभवतः मुद्रा निर्माण में कमी आ गई थी।

इस काल में व्यापार के लिए बाट-बटखेरा का प्रयोग भी इस काल में था। हमें तुला की जानकारी मिलती है वस्तुओं को इनसे अनाज तथा अन्य वस्तुएं तौली जाती थी। कालीदास ने अलग-2 वस्तुओं को तोलने वाली अलग-2 होती थी। इस काल के व्यापारी कर की अदायगी मुद्रा के रूप में करते थे।

ऋण प्रणाली :-
(Tax System)

व्यापार एवम् अन्य कार्यो के लिए विभिनन साक्ष्यों से ऋण प्रणाली के प्रमाण मिलते है। मनु और गौतम ऋण से प्राप्त आय को 7 प्रकार की आय में शामिल करते थे। आपतकालीन स्थिति में सभी वर्णो के लोग सूदखोरी कर सकते थे। लेकिन सामान्य स्थिती में ब्राह्मण तथा क्षत्रिय यह कार्य नहीं कर सकते थे। इस काल में सूद द्वारा प्राप्त धन अच्छा नही माना जाता था। इसके बावजूद नारद तथा ब हस्पति स्म ति ने ब्याज पर धन देने के नियमों का उल्लेख किया है। इस पर राज्य का कोई नियंत्रण नही था। इसलिए कई बार अधिक ब्याज पर धन देने के कारण आई विपतियों का वर्णन हमें मिलता है। पैसा व्यापारियों और श्रेणियों के पास जमा किया जाता था, इसके प्रमाण उस काल के अभिलेखां से मिलते है। कर्ज वापिस ना लौटाने की स्थिति में व्यक्ति से कर्ज वसूलने के भी प्रमाण है। ब्याज की दर 1¼ % प्रतिमाह या 15 % होती थी। ब्राह्मणों से 2 % प्रतिमाह, क्षत्रियों से 3 % प्रतिमाह, वैश्यों से 4% प्रतिमाह तथा क षक शूद्रों से 5 % प्रतिमाह ब्याज इस काल में निर्धारित का कर्ज का उल्लेख है।

1. **कायक :**

   जिसमें गिरवी रखे पशु के दूध का प्रयोग कर्ज देने वाला करता था।

2. **कालिक :**

   प्रतिमाह देह कर्ज

3. **चक्रव द्धि :**

ब्याज पर ब्याज

4. **कारिता :**

विपति के दौरान किए कर्ज पर सामान्य से अधिक ब्याज

5. **शिखाव द्धि :**

जो बालों के समान बढ़ता ही जाए।

6. **भोग लाभ :**

गिरवी रखे घर या खेत का भोग करने का लाभ

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि गुप्तकाल में न केवल व्यापार काफी उन्नत था अपितु क षि भी अच्छी अवस्था में थी पूरे काल में सम द्धि थी और मुद्रा प्रसार काफी विस्त त था वह भी सोने के सिक्कों के रूप में इस काल में व्यापारिक मार्गो पर बड़े -बड़े नगर बस गए थे और बहुत सी बन्दरगाहों के तौर पर अनेक शहर अस्तित्व में आ गए थे। इस काल में निर्मित बड़े-बड़े भवन, मन्दिर, बिहार, मूर्तिया और चित्रकला आर्थिक सम द्धि का घोत्तक हैं। इस काल के नगरों और उनके निवासियों के जीवन की झलक हमें वात्सायन के कामसूत्र तथा कालीदास के नाटकों में देखने को मिलती है।

अध्याय-4

a. गुप्तोत्तरकाल में व्यापार का ह्रास
(Decline of Trade in Post Gupta period)

भारत का व्यापार दस्तकारी तथा वाणिज्य इत्यादि ईसा से दो सदी पूर्व से 300 ई० तक चरमसीमा पर पहुँच चुका था। मौर्यो के बाद के काल तथा गुप्त काल से उदय के पूर्व के साहित्य में हमें बहुत से शिल्पों, हस्त कलाओं, श्रेणियों, व्यापारियों वणिकों इत्यादि का वर्णन मिलता है। रेश्मी, सूती वस्त्र बनाने का उद्योग तथा इससे सम्बन्धित रंगाई उद्योग इत्यादि भी इस समय में चरमोत्कर्ष पर था रोम के लेखकों ने भारतीय कपड़े की अधिक कीमत का वर्णन किया है स्थानीय तथा विदेशी मंत्रियों के लिए बनाए पाने वाली वस्तुओं तथा क षि उत्पादन की बहुलता के कारण इस काल में नगरीकरण को बहुत बढ़ावा मिला। परन्तु त तीय शताब्दी में उत्तर-भारत के बहुत से नगरों का ह्रास प्रारम्भ हो गया जैसे मथुरा, हस्तिनापुर, अंरजीखेड़ा, सुघ, संघोल इत्यादि मध्य गंगा क्षेत्र के बहुत से स्थलों पर भी जैसे श्रावस्ती, कोसाम्बी, चिरान्द (Chirand), राजगीर (Rajgir) इत्यादि में तथा उड़ीसा के शिशुपालगढ़ बंगाल के तामलुक में भी यही हाल प्रारम्भ हो गया। दक्षिण भारत की भी कई संघ पर हमे जैसे ऐराकेमेड वादगावं माधवपुर (Arekamedk Vadagoan Madhavpur) (आन्ध्रप्रदेश तथा कर्नाटक) महाराष्ट्र के नेवासा पौनी, पैठन, नासिक का भी यही दक्ष हुआ। यह कुषाण सातवाहन काल के बाद की प्रथम नगरीय क्षय का काल था जो कि भारतीय रोमन व्यापार के कारण हुआ।

गुप्तकाल के अन्तिम दिनों में भी विदेशी आक्रमणों के कारण हमें उस काल की बिगड़ती हुई आर्थिक स्थिति का पता अभिलेखों एवं सिक्कों से पता चलता है। स्कन्दगुप्त के अभिलेख से उसके द्वारा विचलित कुल लक्ष्मी की रक्षा की बात है कुमार गुप्त के काल में पुर्ष्यामंत्रों के हमले तथा स्कन्दगुप्त के काल के हूणों के हमलों से गुप्त साम्राज्य को ठेस लगी। स्कन्दगुप्त के काल में स्वर्ण मुद्राएं कम मात्रा में ही ढीली गई तथा उनमें सोने की मात्रा कम होने लगी। बाद के राजाओं के काल में तो स्थिति और भी गम्भीर हो गई। हूणों ने आक्रमणों से पश्चिमी व्यापार में तो बहुत बाधा पड़ी ही उन्हांने बहुत से नगरों को ध्वस्त भी कर दिया। इसके अतिरिक्त बहुत से नगरों में ह्रास के चिन्ह देखने को मिलते थे इनमें रोमड, संघोल (पजांब), सौख, अटंरजीखेडा, मथुरा, हस्तिनापुर, बनारस चिरान्द पाटलीपुत्र इत्यादि है इन सभी नगरों के ह्रास का कारण विदेशी व्यापार का न होना है। जिसके कारण न केवल राज्य को बल्कि कारीगरों व्यापारियों तथा व्यापार वाणिज्य से जुड़े लोगों की आय में भी कमी हुई। जिसके कारण बहुत से कारीगर अपना काम छोड़ अन्य काम करने पर मजबूर हुए जैसा कि मन्दसोर अभिलेख से प्रमाणित है या वे नगर छोड़ गावों में बसने लगे जिससे क षि पर दबाव बढ़ा व्यापार के कारण सिक्कों के प्रसार विशेषकर सोने, चांदी के सिक्कों में कमी आई। बहुत से राजाओं ने अपने कर्मचारियों को नकद वेतन के स्थान पर भूमि देनी प्रारंभ कर दी। इस तरह ब्राह्मणों को भूमिदान के बहुत से प्रमाण इस काल में मिलते है व्यापारियों की श्रणियाँ इस काल में जातियों में बदल गई तथ शिल्पियों एवं दस्तकारों को भी उनके खरीददार अनाज इत्यादि देने लगे तथा धीरे 2 वें भी एक स्थान से ही बन्ध कर रह गए तथा एक नए प्रकार की आर्थिकता का प्रारंभ हो गया सामाजिक संगठन में जजमानी प्रथा का प्रचलन हुआ तथा एक प्रकार की बन्द आर्थिकता Closed Economy का दौर प्रारंभ हो गया। यद्यपि नगर इस काल में भी रहे परन्तु उनके स्वरूप में बदलाव आ गया ये नगर अब व्यापारिक केन्द्र न होकर धर्म के केन्द्र बने जैसे कुरूक्षेत्र, मथुरा, काशी इत्यादि।

व्यापार का ह्रास :-
(Decline of Trade)

गुप्त और गुप्तोतर काल में हुए आर्थिक परिवर्तनों को ह्रास था जो 6th Cen में अधिक गहरा हो गया। Sources से इस बात की जानकारी मिलती है कि इस काल में पश्चिमी विश्व के साथ संपर्क का अभाव था। रोम साम्राज्य के बिखराव के कारण वहाँ से भी व्यापारिक संबध खत्म हो गए और व्यापर में अब अरब और ईरानियों का प्रतियोगी के रूप में उभरना भारतीय

सौदागरों के लिए हानिकारक सिद्ध हुआ। रोम साम्राज्य के पतन और बैजतिया साम्राज्य के साथ फारसी साम्राज्य की प्रतिद्वंदिता के कारण भारत का अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार बहुत कम हो गया और अब उसकी स्थिति वैसी नही थी जो पहली सदी में थी। (जब टिलनी ने रोम का पैसा भारत आने पर नाराजगी जाहिर की थी) इस व्यापार की 2 चीजें महत्वपूर्ण थी- एक तो फारसी सौदागरों के जरिए भारत से बाहर भेजा जाने वाला रेशमी कपड़ा और दूसरा मसालें। बैजतिया साम्राज्य में रेशमी कपड़े के व्यापार को इतना महत्वपूर्ण स्थान था कि फारसी व्यापारी वहां रेशमी वस्त्रों को मनमानी कीमतों पर बेचतें थे जिस कारण ज्यादा धन फारसियों के हाथों में चला जाता था। इससे स्पष्ट है कि पहली सदी (Ist Cen A.D.) में भारत जिस तरह मसालों से विदेशी धन प्राप्त रहा था, उसी तरह Post 6th cen. में वह रेशमी वस्त्रों से विदेशी धन प्राप्त करता था लेकिन इस व्यापार को धक्का उस समय लगा जब रेशम पैदा करने वाले कीड़े थल मार्ग से छिपा कर चीन से बैजतिया साम्राज्य में लाए गए, तो उन्होंने स्वयं रेशम बनाने की कला में महारात हासिल कर ली इससे भारत के विदेशी व्यापार की, विशेषकर उतर भारत के विदेशी व्यापार को बहुत धक्का लगा, क्योंकि उतर भारत में तो विदेशी व्यापार रेशमी वस्त्रों तक ही सीमित था। गुप्तकाल तक पश्चिम भारत का विदेशी व्यापार पहले ही बहुत कम था और उस पर बैंजतिया साम्राज्य से रेशमी व्यापर बंद होने के कारण इसकी स्थिति और भी खराब हो गई। गुप्तों के पतन के बाद की सदी में चीन के साथ भारत का व्यापार बढ़ा जो तिब्बत, आसाम और चीन के बीच स्थल मार्ग से होता था लेकिन इस व्यापार में बैंजतिया साम्राज्य के साथ व्यापर बंद होने के कारण होने वाली क्षति को कीहां तक पूरा किया यह कहना कठिन है।

बैंजतिया साम्राज्य के 6th Con. के कुछ सिक्कें आंध्रप्रदेश और कर्नाटक से प्राप्त हुए, लेकिन संख्या की द ष्टि से ये बहुत नगण्य है। इन द्वारा रेशमी वस्त्र बनाने की कला सीखने का एक और परिणाम यह हुआ कि गुजरात में रेशम का कपड़ा बनाने वाले जुलाहें यह स्थान छोड़कर किसी अन्य स्थान पर चले गए और ये व्यवसाय छोड़ कोई अन्य व्यवसाय अपना लिया। Central Asia के साथ गुप्त शासकों के सबंध कमजोर थे और इस समय Central asia और Western asia के साथ जो भी सबंध थे, वे हूणों के attack के बाद पूर्णतः समाप्त हो गए। इस काल के सिक्कों और दूसरी वस्तुओं से संबधित एक भी प्रमाण ऐसा नही है जिसके आधार पर यह कहा जाए कि कोई विशेषस वाणिज्य होता था 6th cen. में भारतीय व्यापारिक प्रतिनिधिमण्डलों को विदेशों में भेजने की परम्परा में भी कमी आई।

विदेशी व्यापार में ही ह्रास नही हुआ था बल्कि समुद्री तटीय नगरों तथा दूर-दराज के नगरों के बीच सम्पर्क कमजोर होने के कारण आंतरिक व्यापार का भी पतन हुआ जिसका प्रभाव गाँवों और नगरों के बीच होने वाले व्यापार पर भी पड़ा। वास्तविक स्थिति क्या थी, इसका अनुमान पश्चिम भारत के तटवर्ती क्षेत्रों के राजाओं द्वारा व्यापारियों के संघों को दी गई सनदों से लगाया जा सकता है। ये सनदें 6th Cen. के अंत और 8th Cen. के बीच जारी की गई थी। इनसे पता चलता है कि व्यापारी किन वस्तुओं का व्यापार करते थे इनमें मघ, शक्कर, नील, अदरख, तेल, कपड़े, लकड़ी लोहे और चमड़े आदि का समान शामिल था। इसमें राज्य मूल्यों और नाप-तौल का नियमन तो करता है, लेकिन उसका नियंत्रण उतना कड़ा नही, जितना कौटिल्य ने लिखा है। व्यापारियों के निकाय को काफी स्वतंत्रता दी गई है, उन्हें कई शुल्कों में छूट दी गई और वे अपने श्रमिकों, चरवाहों के साथ इच्छानुसार व्यवहार के लिए स्वतंत्र है, उन्हें लोहारों, बुनकरों, कुम्हारों और अन्य शिल्पियों से बेगार लेने का भी अधिकार है जिस कारण तटवर्ती क्षेत्रों में स्वतंत्र आर्थिक इकाइयाँ उभर रही थी। इन सनदों में तीन बातें महत्वपूर्ण थी। (1) ये अनुदान शिल्पियों को नही बल्कि, व्यापरियों को दिए गए और दान दी गई संपति अथवा शहर की व्यवस्था का अधिकार भी इन्हें दिया गया। (2) इन सनदों में व्यापारियों पर गाँवों के प्रबंध का भी बोझ डाला, इन्हें वो ही सुविधांए प्राप्त थी जो पुरोहित और सामंतों को थी, लेकिन गांव के प्रबंध में व्यस्त होने के कारण ये अपना ध्यान व्यापार में नही लगा पाए थे। इन सनदों से पता चलता है कि व्यापारी भी सांमतवादी सोचे में ढल रहे थे। (3) प्रत्येक श्रेणी की गतिविधियाँ उसके अपने क्षेत्र तक सीमित थी, जिससे प्रतिर्स्पधा नही हो पाई एक-दूसरे के प्रतिः यह गतिहीनता अर्थव्यवस्था की खास विशेषता थी।

इनके अलावा भूमि से प्राप्त लाभकर्ताओं के अधीन असंख्य आत्म-निर्भर इकाइयों के उदय ने भी व्यापार पर नकारतमक प्रभाव डाला तथा विशाल और संगठित व्यापार का स्थान घुम्मकड़ छोटे सौदागरों, असंगठित और धीमी गति के व्यापार ने ले लिया। इस समय की रचना कथासरित सागर में उल्लेख है कि करों को अदा कर पाने में असमर्थ अनेक व्यापारी जंगलों की ओर चले गए। इस समय देश में राजाओं, सांमतों और सम द्ध वर्ग के लिए आवश्यक और विलास की वस्तुएँ देश के विभिन्न भागों में उपलब्ध थी लेकिन व्यापार के लिए नही बल्कि सम द्ध वर्ग की पूर्ति के लिए और अर्थव्यवस्था का स्वरूप धीरे-2 आत्मनिर्भर इकाइयों ने ले लिया था।

सिक्कों की कमी :-
(Scarcity of Coins)

गुप्तोतर काल में सिक्कों का उपयोग कम हो गया था, सिक्के इस काल में काफी कम संख्या ने मिले है, जिनमें मौलिकता और कलात्मक सुंदरता का अभाव है और वे तौल में भी कम है जबकि Kushana और Gupta Period के सिक्के 4.2 gms से अधिक नही है। सिक्कों की कमी का मुख्य कारण विदेशी व्यापार में कमी थी। कुषाणों ने और गुप्त शासक कुमार गुप्त के अलावा अन्य गुप्त शासकों ने ताँबे के सिक्के बहुत कम जारी किए जिस कारण फाहियान का कथन सत्य प्रतीत होता है कि कौडियाँ विनिमय का आम साधन थी। इससे पता चलता है कि मुद्रा पर आधारित अर्थव्यवस्था की जड़े उखडती जा रही थी।

गुप्तोतर काल में भूमि-अनुदान की प्रथा में तेजी के कारण भी मुद्रा के प्रचलन में कमी आ रही थी। क्योंकि इस समय राजा नकद वेतन के स्थान पर भूमि-अनुदान का सहारा लेने लगे थे। जिस का आगे की सदियों में प्रचलन और तेज हो गया। फिर हर्षोतरकाल का तो कोई भी सिक्का नही मिलता जिसके विषय में निश्चयपूर्वक कहा जा सके कि यह अमुक राजवंश ने जारी किया था। इस काल के मात्र वलमी के मैत्रक वंश के ही कुछ सिक्के प्रचलन में थे। अबर यात्रियों के विवरण से भी स्पष्ट है कि व्यापार वस्तुविनिमय के माध्यम से होता था। 10 वीं-12 वीं शताब्दी में अनेक राजवंशों के सिक्कें मिले है, किन्तु जिस विस्त त क्षेत्र में ये राज्य फैले हुए थे अगर उसे ध्यान में रखे तो सिक्कों की संख्या बहुत कम है। शुद्ध सोने के सिक्के तो बहुत कम है। अंधिकांश राज्यों में सिक्कें चाँदी या तांबे के है। or इनसे इस परिणाम पर पहुँचना कठिन है कि ये व्यापार सम द्धि के कारण थे। महत्वपूर्ण बात यह है कि बंगाल और गुजरात में जहाँ अनेक बन्दरगाहों से विदेशों के साथ व्यापार होता था, बहुत कम सिक्के मिले है। पाल और सेन राजाओं में केवल देवपाल के कुछ सोनें के सिक्कें मिले है और गुजरात के चालक्यों में केवल जय सिंह सिद्धराज के मात्र कुछ सिक्कें मिले है। अतः मुद्रा के कम उपयोग का प्रश्न पूरे काल की विशेषता है। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि व्यापार में बहुत कमी आ गई और शहरी जीवन समाप्त होने लगा।

नगरों का पतन :-
(Decline of Towns)

व्यापार का पतन, सिक्कों की कमी तथा वाणिज्य मोहरों की अनुपस्थिति आर्थिक पतन और निर्मित उत्पादों की माँग में कमी की ओर इशारा करती है। उतर भारत में जो नगर कुषाण और गुप्तकाल में सक्रिय केन्द्र थे वो अब लगभग समाप्त हो गए थे। वास्तव में नगरीय जीवन का पतन 2 चरणों में हुआ। गुप्तकाल के दौरान प्रथम चरण के नगरों में संघोल, हस्तिनापुर, अंतरजीखेडा, मथुरा, श्रावस्ती और कौंशाबी के उत्खनन से स्पष्ट है कि गंगा के ऊपरी और मध्य मैदानों के नगरों का पतन होना शुरू हो गया था राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात और महाराष्ट्र के नगरों का भी ह्रास होना शुरू हो गया था 4th Cen. A.D.0 से 6th Cen. A.D.तक इन प्राचीन केन्द्रो के निवास स्थलों की दिवारों प्रारंभिक श० की तुलना में काफी पतली, खस्ता हालत और कम माल प्रयोग किए जाने का संकेत देती है। बहुत से गुप्तकालीन प्राचीन केन्द्रो के निर्माण में प्रारंभिक दिवारों की ईटों और कच्चेमाल का पुःन प्रयोग किया गया है। नागरिक सुविधाओं की द ष्टि से ये नगर कुषाण युग की तुलना में नगण्य है। अपने पतन के प्रथम चरण में संख्या की द ष्टि से कुछ ही नगर जैसे - पाटलीपुत्र, वैशाली, वाराणसी और भीटा ही अच्छी स्थिति में बचे रहे इनके पीछे कारण था कि ये गुप्त साम्राज्य के मुख्य क्षेत्रों में स्थित थे।

नगरों के पतन का दूसरा चरण 6th Cen के बाद शुरू हुआ, इसके बाद ये केन्द्र नगर रह ही नही सके। 6th Cen तक के अभिलेखों और मोहरों में नगरीय जीवन में कारीगरों, दस्तकारों तथा व्यापारियों के महत्व का उल्लेख है। बंगाल से प्राप्त अभिलेख में वर्णन है कि उन्होंने नगरों के प्रशासन में विशेष योगदान दिया लेकिन 6th Cen के बाद इस प्रकार के Source से कोई जानकारी नहीं मिलती। बल्कि इस समय श्रेणी शब्द जिसका प्रयोग कारीगरों और व्यापारियों के संगठन के लिए होता था, अब इसका प्रयोग जाति के लिए होने लगा था और निगम का अर्थ गांव से हो गया था। उतरी भारत में बौद्ध नगरों के पतन का उल्लेख चीनी यात्री हयूनसांग अपने यात्रा विवरण मे करता है, इसके समय पाटलीपुत्र मात्र एक ग्राम रह गया था। गुप्तोतर काल के साहित्य में भी मुख्यतः ग्रामीण जीवन का ही उल्लेख है। इस काल के दौरान कुछ नगर इसलिए बचे रहे सके क्योंकि उनका परिवर्तन प्रसिद्ध तीर्थ स्थलों के रूप में हो गया था और गैर क षि-बस्तियों को प्रशासनिक स्थलों, सैन्य दुर्गो मे भी परिवर्तित कर दिया था। जिन्हें पुरा, पहन, नगर या राजधनी कहा जाता था और ये उत्पादन का केन्द्र ना होकर खफत के केन्द्र थे।

अध्याय-4

b. सामंतवाद : उदय, स्वरूप एवम् विकास
(Origin, Development and Nature of Feudalism)

यूरोप और ऐशिया के सामान्यतः मध्यकाल के युग को सामंतवाद कहा जाता है क्योंकि इसका उदय, विकास और ह्रास इसी काल में हुआ। इस शब्द की विभिन्न परिभाषाएं हैं क्योंकि विभिन्न विद्धानों ने इसकी अलग-2 व्याख्या की है। इसका प्रयोग ऐतिहासिक विकास की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के सन्दर्भ में किया जाता है और ये अवस्थाएं कालक्रम के अनुसार विभिन्न स्थानों पर अलग-अलग कालों में अस्तित्व में आई। जैसे यूरोप में आमतौर पर पांचवी शताब्दी से 15वीं शताब्दी तक यूरोपीय समाज को सामंतवाद कहा जाता है। जबकि एशिया में इसकी शुरूआत तीसरी से पांचवी शताब्दी एक समान नहीं था तथा विभिन्न देशों के लोग इसके बदलते स्वरूप के साथ-2 बदलते गए। मध्यकाल में जो आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और सांस्क तिक उन्नति और परिवर्तन हुए उनका आधार ही सामंतवाद था।

सामंतवाद का अभिप्राय :-
(Meaning of Feualism)

Oxford Dictionary-आक्सफोर्ड डिक्शनरी में Feudal - फ्यूडल शब्द से अभिप्रायः Vassal तथा राजा के बीच सबंधों को स्थापित करने की नीतियों से लिया गया है। March Bloch मार्क ब्लाख के शब्दों में यूरोपिय सांमतवाद क षि दासता प्रधान था जिसमें ये लार्ड को बगैर वेतन श्रम-सेवा प्रदान करते थे, क षक जमीन से बंधे हुए थे तथा वे उच्च जातियों और योद्धाओं की बात मानने को बाध्य थे।

विभिन्न इतिहासकारों द्वारा सामंतवाद की अलग-2 व्याख्याएँ दी गई है। एक सुझाव यह भी है कि सामंतवाद ऐसी अवस्था को दर्शाता है जिसमें सैनिकों की सहायता से जमीनों पर अधिकार कर लिया जाता था यह दर्शाता है कि इसमें सैन्य संगठन की भी भागीदारी होती थी लेकिन सामंतवाद शब्द से अभिप्रायः हमें विशेष सैनिक बंधन नही लेना चाहिए। जहां तक क षक और जमीन का ताल्लुक था दोनों के बीच अनेक बंधन थे जैसे सैनिक, राजनैतिक और आर्थिक। दरअसल ये बंधन प्रत्येक देश मे अलग-2 थे। सैन्य संगठन सामान्यतः एक जैसा ही था। राम शरण शर्मा के अनुसार यूरोप के सामंतवाद की तरह भारतीय सामंतवाद का भी आर्थिक मर्म भूस्वामी मध्यवर्ग का उदय था जिसके कारण किसान क षिदासों की अवसाि में पहुँच गए। क्योंकि उनके एक-स्थान पर आने जाने की पांबदी लगा दी गई, उनसे अधिक श्रम (विष्टि) लिया जाने लगा, उन पर करों का बोझ लाद दिया गया तथा उपसामंतीकरण की प्रक्रिया ने सारी कमी को पूरा कर दिया। डी.डी. कौंसाबी के अनुसार ईसंवी सन् की प्रारंभिक सदियों के दौरान जब राजा भूमि पर अपने राजस्विक और प्रशासनिक अधिकार अपने अधीनस्थ अधिकारियों को देने लगा तो इनका क षकों से सीधा सबंध कायम हुआ। इस कारण गांव की बंद अर्थव्यवस्था से खलल पडा। इस प्रक्रिया को वे 'उपर से विकसित होने वाला सांमतवाद' मानते है। बाद में गुप्तकाल में यह प्रक्रिया और विकसित हुई कोंसबी के अनुसार आगे चलकर गांव के भीतर राज्य और क षकों के बीच भू-स्वामियों का एक वर्ग विकसित हुआ जिसने अपनी सेना और शास्त्रों के बल पर धीरे-धीरे स्थानीय आबादी पर सता स्थापित कर ली। इस प्रक्रिया को कोंसबी 'नीचे से विकसित होने वाला सामंतवाद' मानते है। कुछ इतिहासकारों ने फ्लयूडलिज्म को नाइटों के समर्थन और सेवा से संबधित संस्थाओं के एक समूह और कानून, शासन और सैनिक संगठन की एक ऐसी प्रणाली के रूप में देखते है जिसकी मुख्य विशेषता प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण है। फ्यूडलिज्म की इस अवधारणा से कभी-2 भारतीय इतिहासकार भी प्रभावित हुए है। इस प्रकार सामंतवाद को परिभाषित करना कठिन है क्योंकि सामंतवाद पर शोध करने वाले विद्वानों ने इसकी अलग-2 व्याख्या दी है। लेकिन साधारणतः सामंतवादी व्यवस्था में राजनैतिक एवम् प्रशासनिक ढांचा भूमि अनुदानों के आधार पर गठित था। असली आर्थिक

ढांचा क षि दासत्व प्रथा पर आधारित था। इसमें जमींदार भूमि के स्वामी थे जो काश्तकारों ओर राजाओं के बीच कड़ी का कार्य करते थे। इस प्रणाली में आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था थी। इसमें उत्पादन स्थानीय किसानो और मालिकों के उपभाग के लिए होता था ना कि बाजारों के लिए।

उदय और विकास :-
(Origin and Growth)

भारत में मौर्योतर-काल और गुप्तकाल में कुछ राजनैतिक और प्रशासनिक प्रव तियों के कारण और विशेष तौर पर गुप्तकाल में राज्य-व्यवस्था सांमतवादी ढांचे में ढ़लने लगी थी। प्रो० रामशरण शर्मा के अनुसार इनमें सबसे महत्वपूर्ण प्रव ति ब्राह्मणों को भूमिदान देने की थी। मौर्यकाल एवम् मौर्यो से पूर्व पाली साहित्य में मगध और कोसल के शासकों द्वारा ब्राह्मणों को दान दिए गए गांवों का उल्लेख मिलता है। परन्तु उस काल में ग्रहीता ब्राह्मणों के प्रशासन सबंधी अधिकार नही सौंपे जाते थे। भूमिदान का प्राचीनतम उल्लेख पहली शताब्दी ईसा पू० के सातवाहन अभिलेख में मिलता है जिसमें अश्वमेघ यज्ञ में एक गांव दान देने का उल्लेख है। लेकिन प्रशासनिक अधिकारों का इसमें कोई उल्लेख नही है लेकिन दूसरी शताब्दी में राजा गौतमीपुत्र शातकर्णी ने बौद्ध भिक्षुओं कों गांव दान में दिए। ग्रामदान के समय पहली बार ग्रहीता को प्रशासनिक अधिकार सौंपे गए। पांचवी शताब्दी तक ऐसे अनुदानों की संख्या में काफी बढ़ोतरी हुई। इन अनुदानों की 2 महत्वपूर्ण विशेषताएं थी :-

(i) राज्य के समस्त साधनों का ग्रहीता के नाम हस्तांतरण;

(ii) ग्रहीता पर आन्तरिक सुरक्षा और प्रशासनिक अधिकारों का दायित्व सौंप देना।

अधिकारो की प्राप्ती के बाद ग्रहिता प्राप्त क्षेत्र में आसानी से निजि शासन क्षेत्र स्थापित कर सकता था। जिन आर्थिक प्रव तियों के कारण भूमि अनुदान दिया जाता था उनका ठीक निरूपण करना कठिन है। प्रायः मौर्य तथा मौर्य काल में वीरान इलाकों में गांव बसाने अथवा बंजर भूमि को आबाद करने की उद्देश्य से भूमि दान में दी जाती थी इसका मुख्य उद्देश्य अधिक से अधिक भूमि को क षि लायक बनाना था क्योंकि राज्य को क षि से काफी आय प्राप्त होती थी। लेकिन बाद के काल में आबाद जमीन को भी अनुदान में दिया जाने लगा। जिसकी तुलना मध्यकालीन यूरोप की सामंतवादी प्रणाली से की जा सकती है।

गुप्तकाल में भारत के बड़े-बड़े सामंत राजाओं द्वारा ब्राह्मणों, मठों को दान स्वरूप बसे हुए गांव देने के अनेक प्रमाण मिलते है। इन अनुदानों में सामंत राजाओं ने संबधित गांव के निवासियों को (जिसमें क षक और कारीगर दोनों थे) स्पष्ट निर्देश दिया है कि वे ग्रहीता को केवल प्रचलित कर ही अदा ना करें बल्कि उनके आदेशों का भी पालन करे। 5 वीं शताब्दी के अभिलेखों से पता चलता है कि आगे चलकर राजा ने ग्रहीता को दण्डित करने का अधिकार भी सौंप दिया। ग्रहिता को यह अधिकार मिलने के बाद गांव संभवतः आत्मनिर्भर राजनैतिक इकाई बन जाता था। भूमिदान देने का सबसे बड़ा नतीजा यह निकाला कि शासनतंत्र पर से केन्द्र का व्यापाक नियंत्रण, जिसके लिए मौर्य साम्राज्य प्रसिद्ध था, गुप्तकाल में लुप्त होने लगा और उसका स्थान सता के विकेन्द्रीकरण ने ले लिया। उपसांमतीकरण का पहला उदाहरण इन्दौर अभिलेख में मिलता है। इससे पता चलता है कि राजा की ओर से मिली भूमि पर सामंत स्वयं भी खेती करता था और किसी दूसरे को भी खेती के लिए दे सकता था। उदासांमतीकरण की प्रव ति के कारण किसानों की दिशा बिगड़ने लगी। यह प्रक्रिया मध्य भारत के पश्चिमी हिस्से में पांचवी श० से प्रारंभ हुई। महत्वपूर्ण बात यह है कि गुप्त साम्राज्य के केन्द्रीय हिस्सों में अर्थात् आधुनिक बंगाल, बिहार और उतरप्रदेश में किसी भी सामंत द्वारा राजा की अनुमति के बिना भूमिदान या गांव दान का उल्लेख नही मिलता । इन परिवर्तनों का असर यह हुआ कि अब राज्य किसानों से सीधा कर वसूलने की अपेक्षा यह कार्य कर नए तीसरे वर्ग के हाथों में चला गया। इसे राज्यतंत्र के सामंतीकरण का एक और लक्षण माना जाता है।

गुप्त और गुप्तोत्तरकाल के बाद ग्रहिताओं और क्षेत्र स्वामियों के अधीन किसानों की स्थिति दासों जैसी हो गई थी तथा दूसरी ओर नए-नए बढ़े हुए करों के कारण स्वतंत्र क षकों की स्थिति भी काफी बिगड़ गई थी। इन पर लगाए हुए करों की तुलना यूरोप के सामंतवचादी महसूलो से की जा सकती है। ये दोहरे दायित्व सिर्फ मध्यभारत और पश्चिमी भारत में देखने को मिलते है।

सामंतवाद के स्पष्ट लक्षण गुप्त और गुप्तोत्तर काल में दिखाई देने लगे थे इसकी विशेषतांए थी- भूमिदान, अनुदान में दी भूमि के साथ बेगार की प्रथा, किसानों और शिल्पियों को अपनी मर्जी से आने-जाने पर रोक, मुद्रा का अभाव, व्यापार का प्रचलन, राजस्व व्यवस्था व दण्ड प्रशासन का अधिकार ग्रहिता के पास जाना अधिकारियों को वेतन स्वरूप अलग-2 क्षेत्रों का राजस्व सौपंने की शुरूआत व सामंती दायित्वों का विकास आदि।

पांचवी शताब्दी तक भूमि अनुदान प्रथा के कारण मन्दिरों और मठों की संख्या में व द्धि हुई, अनेक रियासतों का उपभाग करने के कारण ये अत्यंत धनी हो गए। इन मठों की सम्पन्नता के कारण ही तुर्क आक्रमणकारियों ने इन्हें जी भरकर लूटा। बाद के काल में विशेषकर राजपूत राज्यों में जब युद्ध एक महान समारोह बन गया तब युद्ध में मरने वाले सैनिकों के परिवार के लिए भी गांव दान में दिए जाने लगे। इसका एक कारण यह भी था कि ऐसा करने से पर्याप्त सैनिक मिल सकेंगे क्योंकि सामंती पद्धती सैनिकों पर ही आधारित थी।

सामंतवाद का विकास :-

राजनैतिक सामंतवाद के उद्‌भव और विकास का ईसवी सन् की पहली शताब्दी से ब्राह्मणों को दिए जाने वाले भूमि-अनुदानों से जुड़ा हुआ है। जो क्षेत्र उनको दान किए जाते थे उनमें उन्हें राजस्वविषयक व्यापक अधिकार दिए जाते थे और साथ ही शांति व्यवस्था कायम रखने और अपराधियों से जुर्माना वसूलने जैसे प्रशासनिक अधिकार भी। इस काल में भूमि अनुदान वालों की मंशा चाहे जो भी रही हो किन्तु ऐसे अनुदानों का परिणाम यह हुआ कि देश में आर्थिक एवम् राजनैतिक शक्ति से सम्पन्न एक नए वर्ग का उदय हुआ। तथा शासन तंत्र पर केन्द्र का वह सूक्ष्म और व्यापक नियंत्रण जिसके लिए मौर्य साम्राज्य प्रसिद्ध था वह मौर्येतर काल तथा गुप्तकाल में लुप्त होने लगा और इसका स्थान सता के विकेन्द्रीकरण ने ले लिया। लगभग इसी समय राज्य के सुदूरवर्ती प्रदेशों में उपसांमीकरण की था भी प्रारंभ हो गयी और जब गुप्त साम्राज्य समाप्ती पर था जब से साम्राज्य के केन्द्रिय भागों में भी यह प्रथा लागू हो गयी। उपसांमतीकरण की प्रथा की प्रारंभ हो गयी और जब गुप्त साम्राज्य समाप्ती पर था तब से साम्राज्य के केन्द्रिय भागों में भी यह प्रथा लागू हो गयी। उपसामंतीकरण का प्रथम प्रमाण गुप्तकाल का है जिसमें गुप्तसम्राट बुधगुप्त के अधीन महाराजा सुरभिशचन्द्र एक बड़ा सोमंत था और जिसके अधीन एक अन्य सामंत मात विष्णु था।

सामंतवादी प्रणाली के विकास में देश विजय की उस क्रिया से भी सहायता मिली जिसमें पराक्रमी राजा छोटे-2 सरदारों को जीतकर उन्हें कर-दाता बनाकर और भक्ति भाव का प्रर्दशन करने का वचन लेकर उन्हें पुनः पदासिन कर देता था। यह प्रक्रिया चन्द्रगुप्त के समय अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गई। यद्यपि समुद्रगुप्त की इलाहाबाद प्रशस्ति में सामंतवाद शब्द का जिक्र नही है तथापि छठी शताब्दी में विजि सरदारों के लिए सामंत शब्द का प्रयोग किया जाता था। धीरे-धीरे सामंतवाद का प्रयोग पराजित सरदारें के अतिरिक्त राज्यधिकारियों के लिए भी होने लगा। एक विद्वान के अनुसार शक, यवन, कुषाण आदि विदेशी अंशाति उत्पन्न अदा की। अव्यवस्था के युग में प्रत्येक महत्वाकांक्षी शक्तिशाली व्यक्ती ने भी अपने प थक राज्य कायम कर लिया। गुप्त शासकों ने इन सभी महाराजाओं का अंत नही किया। यही कारण है कि गुप्तों के शिथिल होते ही ये पुनः स्वतंत्र हो गए और परस्पर युद्धों द्वारा अपनी शक्ति के विस्तार में तत्पर हो गए। परिणामस्वरूप समस्त भारत में अव्यवस्था फैल गई और एक प्रकार से मत्सय न्याय का प्रारंभ हुआ। इसलिए तिब्बती लेखक तारानाथ को यह लिखने का मौका मिला कि "इस काल में प्रत्येक ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य अपनी-2 जगह शासक बन बैठे"। गुप्तों के साथ भी भारत में एक शक्तिशाली विशाल साम्राज्य की कल्पना भी समाप्त हो गई। सामंती पद्धति का यह एक स्वाभाकि परिणाम था।

मौर्यकाल में समण्डलों के प्रधान अधिकारियों अर्थात् रजुकों की नियुक्ति सम्राट करता था। लेकिन गुप्त साम्राज्य में भी अधिकारियों जिन्हें अब कुमारामात्य कहा जाता था, उपरिक द्वारा नियुक्त किए जाते थे। केवल गुप्त साम्राज्य के केन्द्र या निकटवर्ती क्षेत्रों में ही विषयपतियों की नियुक्ति स्वयं शासक करता था। गुप्तकाल के सममण्डली और जिले के अधिकारियों के बाद उतरोदर वंशानुगत होते चले गए।

इसके परिणामस्वरूप एक ओर तो केन्द्रिय सता की जड़ खोखली होती गई और दूसरी ओर प्रशासन का स्वरूप भी सामंतवादी होता गया। पूर्व मध्यकालीन राज्य पाल, प्रतिहार और राष्ट्रकूट में भी सामंतवादी विशेषतांए प्रबल हो उठी। पालों ने धार्मिक अनुष्ठानों पर खूब भूमि अनुदान दिए, इन अनुदानों के भोक्ता वैष्णव और शैव मंदिर थे। लेकिन इस द ष्टि से महत्वपूर्ण स्थान बौद्ध विहारों का था। 7 वीं शताब्दी के उतरार्ध में नांलदा विहार के अधीन 200 गांव थे बाद के शासकों के काल में इसके

गावों में बढ़ोतरी हुई। इनके अलावा मुख्य पुरोहितों और मन्दिरों को भी प्रतिहार शासकों और सांमतों से काफी गांव अनुदान में मिले।

प्रतिहारों और पालों के राज्यों को मिलाकर मंदिरों और ब्राह्मणों के अधीन जितने गावं थे, अकेले राष्ट्रकूट के राज्य में वे उनसे अधिक गांवों के भोक्ता थे। ऐसा लगता है कि राष्ट्रकूटों के अधीन पुरोहितों के बजाए धार्मिक संस्थाओं ने प्रमुख भूमिधर वर्ग का रूप धारण किया। पाल और प्रतिहार राज्यों में यह बात देखने को नही मिलती। उतर भारत में धार्मिक अनुदान-भोगियों को कर नही देना पड़ता था लेकिन धर्मेतर भोक्ता नजराने के तौर पर शायद कुछ देते थे। इस काल में ग्रामीण समुदायों के भूमि-संबधी अधिकारों का भी ह्रास होने लगा और परिणामतः अधिकाधिक जमीन पर व्यक्तिगत स्वामित्व स्थापित होता गया।

उपसांमतीकरण की प्रव ति के कारण किसानों की दशा बिगड़ती गई। इसमें एम महत्वपूर्ण बात यह है कि जो सांमत केवल एक गांव का स्वामी था, वह भी अपने प्रभु से अनुमति लिए बिना अपनी जमीन दूसरों को हस्तांतरित कर सकता था तथा जमीन के साथ जोतने वाले हलिकों को भी हस्तांतरित कर सकता था इससे सिद्ध होता है कि प्रतिहारों के अधीन राजस्थान में क षि -दासत्व की प्रथा थी। क षको ंको क षि दासों की स्थिति में पहुंचने वाली दूसरी बात थी बेगार प्रथा का विस्तार। पूर्वी काठियावाड़ में प्रतिहारों के सांमतों को ग्रामीणों से बेगार लेना का अधिकार प्राप्त था। वहां यह प्रथा विष्टि नाम से जानी जाती थी। सच तो यह है कि बेगार की प्रथा जितने व्यापक रूप में प्रतिहारों और राष्ट्रकूटों के शासन-काल में गुजरात और महाराष्ट्र में प्रचलित थी, उतनी और किसी काल में नही रही। यह राजस्व का एक मुख्य साधन थी।

इस काल की अर्थव्यवस्था में चार विशेषतांए प्रमुख है :

(i) भूमि पर राजकीय और सामुदायिक स्वामित्व का ह्रास हो रहा था तथा व्यक्तिगत स्वामित्व का विकास हो रहा था।

(ii) उपसामंतीकरण, बेदखली, नए-नए करों के आरोपण तथा बेगार के कारण किसानों की दशा दयनीय हो रही थी।

(iii) व्यापार और शिल्प-कारीगरी से हाने वाली राजकीय आय मात्र कुछ लोगों की जागीर बनती जा रही थी।

(iv) आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था का विकास, जिसका अस्तित्व मुद्रा के कम उपयोग और व्यापार की कमी से सिद्ध होता है।

सामंतवाद का स्वरूप :-
(Nature of Feudalism)

सामंतवादी व्यवस्था के तहत कर्मचारियों को वेतन नकद ना देकर भूमि अनुदानों के रूप में दिया जाता था। अर्थशास्त्र से पता चलता है कि नई बस्तियों से संबधित कुछ अधिकारियों को छोड़कर राज्य के समस्त अधिकारियों को नकद वेतन मिलता था। लेकिन संभवतः दूसरी शताब्दी में संकल्ति मनुस्म ति में राजस्व अधिकारियों के भूमिदान के रूप में वेतन देने का उल्लेख है। गुप्तकालीन स्म तिकार भी इस व्यवस्था को कायम रखते है। इतना तो स्पष्ट है कि हर्षवर्धन के काल में अधिकारियों को वेतन नकद न होकर भूमिदान के रूप में मिलता था। ह्नसोग में विवरण, हर्ष के अभिलेख और मुद्रा के अभाव से इस बात की पुष्टि होती है। भोगिक, भोगपतिक और भोगिपालक जैसे अधिकारियों के नामों से भी ऐसा लगता है कि ये पद मुख्यतः राजस्व का उपभोग करने के लिए इन अधिकारियों को दिए गए थे। वैसे भी मन्दिरों और पुरोहितों के निर्वाह के लिए भी भूमि अनुदान दिए जाते थे और अधिकारियों को भी निर्वाह के लिए भूमि अनुदान दिए जाने लगे।

इस व्यवस्था में सामन्तों को अपने सम्राटों के प्रति कुछ दायित्वों का निर्वाह करना होता था बाण पहला लेखक जिसने हर्षचरित तथ काद्म्बरी में सामंतों के कर्तव्यों का संकेत दिया है। सामान्यतः सामंतों का मुख्य कर्तव्य था अपने राजा के लिए सेना संगठित करना, वार्षिक कर देना तथा प्रतिवर्ष राजा के दरबार मे ंउपस्थिति होकर अपनी वफादारी प्रदर्शित करना। ये सम्राट के साथ अनेक मनोंरजनों में भी हिस्सा लेते थे। इस प्रकार सामंत सैनिक और प्रशासनिक द ष्टि से ही नही अपितु सामाजिक द ष्टिकोण से सामंत पद्धति का यह लाभ था कि इसमें केन्द्र से प्रशासित नौकरशाही की आवश्यकता नही रह जाती थी।

इस सामंतवादी ढांचे में हुई विविध उपसांमतों की व द्धि के कारण भूमि से प्राप्त होने वाली आय अनेक भागों में बिखर जाती थी। दूसरी ओर राजा की स्थिति ऊपर से कमजोर हुई तथा नीचे से क षक की स्थिति कमजोर हुई। बिचौलियों की संख्या में व द्धि होने के कारण अधिक आय उनके हाथों में आ गई तथा उन्होंने क षकों पर कई अन्य नए कर भी लगा दिए। कुछ

क षक तो 1/3 हिस्सा कर के रूप में अदा करते थे। यद्यपि सामान्यतः उत्पादन का 1/6 भाग ही कर के रूप में प्रचलित था। इन करों के अलावा किसानों और शिल्पियों से बेगार भी लिया जाता था।

कुलीन वर्ग पूर्णतः क षि पर निर्भर था और जुताई का वास्तविक कार्य क षक करते थे। जो अधिकतर शुद्र होते थे। इस काल में उत्पादन स्थानीय जरूरतों को पूरा करने जितना उत्पादित किया जाता था। यानि आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था थी जिसमें अतिरिक्त उत्पादन पर जोर नही दिया जाता था। व्यापार और विनिमय भी स्थानीय स्तर तक था। अतिरिक्त उत्पादन की कोशिश इसलिए नहीं की गई क्योंकि इससे क षकों को कोई फायदा नही होता था और अतिरिक्त हिस्से को जमींदार हड़प लेते थे। सीमित उत्पादन और व्यापार के अभाव के परिणामस्वरूप अर्थतंत्र की द ष्टि से गांव आत्मनिर्भर ईकाइ से परिवर्तित हो गए। इस प्रकार अनेक स्वतंत्र और आत्मनिर्भर आर्थिक इकाइयों का उदय हुआ।

सत्ता का विकेन्द्रीकरण इसका सिंद्धात था। राजा ने सता को अपने सामंतों और जागीरदारों में बांट दिया। इसमें सांमत के न्याय के खिलाफ अपील नहीं होती। सता का हंस्तातरण होने के साथ ही राजा की शक्ति में कमी आई। और मध्यस्थों की शक्ति में व द्धि हुई। इस प्रणाली में राज्यों को प्रांतों, और प्रांतों को गांव में बांटा गया था। सता के विकेन्द्रीकरण के कारण शक्ति छोटे-छोटे लोगों के हाथों में बंट गई थी। जिससे गांव की प्रशासनिक इकाइयां (पचांयतें) समाप्त हो गई थी।

इस काल में समाज का स्वरूप ग्रामीण था। समाज सैनिक संगठन पर आधारित था क्योंकि शासकीय वर्ग ने युद्धों के जरिए अपना Status ऊंचा किया था। Status के साथ इनकी जाति का भी स्थान बढ़ा। जैसे समाज में राजपूतों का स्तर ऊंचा हुआ। लेकिन जातिवाद पहले की अपेक्षा जटिल हो गया और औरतों की स्थिति में गिरवाट दर्ज की गई। ब्राह्मण का उत्थान हुआ, शासकीय वर्ग द्वारा संरक्षण दिया जाने के कारण। समाज में अनेक नई जातियों का उद्‌भव हुआ। इसके पीछे भूमि अनुदान प्रणाली उतरदायी थी।

शिक्षा का माध्यम संस्क ति होने के कारण यह आम आदमी से सबंधित नही थी। तकनीकी शिक्षा का अभाव है और रचनात्मक की कमी है। इस समय शास्त्रीय गतिविधियों में भी पुनराव ति है। क्योंकि पुराने शास्त्रों को लगभग ज्यों का त्यों लिखा गया। लेखकों ने तो भी लिखा वह erotic (अश्लीलता) हैं लेकिन जो Prose (गद्य) लिखे गए वे वास्तविक है जैसे : सामवेद द्वारा रचित् कथासरित् सागर। इस समय धर्म को नए ढंग से समझा गया, क्योंकि धर्म में भी अश्लीलता के तत्वों का समावेश है। खुजराहों के मंदिरों इसका उदाहरण है जिनका निर्माण इसी काल में हुआ। इतिहास से संबधित रचनाओं में स्थानीय शासकों की प्रशंसा के अतिरिक्त कुछ नही है जैसे : चालुक्य वंश के शासक विक्रमादित्य पर बिल्हण द्वारा रचित विक्रमादित्यदेव चरित, पद्‌मगुप्त द्वारा मालवा के शासक सिंधुराज पर लिखी गई किताब नवसांहसचरित आदि। भवभूति, हस्तिमुल्ला ने अनेक नाटक लिखे। काव्य में जयदेवच का रचित गीतगोंविद काफी प्रसिद्ध है। इस समय की सांस्क तिक गतिविधियों में Sensuality को एक उत्सव के रूप में लिया गया है। इसका प्रभाव मंदिरों पर स्पष्ट नजर आता है और तांत्रिक स्कूलों में भी। इस समय पालि और प्राक त भाषा का पतन हो रहा है तथा क्षेत्रीय भाषाओं की उत्पति जैसेः असनिया, उडिया आदि।

सामंतवादी ढांचे की महत्वपूर्ण विशेषता राजनैतिक सता का विकेन्द्रीकरण का स्वरूप भारत में वैसा नही था जैसा यूरोप में था। यूरोप की भांति यहां विकेन्द्रीकरण सैनिक सेवा करने वालों को दी गई जगीर का परिणाम ना होकर अधिकतर ब्राह्मणों और मन्दिरों को भूमि अनुदान देने का परिणाम था दूसरे यूरोप में सभी क षकों का अपना सारा समय और शक्ति अपने मालिक के खेत पर लगानी पड़ती थी, वहीं भारत में स्वतंत्र क षकों की काफी संख्या थी। फिर भी भारत में उपसामंतीकरण का सिलसिला उतना अधिक नही था जितना यूरोप में था।

इस प्रकार हम देखते है कि भारत में सामंतवाद की विशेषतांए गुप्तकाल में स्पष्ट सामने आई। इसका स्पष्ट प्रभाव राजपूत काल में देखने को मिला। कुछ परिवर्तनों के साथ राजनैतिक, आर्थिक ढांचे के आधार के रूप में सामंतवाद कुछ हद तक अभी हाल तक जीवित रहा है और समाज के विकास को प्रभावित करता रहा है।